नितनेम
टीका

प्रोफ़ैसर साहिब सिंघ

नितनेम टीका प्रोफ़ैसर साहिब सिंघ

नितनेम टीका

१ओं सतिगुरप्रसादि ॥

नितनेम टीका

टीकाकार :

प्रोफ़ैसर साहिब सिंघ

सिंघ ब्रदर्ज़

अमृतसर

नितनेम टीका

टीकाकार :

प्रो.फ़ैसर साहिब सिंघ डी.लिट.

अनुवादक :

डा. परमजीत कौर

गुरु नानक गर्ल्ज़ कालिज, यमुनानगर

ISBN 81-7205-227-8

प्रथम संस्करण : मई 1999
द्वितीय संस्करण : जनवरी 2003
तृतीय संस्करण : सितम्बर 2004
चतुर्थ संस्करण : नवम्बर 2006
पांचवां संस्करण : जनवरी 2009
छठा संस्करण : मई 2011

मूल्य : 100-00 रुपये

प्रकाशक :

सिंघ ब्रदर्ज़

•
बाज़ार माई सेवां, अमृतसर - 143 006
•
S.C.O. 223-24, सिटी सैंटर, अमृतसर - 143 001

E-mail : singhbro@vsnl.com
Website : www.singhbrothers.com

प्रिंटर :

प्रिंटवैल्ल, 146, इंडस्ट्रीयल फ़ोकल पुआइंट, अमृतसर

विवरण

—भूमिका ७
—हिन्दी अनुवाद के सम्बन्ध में १०
• जपु जी साहिब टीका ११
• जापु साहिब टीका १२४
• त्व प्रसादि सवय्ये पा: १० टीका २१८
• चौपई पा: १० टीका (प्रणवौ आदि) २३०
• रामकली महला ३ अनंदु टीका २३८
• रहिरास साहिब टीका २८३
• चौपई साहिब टीका (हमरी करो) ३१३
• अनंदु साहिब टीका ३२५
• मुंदावणी महला ५ टीका ३२७
• सोहिला टीका ३३२

भूमिका

प्रो. साहिब सिंघ जी के नाम से गुरुबाणी का प्रेमी सारा सिक्ख जगत परिचित है। उन्होंने अपना सारा जीवन गुरुबाणी की खोज में ही लगा दिया तथा इस क्षेत्र में बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य किया। एक एक पंक्ति के दस दस अर्थ करके अपनी विद्वता का सिक्का स्रोताओं तथा पाठकों पर जमाने वाले ज्ञानियों की इस प्रथा ने प्रो. साहिब सिंघ के मन में एक ज्वारभाटा पैदा कर दिया।

उनका विश्वास था कि गुरुबाणी की एक पंक्ति (तुक) का एक ही अर्थ हो सकता है तथा एक अर्थ किये जाने से ही जिज्ञासु को जीवन का सही रास्ता मिल सकता है। बहुत अर्थों वाली परिपाटी जिज्ञासु के मन में दुविधा (Confusion) पैदा करती है।

इस भावना के आधीन प्रो. साहिब सिंघ जी ने गुरुबाणी के व्याकरण की खोज प्रारम्भ की तथा अपने पूर्व सहयोगी तथा विद्वान गुरमुख साथियों की सहायता से कठिन मेहनत करके सार्थक परिणाम निकाले। इस गुरुबाणी व्याकरण को उन्होंने लिखित रूप दिया तथा इसमें अंकित नियमों के प्रकाश में ही गुरुबाणी के सारे टीके लिखे। श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी का सम्पूर्ण टीका *श्री गुरु ग्रन्थ साहिब दर्पण* जो दस जिल्दों में छपा है, वह प्रो. साहिब सिंघ जी की सिक्ख जगत को एक महान देन है।

इस धुर की बाणी का ज्ञान अथाह है। इस के अर्थ-भाव समझने

समझाने में कोई भी अभूल होने का दावा नहीं कर सकता। प्रो. साहिब सिंघ जी ने ऐसा कोई दावा नहीं किया, चाहे उन्होंने अपने विचार बड़ी दृढ़ता से निरुपित किये हैं। अपने विचारों की पुष्टि के लिये गुरु-प्रमाणों का सहारा लिया है। श्री गुरु ग्रन्थ साहिब के आज तक हुए टीकाओं में इस टीके का स्थान महत्त्वपूर्ण है।

प्रो. साहिब सिंघ जन्म-जात सिक्ख नहीं थे। उन्होंने सिक्खी के शुभ गुणों से प्रभावित होकर सिक्खी को बचपन में धारण किया तथा पूर्ण श्रद्धा भावना के साथ गुरुबाणी के अर्थों तथा फ़िलासफ़ी को समझने तथा समझाने का यत्न किया। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उन्होंने ईमानदारी से काम लिया। उनकी विचारधारा से कोई सहमत होता है या नहीं, इस की उन्होंने कभी चिन्ता नहीं की, बल्कि उन्होंने जो ईमानदारी से अनुभव किया, सरल ढंग से अंकित कर दिया। विचारों की दृढ़ता उनकी लेखनी का विशेष गुण है।

गुरुबाणी के अर्थ करते समय उन्होंने साखियों की सहायता लेने के स्थान पर गुरुबाणी की लेखन नियमावली से ही अधिक प्रेरणा ली है। इस तरह करने में वे कहीं कहीं भटक भी गये हैं। पर इसमें उनका दोष नहीं, प्रकाशकों की असावधानी के कारण गुरुबाणी की छपाई में मात्राओं की ग़लतियाँ हो जाने से ही ऐसा हुआ है। उनके लेखों में वहमों, भ्रमों दिखावे तथा फिजूल निरार्थक रीति रस्मों के विरुद्ध बड़ा स्पष्ट तथा कठोर विरोध है। जीवन व्यवहार में सादगी, विचारों में सादगी, लेखनी में सरलता तथा सादगी प्रो. साहिब सिंघ जी का विशेष गुण है।

अपनी लेखनी में करामातों को प्रो. साहिब सिंघ जी ने कोई महत्त्व नहीं दिया। उनके विचारानुसार किसी के जीवन में अपने कर्ता के अस्तित्व में विश्वास तथा दृढ़ता के फलस्वरुप सहजता, सन्तोष, नम्रता, प्रसन्नता परोपकार आदि शुभ गुणों का प्रविष्ट हो जाना अपने आप में एक करामात

है। उनका कहना था कि तथाकथित करामात या चमत्कार तो क्षणभंगुर होता है पर जीवन-आचार का चमत्कार तथा प्रभाव स्थायी होता है।

अलग अलग बाणियों के प्रो. साहिब सिंघ जी द्वारा किये हुये भिन्न भिन्न टीके तो मिलते हैं, पर सम्पूर्ण नितनेम की बाणियों का अलग कोई (एक) टीका नहीं मिलता। बहुत देर से गुरुबाणी प्रेमियों द्वारा यह मांग की जा रही थी कि प्रो. साहिब सिंघ जी का सम्पूर्ण नितनेम का टीका उपलब्ध हो। प्रेमियों की इस मांग को अनुभव करते हुए 'सिंघ ब्रदर्ज़' ने प्रो. साहिब सिंघ कृत भिन्न भिन्न टीकाओं को एकत्र कर के, उनमें से (अधिक) अनावश्यक सामग्री को छोड़कर भावपूर्वक टीका प्रकाशित करने का प्रशंसनीय उद्यम किया है। 'कबियो बाच बेनती चौपई पा. १०' (हमरी करो हाथ दै रच्छा) का टीका प्रो. साहिब सिंघ जी का किया हुआ नहीं मिलता, इसलिये इस बाणी का टीका अन्य प्रेमियों द्वारा करवा कर इस नितनेम टीका में शामिल किया गया है।

आशा है, गुरुबाणी के प्रेमी तथा नितनेमी गुरसिक्खों के लिये गुरुबाणी के अर्थ-भाव समझने हेतु यह टीका विशेष महत्त्वपूर्ण सिद्ध होगी।

जोगिन्दर सिंह तलवाड़ा

हिन्दी अनुवाद के सम्बन्ध में

प्रो. साहिब सिंघ जैसे विद्वान द्वारा लिखित नितनेम टीका का हिन्दी अनुवाद करना निश्चय ही चुनौती भरा कार्य है, क्योंकि जब तक अर्थों तथा भावों का स्पष्टीकरण तथा प्रकटीकरण वैसा का वैसा न हो, तो अनुवाद महत्त्व नहीं रखता। मेरा भरसक प्रयास रहा है कि कहीं भी अर्थों तथा भावों के प्रकटीकरण में थोड़ा-सा भी अन्तर न रहे। इसी प्रयास में मैंने कहीं कहीं पंजाबी के कुछ शब्दों जैसे बरकत, दाति, सचिआरा, बखशश, सिफ़ति-सालाह आदि का प्रयोग ज्यों का त्यों किया है। पाठकों की सुविधा को ध्यान में रखते हुये साथ ही बरैक्ट में हिन्दी अर्थ भी दिया गया है। आशा है पाठकों को पंजाबी में लिखित तथा हिन्दी में अनुवाद किये गये नितनेम टीका में कोई अन्तर महसूस नहीं होगा। मैं 'सिंघ ब्रदर्ज़' की आभारी हूँ, जिन्होंने मुझे इस कार्य के योग्य समझा।

गुरु नानक गर्ल्ज़ कालिज,
यमुनानगर

डा. परमजीत कौर

जपु जी साहिब

१ओं सतिनामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु
अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि ॥

पद अर्थ : १ओं—उच्चारण के समय इस के तीन भाग किये जाते हैं :

१, ओं तथा ; इस का पाठ है—'इक ओंकार'।

तीन भागों का अलग अलग उच्चारण करने से ऐसे बनते हैं :

१—इक। ओ—ओं। —कार।

ओं (ऊं) अथवा ओम् संस्कृत का शब्द है। *अमर कोष* के अनुसार इस के तीन अर्थ हैं :

१. वेद आदि धर्म-पुस्तकों के आरम्भ तथा अन्त में, प्रार्थना या किसी पवित्र धर्म कार्य के आरम्भ में अक्षर 'ओं' पवित्र अक्षर जानकर प्रयुक्त होता है।

२. किसी आज्ञा (हुक्म) या प्रश्न आदि के उत्तर में आदर तथा सत्कार के साथ 'जी हाँ' कहना। 'ओं' का अर्थ है 'जी हाँ'।

३. ओं—ब्रहम।

इनमें से कौन-सा अर्थ इस शब्द का यहाँ लिया जाना है—इस को दृढ़ करने के लिये शब्द 'ओं' के पहले '१' लिख दिया है। इस का भाव यह है कि यहाँ 'ओं' का अर्थ है "वह हस्ती जो एक है, जिस के समान

अन्य कोई नहीं है तथा जिस में यह सारा जगत समा जाता है।"

तीसरा भाग है, जिस का उच्चारण है 'कार'। 'कार' संस्कृत का प्रत्यय है। साधारणत्या इस 'प्रत्यय' का 'नाम' के अन्त में प्रयोग किया जाता है। इस का अर्थ है "एक-रस, जिस में परिवर्तन न आये।"

इस 'प्रत्यय' के लगने से 'नाम' के लिंग में कोई अन्तर नहीं पड़ता, भाव जो 'नाम' पहले पुलिंग है तो इस 'प्रत्यय' के लगाने से पुलिंग ही रहता है। जो पहले स्त्रीलिंग हो तो इस प्रत्यय के लगने से भी स्त्रीलिंग ही रहता है। जैसे पुलिंग :

'नंनाकारु' न कोइ करेई ॥
राखै आपि वडिआई देई ॥२॥२॥ *(गउड़ी मः १, पृष्ठ २२१)*

कीमति सो पावै आपि जाणावै आपि अभुलु न भुलए ॥
'जै जैकारु' करहि तुधु भावहि गुर कै सबदि अमुलए ॥९॥२॥५॥
(सूही मः १, पृष्ठ ७६७)

सहजे 'रुण झुणकारु' सुहाइआ ॥
ता कै घरि पारब्रहमु समाइआ ॥७॥३॥ *(गउड़ी मः ५, पृष्ठ २३७)*

स्त्रीलिंग :

दइआ धारी तिनि धारणहार ॥
बंधन ते होई 'छुटकार' ॥७॥४॥ *(रामकली मः ५, पृष्ठ ९१५)*

मेघ समै मोर 'निरतिकार' ॥
चंद देखि बिगसहि कउलार ॥२॥२॥ *(बसंत मः ५, पृष्ठ ११८०)*

देखि रूपु अति अनूपु मोह महा मग भई
किंकनी सबद 'झनतकार' खेलु पाहि जीउ ॥१॥६॥
(सवईए महले चउथे के, पृष्ठ १४०२)

इस प्रत्यय के लगने से इन शब्दों के अर्थ इस प्रकार करने हैं:

नंनाकारु—एक-रस इन्कार, सदा के लिये इन्कार।

जैकारु—लगातार जै जै की गूँज।

निरतिकार—एक-रस नृत्य।

झनतकार—एक-रस सुन्दर आवाज़।

प्रत्यय 'कार' के लगाये बिना तथा लगाने से, दोनों तरह के शब्दों के अर्थों में अन्तर निम्नलिखित प्रमाणों से स्पष्ट हो जाता है:

घर महि घरु देखाइ देइ, सो सतिगुरु पुरखु सुजाणु ॥
पंच सबद धुनिकार धुनि, तह बाजै सबदु नीसाणु ॥१॥२७॥

(पृष्ठ १२९०)

धुनि—आवाज़। धुनिकार—निरन्तर नाद, अटूट आवाज़। इसी तरह:

मनु भूलो सिरि आवै भारु ॥
मनु मानै हरि एकंकारु ॥२॥३॥ *(गउड़ी म: १, पृष्ठ २२२)*

एकंकारु—एक ओंकार, वह एक ओं जो एक-रस है, जो प्रत्येक स्थान पर व्यापक है।

इसलिये '१ओं' का उच्चारण है—"इक (एक) ओंकार" तथा इस का अर्थ है "एक अकाल पुरख, जो एक-रस व्यापक है।"

सतिनामु—जिस का नाम 'सति' है। शब्द 'सति' का संस्कृत स्वरूप 'सत्य' है। इस का अर्थ है 'अस्तित्व वाला'। इस का धातु 'अस' है, जिस का अर्थ है 'होना'। सो 'सतिनामु' का अर्थ है "वह ओंकार, जिस का नाम है अस्तित्व वाला"।

पुरखु—संस्कृत में व्युत्पत्ति अनुसार इस शब्द का अर्थ ऐसे किया गया है: "पुरि शेते इति पुरष", भाव जो शरीर में लेटा हुआ है। संस्कृत में साधारणत्या प्रचलित अर्थ है: 'मनुष्य'। भगवद् गीता में 'पुरखु' 'आत्मा'

के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है। 'रघुवंश' में यह शब्द 'ब्रह्मण्ड का आत्मा' के अर्थ में आया है, इसी तरह *शिशुपाल वध* पुस्तक में भी।

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में 'पुरखु' का अर्थ है—"वह ओंकार जो सारे जगत में व्यापक है, वह आत्मा जो सारी सृष्टि में रम रहा है।" 'मनुष्य' तथा 'आत्मा' अर्थ में भी यह शब्द कई स्थानों पर आया है।

अकाल मूरति—शब्द 'मूरति' स्त्रीलिंग है, 'अकाल' इस का विशेषण है, यह भी स्त्रीलिंग रूप में लिखा गया है। यदि शब्द 'अकाल' अकेला ही 'पुरखु', 'निरभउ', 'निरवैरु' की तरह १ओं का गुणवाचक होता तो पुलिंग रूप में होता; तथा इस के अन्त में ओंकड़ (ु) होता।

नोट : शब्द 'मूरति' तथा 'मूरतु' का भेद जानना ज़रूरी है। 'मूरति' सदा (ि) के साथ लिखा जाता है तथा स्त्रीलिंग है। इस का अर्थ है 'स्वरूप'। संस्कृत का शब्द है।

शब्द 'मूरतु' संस्कृत का शब्द 'मुहूर्त' है। 'चसा', 'मुहूर्त' आदि शब्दों का प्रयोग समय के विभाजन के लिये किया जाता है। ये शब्द पुलिंग है।

अजूनी—योनियों से रहित, जो जन्म में नहीं आता।

सैभं—स्वयंम्भू (स्व—स्वयं। भं—भू) अपने आप से होने वाला, जिस का प्रकाश अपने आप से हुआ है।

गुर प्रसादि—गुरु के प्रसाद से, गुरु की कृपा से, भाव उपर्युक्त '१ओं' गुरु की कृपा से (मिलता है)।

अर्थ : अकाल पुरख एक है, जिस का नाम 'अस्तित्व वाला' है, जो सृष्टि का कर्ता है, जो सब में व्यापक है, भय से रहित है, बैर-रहित है, जिस का स्वरूप काल से परे है (भाव, जिस का शरीर नाश-रहित है), जो योनियों में नहीं आता, जिसका प्रकाश अपने आप से हुआ है तथा जो सतिगुरु की कृपा से मिलता है।

नोट : यह उपर्युक्त गुरसिक्खी का मूल-मन्त्र है। इसके आगे लिखी बाणी का नाम 'जपु' है। यह बात याद रखनी है कि यह 'मूल-मन्त्र' अलग है तथा बाणी 'जपु' अलग है। गुरु ग्रन्थ साहिब के प्रारम्भ में यह मूल-मन्त्र लिखा है, जैसे कि प्रत्येक राग के प्रारम्भ में भी लिखा हुआ मिलता है। बाणी 'जपु' शब्द 'आदि सचु' से शुरु होती है। 'आसा की वार' के प्रारम्भ में भी यह मूल-मन्त्र है, परन्तु 'वार' के साथ इसका कोई सम्बन्ध नहीं है, वैसे ही यहाँ है। 'जपु' के आरम्भ में मंगलाचरण के रूप में एक श्लोक का उच्चारण किया गया है फिर 'जपु' साहिब की ३८ पउड़ियाँ हैं।

॥ जपु ॥

इस सारी बाणी का नाम 'जपु' है।

आदि सचु जुगादि सचु ॥
है भी सचु नानक होसी भी सचु ॥१॥

पद अर्थ : आदि—मूल से। सचु—अस्तित्व वाला शब्द। 'सचु' संस्कृत के 'सत्य' का प्राकृत रूप है, जिस का धातु 'अस्' है। 'अस्' का अर्थ है 'होना'। जुगादि—युगों के मूल (प्रारम्भ) से। है—भाव, इस समय भी है। नानक—हे नानक! होसी—होगा, रहेगा।१।

अर्थ : हे नानक! अकाल पुरख (परमात्मा) मूल (प्रारम्भ) से अस्तित्व वाला है, युगों के आदि से मौजूद है। इस समय भी मौजूद है तथा आगे भी अस्तित्व वाला रहेगा।१।

नोट : यह श्लोक मंगलाचरण के रूप में है। इस में गुरु नानक देव जी ने अपने इष्ट के स्वरूप का वर्णन किया है, जिस का जप-सिमरन करने का उपदेश इस सारी बाणी 'जपु' में किया गया है।

इस से आगे बाणी 'जपु' का विष्य शुरु होता है।

पद अर्थ : भुख—तृष्णा, लालच। भुखिआ—तृष्णा के अधीन रहने से। न उतरी—दूर नहीं हो सकती। बंना—बाँध लूँ, सम्भाल लूँ। पुरी—लोक, भवन। पुरीआ भार—सभी लोकों का भार। भार—पदार्थों के समूह। सहस—हजारों। सिआणपा—चतुराइयाँ। होहि—हों। इक—एक भी चतुराई।

अर्थ : यदि मैं सारे भवनों के पदार्थों के ढेर (भी) सम्भाल लूँ, तो भी तृष्णा के आधीन रहने से तृष्णा दूर नहीं हो सकती। यदि (मुझ में) हज़ारों तथा लाखों चतुराइयाँ हों, (तो भी उनमें से) एक भी चतुराई साथ नहीं देती।

किव सचिआरा होईऐ, किव कूड़ै तुटै पालि ॥
हुकमि रजाई चलणा, नानक लिखिआ नालि ॥१॥

पद अर्थ : किव—किस तरह? होइऐ—हो सकते हैं। कूड़ै पालि—झूठ की दीवार, झूठ का पर्दा। सचिआरा—(सच-आलय) सत्य का घर, सत्य के प्रकाश के योग्य। हुकमि—हुक्म में। रजाई—रज़ा वाला, अकाल पुरख। नालि—जीव के साथ ही, प्रारम्भ से ही, जब से जगत बना है।

अर्थ : (तो फिर) अकाल पुरख के प्रकाश के, योग्य कैसे बन सकते हैं (तथा हमारे अन्दर का) झूठ (असत्य) का पर्दा कैसे टूट सकता है? रज़ा के स्वामी अकाल पुरख (परमात्मा) के हुक्म में चलना— (यही एक विधि है)। हे नानक! (यही विधि) प्रारम्भ से ही, जब से जगत बना है, लिखी चली आ रही है।१।

भाव : प्रभु से जीव का अन्तर मिटाने का एक ही तरीका है कि जीव उस की रज़ा में चले। यह नियम प्रारम्भ से ही परमात्मा की तरफ़ से जीव के लिये ज़रूरी है। पिता के कहे अनुसार पुत्र चलता रहे तो प्यार, न चले तो अन्तर पैदा होता चला जाता है।

हुकमी होवनि आकार, हुकमु न कहिआ जाई ।।
हुकमी होवनि जीअ, हुकमि मिलै वडिआई ।।

पद अर्थ : हुकमी—हुक्म में, अकाल पुरख के हुक्म अनुसार। होवनि—होते हैं, अस्तित्व में आते हैं, बन जाते हैं। आकार—स्वरूप, शरीर, शक्लें। न कहिआ जाई—कहिआ न जाई, कथन नहीं किया जा सकता। जीअ—जीव-जन्तु। हुकमि—हुक्म अनुसार। वडिआई—आदर, शोभा।

अर्थ : अकाल पुरख (परमात्मा) के हुक्म अनुसार सारे शरीर बनते हैं, (परन्तु यह) हुक्म बताया नहीं जा सकता कि कैसा है। परमात्मा के हुक्म अनुसार ही सारे जीव जन्म लेते हैं तथा हुक्म के अनुसार ही (परमात्मा के दर पर) शोभा मिलती है।

हुकमी उतमु नीचु, हुकमि लिखि दुख सुख पाईअहि ।।
इकना हुकमी बखसीस, इकि हुकमी सदा भवाईअहि ।।

पद अर्थ : उतमु—श्रेष्ठ, अच्छा। लिखि—लिखकर, लिखे अनुसार। पाईअहि—प्राप्त किये जाते हैं, भोगे जाते हैं। इकना—कई मनुष्यों को। बखसीस—दाति, कृपा। इकि—कई मनुष्य। भवाईअहि—घुमाये जाते हैं, जन्म-मरन के चक्र में डाले जाते हैं।

अर्थ : परमात्मा के हुक्म में कोई मनुष्य अच्छा (बन जाता है) कोई बुरा। उसके हुक्म में ही (अपने किये हुये कर्मों के) लिखे अनुसार दुःख तथा सुख भोगे जाते हैं। हुक्म में ही कई मनुष्यों पर (अकाल पुरख के दर से) कृपा होती है, तथा उसके हुक्म में ही कई मनुष्य नित्य जन्म-मरन के चक्र में घुमाये जाते हैं।

हुकमै अंदरि सभु को, बाहरि हुकम न कोइ ।।
नानक हुकमै जे बुझै, त हउमै कहै न कोइ ।।२।।

पद अर्थ : अंदरि—परमात्मा के हुक्म में ही। सभु को—प्रत्येक जीव को। बाहरि हुकम—हुक्म से बाहर। हुकमै—हुक्म को। बुझै—समझ ले। हउमै कहै न—अहंकार के शब्द नहीं बोलता, मैं मैं नहीं करता, स्वार्थी नहीं बनता।

अर्थ : प्रत्येक जीव परमात्मा के हुक्म में ही है, कोई जीव हुक्म से बाहर (भाव, हुक्म से बेमुख) नहीं हो सकता। हे नानक! यदि कोई मनुष्य परमात्मा के हुक्म को समझ ले तो फिर वह स्वार्थ की बातें नहीं करता (भाव, फिर वह स्वार्थी जीवन को छोड़ देता है)।२।

भाव : प्रभु के हुक्म का सही स्वरूप ब्यान नहीं किया जा सकता, परन्तु जो मनुष्य इस हुक्म में चलता है, उस के जीवन में परिवर्तन हो जाता है, वह उदार हो जाता है (संकीर्ण-मन नहीं रहता)।

गावै को ताणु होवै किसै ताणु ।।
गावै को दाति जाणै नीसाणु ।।

पद अर्थ : को—कोई मनुष्य। ताणु—बल, परमात्मा की ताकत। किसै—जिस किसी मनुष्य को। ताणु—सामर्थ्य। दाति—दिये गये पदार्थ। नीसाणु—(कृपा का) निशान।

अर्थ : जिस किसी मनुष्य में सामर्थ्य होती है वह परमात्मा के बल का गायन करता है (भाव, उसका गुण-कीर्तन करता है, उसके उन कार्यों का कथन करता है जिनसे उसकी अपार शक्ति प्रकट हो)। कोई मनुष्य उसके द्वारा दिये गये पदार्थों का ही गुण-गान करता है (क्योंकि इन देय-पदार्थों को वह परमात्मा की कृपा का) निशान समझता है।

गावै को गुण वडिआईआ चार ॥
गावै को विदिआ विखमु वीचारु ॥

पद अर्थ : चार—सुन्दर। विदिआ—विद्या द्वारा। विखमु—कठिन, मुश्किल। वीचारु—ज्ञान।

शब्द 'चार' विशेषण है, जो एक-वचन पुलिंग के साथ 'चारु' हो जाता है तथा बहु-वचन या स्त्रीलिंग के साथ 'चार' रहता है। पर शब्द 'चारि' 'चार' की गिनती का वाचक है। जैसे :

(१) **चारि कुंट दह दिस भ्रमे, थकि आए प्रभ की साम ॥**
(पृष्ठ १३३)

(२) **चारि पदारथ कहै सभु कोई ॥** *(गउड़ी म: १, पृष्ठ १५४)*

(३) **चचा चरन कमल गुर लागा ॥**
धनि धनि उआ दिन संजोग सभागा ॥
चारि कुंट दह दिसि भ्रमि आइओ ॥
भई क्रिपा तब दरसनु पाइओ ॥
चार बिचार, बिनसिओ सभ दूआ ॥
साध संगि मनु निरमलु हूआ ॥२२॥ *(बावन अखरी, पृष्ठ २५४)*

(४) **तटि तीरथि नही मनु पतीआइ ॥**
चार अचार रहे उरझाइ ॥२॥ *(गउड़ी कबीर जी, पृष्ठ ३२५)*

अर्थ : कोई मनुष्य परमात्मा के सुन्दर गुण तथा सुन्दर बड़प्पन का वर्णन करता है। कोई मनुष्य विद्या के बल से परमात्मा के कठिन ज्ञान को गाता है (भाव, शास्त्र आदि द्वारा आत्मिक दर्शन के कठिन विष्यों पर विचार करता है)।

गावै को, साजि करे, तनु खेह ॥
गावै को, जीअ लै फिरि देह ॥

पद अर्थ : साजि—पैदा कर के, बनाकर। तनु—शरीर को। खेह—राख। जीअ—जीवात्मा। लै—लेकर। देह—दे देता है।

नोट : 'जीउ' से 'जीअ' बहु-वचन है।

यहाँ 'देह' का 'ह' पहली पंक्ति के 'खेह' के साथ मिलाने के लिये आया है। वैसे शब्द 'देह' 'नाम' का अर्थ है 'शरीर', जैसे 'भरीऐ हथु पैर तनु देह'।

शब्द 'दे', देहि तथा 'देह' को अच्छी तरह समझने के लिये जपु जी में से निम्नलिखित पंक्तियाँ दी जाती हैं :

(१) **देदा दे लैदे थकि पाहि ॥** *(पउड़ी ३)*

(२) **आखहि मंगहि देहि देहि, दाति करे दातारु ॥** *(पउड़ी ४)*

(३) **गुरा इक देहि बुझाई ॥** *(पउड़ी ५)*

(४) **नानक निरगुणि गुणु करे गुणवंतिआ गुणु दे ॥** *(पउड़ी ७)*

(५) **भरीऐ हथु पैरु तनु देह ॥** *(पउड़ी २०)*

(६) **दे साबूणु लईऐ ओहु धोइ ॥** *(पउड़ी २०)*

(७) **आपे जाणै आपे देइ ॥** *(पउड़ी २५)*

दे—देता है। दे—देकर।

देइ—देता है। देइ—देकर।

देह—शरीर। देहि—दे [हुक्मी भविष्यत काल (आज्ञा)]

अर्थ : कोई मनुष्य ऐसे गाता है, 'अकाल पुरख (परमात्मा) शरीर को बनाकर (फिर) राख कर देता है,' कोई ऐसे गाता है, 'हरि (शरीरों में से) आत्मा निकाल कर फिर (दूसरे शरीरों में) डाल देता है।'

गावै को, जापै दिसै दूरि ॥
गावै को, वेखै हादरा हदूरि ॥

पद अर्थ : जापै—प्रतीत होता है, लगता है। हादरा हदूरि—सर्वव्यापक, सब स्थानों पर उपस्थित।

अर्थ : कोई मनुष्य कहता है, 'अकाल पुरख (प्रभु) दूर प्रतीत होता है, दूर दिखता है', पर कोई कहता है, '(नहीं, पास है) सब स्थानों पर उपस्थित है, (सब को) देख रहा है।'

कथना कथी न आवै तोटि ॥
कथि कथि कथी, कोटी कोटि कोटि ॥

पद अर्थ : कथना—कहना, ब्यान करना। कथना तोटि—कहने की कमी, गुण वर्णन करने का अन्त। कथि—कह कर। कथि कथि कथी—कह कह कर कही है, अनन्त बार प्रभु के हुक्म का वर्णन किया है। कोटि—करोड़, करोड़ों जीवों ने।

शब्द कोटि, कोटु, कोट का निर्णय :

(१) कोटि—करोड़ (विशेषण)

कोटि करम करै हउ धारे ॥
स्रमु पावै सगले बिरथारे ॥३॥१२॥ *(सुखमनी, पृष्ठ २७८)*

कोटि खते खिन बखसनहार ॥३॥३०॥ *(भैरउ मः ५, पृष्ठ ११४८)*

(२) कोटु—किला (नाम, एक-वचन)

लंका सा कोटु समुंद सी खाई ॥ *(आसा कबीर जी, पृष्ठ ४८१)*

एकु कोटु पंच सिकदारा ॥ *(सूही कबीर जी, पृष्ठ ७९३)*

(३) कोट—किले (नाम, बहु-वचन)

कंचन के कोट दतु करी बहु हैवर गैवर दानु ।।

(सिरीरागु मः १, पृष्ठ ६२)

अर्थ : करोड़ों ही जीवों ने अनन्त बार (अकाल पुरख के हुक्म का) वर्णन किया है, पर हुक्म के वर्णन करने में कमी नहीं आ सकी (भाव, वर्णन कर कर के हुक्म का अन्त नहीं हो सका, हुक्म का सही स्वरूप नहीं खोजा जा सका)।

देदा दे, लैदे थकि पाहि ।।
जुगा जुगंतरि खाही खाहि ।।

पद अर्थ : देदा—देता, देने वाला, दाता प्रभु। दे—(सदा) देता है, दे रहा है। लैदे—लेते, लेने वाले जीव। थकि पाहि—थक जाते हैं। जुगा जुगंतरि—जुग जुग अंतरि, सारे युगों में ही, सदा से ही। खाही खाहि—खाते ही खाते हैं, प्रयोग करते चले आ रहे हैं।

अर्थ : दाता परमात्मा (सब जीवों को) (जीविका) दे रहा है, पर जीव ले ले कर थक जाते हैं। (सब जीव) सदा से ही (परमात्मा के दिये पदार्थ) खाते चले आ रहे हैं।

हुकमी हुकमु चलाए राहु ।।
नानक विगसै वेपरवाहु ।।३।।

पद अर्थ : हुकमी—हुक्म का स्वामी, परमात्मा। हुकमी हुकमु—हुक्म वाले हरि का हुक्म (आज्ञा)। राहु—रास्ता, संसार का व्यवहार। नानक—हे नानक! विगसै—प्रफुल्लित है, प्रसन्न है। वेपरवाहु—निश्चिन्त, चिन्ता से रहित।

अर्थ : हुक्म वाले परमात्मा का हुक्म ही (संसार के व्यवहार वाला) रास्ता चला रहा है। हे नानक! वह निरंकार सदा बेपरवाह (निश्चिन्त) है तथा प्रसन्न है (भाव, चाहे परमात्मा हर समय संसार के अनन्त जीवों को अटूट पदार्थ तथा जीविका पहुँचा रहा है, परन्तु इतने बड़े कार्य-व्यवहार से उसे कोई घबराहट नहीं है। वह सदा प्रसन्न है। उसको इतने बड़े फैलाव में खचित नहीं होना पड़ता, उसकी एक हुक्म-रूप सत्ता ही सारे व्यवहार को निभा रही है।३।

भाव : प्रभु के अलग अलग कार्य देखकर मनुष्य अपनी अपनी समझ के अनुसार परमात्मा की हुक्म-रूप ताकत का अन्दाज़ा लगाते चले आ रहे हैं, परन्तु कोई भी पूरा अन्दाज़ा नहीं लगा सका।

साचा साहिबु, साचु नाइ, भाखिआ भाउ अपारु ॥
आखहि मंगहि देहि देहि, दाति करे दातारु ॥

पद अर्थ : साचा—अस्तित्व वाला, सदा स्थिर रहने वाला। साचु—सदा स्थिर रहने वाला। नाइ—न्याय, नियम, संसार को चलाने वाले नियम।

साचु नाइ—व्याकरण का नियम है कि किसी 'नाम' के विशेषण का वही लिंग होता है, जो उस 'नाम' का। 'साचु नाइ' वाली पंक्ति में साहिबु पुलिंग है, इसी लिये 'साचा' भी पुलिंग है। 'साचु' पुलिंग है, इसलिये जिस 'नाम' का यह विशेषण है, वह भी पुलिंग ही होना चाहिये तथा 'कर्त्ता कारक' होना चाहिये, जैसा 'साहिबु' है।

शब्द 'नाउ' जब तक कर्त्ता कारक या 'कर्म कारक' में प्रयोग किया जाता है तब तक इसकी शक्ल यही रहती है, जैसे :

(१) **अंम्रित वेला सचु नाउ वडिआई वीचारु ॥** *(पउड़ी ४)*

(२) **चंगा नाउ रखाइ कै जसु कीरति जगि लेइ ॥** *(पउड़ी ७)*

(३) **जेता कीता तेता नाउ ॥** *(पउड़ी १९)*

(४) **ऊचे ऊपरि ऊचा नाउ ॥** *(पउड़ी २४)*

यही शब्द 'नाउ' जपु जी में एक बार और आया है, पर वह 'क्रिया' है तथा उस का अर्थ है 'स्नान करो', जैसे :

अंतरगति तीरथि मलि नाउ ॥ *(पउड़ी २१)*

शब्द 'नाउ' का बहु-वचन जपु जी में दो बार आया है, उसका रूप 'नाव' है, जैसे :

(१) **असंख नाव असंख थाव ॥** *(पउड़ी १९)*

(२) **जीअ जाति रंगा के नाव ॥** *(पउड़ी १६)*

जब शब्द 'नाउ' कर्त्ता कारक या कर्म कारक के बिना किसी अन्य कारक में प्रयुक्त हो तो, 'नाउ' के स्थान पर 'नाइ' हो जाता है, जैसे :

नाइ तेरै तरणा नाइ पति पूज ॥
नाउ तेरा गहणा मति मकसूदु ॥ *(प्रभाती बिभास म: १, पृष्ठ १३२७)*

नाइ—नाम द्वारा।

पर 'साचु नाइ' वाला 'नाइ' कर्त्ता कारक ही हो सकता है क्योंकि इसका विशेषण 'साचु' भी कर्त्ता कारक है। यह 'नाइ' (ए) उपर्युक्त प्रमाण वाले 'नाइ' से अलग है। जपु जी की पउड़ी नं. ६ की पहली पंक्ति में भी 'नाइ' शब्द मिलता है, पर यहाँ 'क्रिया' है, जिस का अर्थ है 'नहा कर'। इसलिये यह 'नाइ' (ए) भी 'सचु नाइ' (ए) वाला नहीं है। शब्द 'नाई' भी जपु जी में निम्नलिखित पंक्तियों में प्रयोग किया गया है :

(१) **वडा साहिबु, वडी नाई, कीता जा का होवै ॥** *(पउड़ी २१)*

(२) **सोई सोई सदा सचु, साहिब साचा, साची नाई ॥** *(पउड़ी २७)*

यहाँ शब्द 'नाई' स्त्रीलिंग है। इसलिये यह शब्द भी 'साचु नाइ' से अलग है।

हमने इस शब्द 'नाइ' (ए) का अर्थ 'न्याय' किया है। इसी तरह निम्नलिखित पंक्ति में भी 'नाई' से 'निआई' पाठ वाला अर्थ किया जाता है :

बुत पूजि पूजि हिंदू मूए, तुरक मूए सिरु नाई ॥

(सोरठि कबीर जी, पृष्ठ ६५४)

'नाई' तथा 'निआई' का अर्थ है न्याय। आज कल की पंजाबी में भी 'निआई' नीची जगह को कहा जाता है। इसलिये जैसे इस प्रमाण में 'नाई' को 'निआई' समझकर अर्थ किया जाता है, वैसे ही इस शब्द 'नाइ' को 'निआइ' ही समझना है।

भाखिआ—बोली। भाउ—प्रेम। अपारु—अनन्त, जिसका पार नहीं है। आखहि—हम कहते हैं। मंगहि—हम मांगते हैं। देहि देहि—(हे हरि!) हमें दे, हम पर कृपा कर।

अर्थ : अकाल पुरख सदा स्थिर रहने वाला है। उसका नियम भी सदा अटल है। उसकी बोली प्रेम है तथा वह स्वयं अकाल पुरख अनन्त है। हम जीव उससे 'देय पदार्थ' मांगते हैं तथा कहते हैं, (हे हरि! हमें पदार्थ) 'दे'। वह दाता कृपा करता है।

नोट : उसकी बोली प्रेम है। प्रेम ही साधन है जिस के द्वारा वह हमारे साथ बातें करता है, हम उसके साथ कर सकते हैं।

फेरि कि अगै रखीऐ, जितु दिसै दरबारु ॥
मुहौ कि बोलणु बोलीऐ, जितु सुणि धरे पिआरु ॥

पद अर्थ : फेरि—(यदि सारे देय पदार्थ वह स्वयं ही दे रहा है तो) फिर। कि—कौन-सी भेंट ? अगै—परमात्मा के आगे। रखीऐ—रखी जाये,

हम रखें। जितु—जिस भेंट से। दिसै—दिखायी दे जाये। मुहौ—मुँह से। कि बोलणु—कौन-सा बचन ? जितु सुणि—जिस द्वारा सुनकर। धरे—टिका दे, करे। जितु—जिस बोल द्वारा।

अर्थ : (यदि सारे देय पदार्थ वह स्वयं ही दे रहा है तो) फिर हम कौन-सी भेंट उस परमात्मा के आगे रखें, जिस की बदौलत हमें उसका दरबार दिख जाये ? हम मुख से कौन सा बचन बोलें (भाव, कैसी अरदास करें) जिस को सुनकर वह हरि (हमें) प्यार करे ?

अंम्रित वेला सचु नाउ, वडिआई वीचारु ॥
करमी आवै कपड़ा, नदरी मोखु दुआरु ॥
नानक एवै जाणीऐ, सभु आपे सचिआरु ॥४॥

पद अर्थ : अंम्रित—कैवल्य, निर्वाण, मोक्ष, पूर्ण आनन्द। अंम्रित वेला—अमृत वेला, वह समय जिस समय मनुष्य का मन प्रायः संसार के झंझटों से मुक्त होता है, प्रातःकाल, सूर्योदय से पहले का समय। सचु—सदा स्थिर रहने वाला। नाउ—परमात्मा का नाम। वडिआई वीचारु—बड़प्पन का विचार। करमी—प्रभु की कृपा से। करम—कृपा, बख़शिश, मेहरबानी [जैसे—जेती सिरठि उपाई वेखा विणु करमा कि मिलै लई॥ (पउड़ी ६), नानक नदरी करमी दाति॥ (पउड़ी २४)]।

कपड़ा—पटोला, प्रेम पटोला, प्यार रुप पटोला, गुण-कीर्तन का कपड़ा। (जैसे "सिफति सरम का कपड़ा मागउ" ॥४॥७॥ प्रभाती मः १)।

नदरी—परमात्मा की कृपा-दृष्टि से। मोखु—मुक्ति, 'असत्य' से मुक्ति। दुआरु—दरवाज़ा, परमात्मा का दर। एवै—इस तरह (परमात्मा की कृपा-दृष्टि होने से)।

नोट : शब्द 'एवै' प्रक्ट करता है कि इस पउड़ी की तीसरी तथा

चौथी पंक्ति में किये प्रश्न का उत्तर अन्तिम तीन पंक्तियों में है—यदि अमृत-वेला में बड़ाई का विचार करें तो उसकी कृपा से प्रशंसा रूप कपड़ा मिलता है तथा वह प्रभु प्रत्येक स्थान पर दिख जाता है।

जाणीऐ—जान लिया जाता है, जान लेते हैं, अनुभव कर लेते हैं। सभु—सर्वत्र। सचिआरु—अस्तित्व का घर, हस्ती का स्वामी।

अर्थ : पूर्ण आनन्द का समय हो (भाव, प्रभात काल हो), नाम (सिमरन करें) तथा उस की बड़ाई का विचार करें। (इस तरह) प्रभु की कृपा से 'सिफति'-रूप पटोला मिलता है, उस की कृपा दृष्टि से 'कूड़ की पालि' (असत्य की दीवार, असत्य का पर्दा) से मुक्ति मिलती है। तथा परमात्मा का दर प्राप्त हो जाता है। हे नानक! इस तरह यह समझ आ जाती है कि वह सदा रहने वाला (अस्तित्व का स्वामी) परमात्मा सर्व व्याप्त (भरपूर) है।४।

भाव : दान पुण्य करना या माया सम्बन्धी भेंट अर्पण करने से जीव की प्रभु से दूरी मिट नहीं सकती, क्योंकि यह (दाति) देय पदार्थ तो सभी प्रभु के ही दिये हुये हैं। उस प्रभु से बातें उसकी अपनी बोली में ही हो सकती हैं तथा वह बोली है 'प्रेम'। जो मनुष्य प्रातः काल में उठकर उसकी याद में जुड़ता है, उसको 'प्रेम पटोला' मिलता है, जिसकी कृपा से उसको सर्वत्र परमात्मा ही दिखाई देने लगता है।

थापिआ न जाइ, कीता न होइ ।।
आपे आपि निरंजनु सोइ ।।

पद अर्थ : थापिआ न जाइ—स्थापित नही किया जा सकता।

संस्कृत की 'स्था' धातु का अर्थ है 'स्थित होना' खड़े होना। इसकी 'प्रेरणार्थक धातु' है—स्थापय, जिसका अर्थ है, 'खड़ा करना, नींव रखनी'।

इस 'प्रेरणार्थक धातु' से संज्ञा है 'स्थापन', जिसका अर्थ है—'पुंसवन संस्कार'। स्त्री के गर्भवती होने की जब पहली निशानियाँ प्रक्ट होती हैं तब हिन्दु घरों में यह संस्कार किया जाता है ताकि पुत्र जन्म ले।

स्थापय से पहले उद् लगाने से यह बन जाता है 'उत्थाप्य', जिस का अर्थ उस के विपरीत है 'उखाड़ना, नाश करना,' जैसे :

आपे देखि दिखावै आपे ॥
आपे थापि उथापे आपे ॥　　　　*(मारु म: १, पृष्ठ १०३४)*

कीता न होइ—(हमारा) बनाया नहीं बनता। न होइ—अस्तित्व में नहीं आता। आपे आपि—आप ही, भाव, न उसको कोई पैदा करने वाला तथा न ही बनाने वाला है। सोइ निरंजनु—अंजन से रहित वह हरि। निरंजनु— अंजन से रहित, माया से रहित, जो माया से नहीं बना। जिस में माया का अंश नहीं है। (निर+अंजन, निर—बिना। अंजन—सुरमा, कालिख, विकारों का अंश, माया का प्रभाव। निरंजनु—वह, जिस पर माया का प्रभाव नहीं है)।

अर्थ : वह परमात्मा माया के प्रभाव से परे है, (क्योंकि) वह निरोल आप ही आप है, न वह पैदा किया जा सकता है और न ही हमारे बनाने से बनता है।

जिनि सेविआ, तिनि पाइआ मानु ॥
नानक, गावीऐ गुणी निधानु ॥

पद अर्थ : जिनि—जिस मनुष्य ने। तिनि—उस मनुष्य ने। मानु—आदर, सम्मान। गुणी निधानु—गुणों के ख़ज़ाने को। गावीऐ—गुण गान करें।

अर्थ : जिस मनुष्य ने उस अकाल पुरख (परमात्मा) का सिमरन किया है। उस ने ही सम्मान प्राप्त कर लिया है। हे नानक! (आओ) हम भी उस गुणों के ख़ज़ाने हरि का गुण गान करें।

गावीऐ सुणीऐ, मनि रखीऐ भाउ ॥
दुखु परहरि, सुखु घरि लै जाइ ॥

पद अर्थ : मनि—मन में। रखीऐ—टिकायें। भाउ—परमात्मा का प्यार। दुखु परहरि—दुख को दूर करके। घरि—हृदय में। लै जाइ—ले जाता है, कमा लेता है।

अर्थ : (आओ, अकाल पुरख के गुण) गायें तथा सुनें और अपने मन में उस का प्रेम टिकायें। (जो मनुष्य यह प्रयास करता है, वह) अपना दुःख दूर करके सुख को हृदय में बसा लेता है।

गुरमुखि नादं, गुरमुखि वेदं, गुरमुखि रहिआ समाई ॥
गुरु ईसरु, गुरु गोरखु बरमा, गुरु पारबती माई ॥

पद अर्थ : गुरमुखि—गुरु की ओर मुख करने से, जिस मनुष्य का मुँह गुरु की ओर है, गुरु द्वारा। नादं—आवाज़, ज़िन्दगी की रौ, शब्द। वेदं—ज्ञान। रहिआ समाई—समा रहा है, सब स्थानों पर व्यापक है। ईसरु—शिव। बरमा—ब्रह्मा। पारबती माई—माई पार्वती।

अर्थ : (पर उस परमात्मा का) नाम तथा ज्ञान गुरु द्वारा प्राप्त होता है। गुरु द्वारा ही (यह विश्वास पैदा होता है कि) वह हरि सर्वत्र व्यापक है। गुरु ही (हमारे लिये) शिव है, गुरु ही (हमारे लिये) गोरख तथा ब्रह्मा है तथा गुरु ही (हमारे लिये) माई पार्वती है।

जे हउ जाणा, आखा नाही, कहणा कथनु न जाई ॥
गुरा, इक देहि बुझाई ॥
सभना जीआ का इकु दाता, सो मै विसरि न जाई ॥५॥

पद अर्थ : हउ—मैं। जाणा—समझ लूँ, अनुभव कर लूँ। आखा

भाव : तीर्थ पर स्नान भी प्रभु की प्रसन्नता तथा प्यार की प्राप्ति का साधन नहीं है। जिस पर कृपा हो, वह गुरु के रास्ते पर चल कर प्रभु की याद में जुड़े। बस! उसी मनुष्य की बुद्धि में परिवर्तन होता है।

जे जुग चारे आरजा, होर दसूणी होइ ।।
नवा खंडा विचि जाणीऐ, नालि चलै सभु कोइ ।।

पद अर्थ : जुग चारे—चारों युगों जितनी। आरजा—आयु। दसूणी—दस गुणा। नवा खंडा विचि—भाव, सारी सृष्टि में। जाणिऐ—जाना जाये, प्रकट हो जाये। सभु कोइ—प्रत्येक मनुष्य। नालि चलै—साथ होकर चले, पक्ष करे, पक्षपाती हो।

अर्थ : यदि किसी मनुष्य की आयु चार युगों जितनी हो जाये (केवल इतनी ही नहीं, बल्कि यदि) इससे भी दस गुणा अधिक (आयु) हो जाये, यदि वह सारे संसार में भी प्रकट हो जाये तथा प्रत्येक मनुष्य उसके पीछे लगकर चले।

चंगा नाउ रखाइ कै जसु कीरति जगि लेइ ।।
जे तिसु नदरि न आवई त वात न पुछै के ।।
कीटा अंदरि कीटु, करि दोसी, दोसु धरे ।।

पद अर्थ : चंगा नाउ रखाइ कै—अच्छा नाम कमा कर, अच्छे नाम वाला होकर। जसु—शोभा, यश। कीरति—कीर्ति, शोभा। जगि—संसार में। लेइ—ले, कमाये, अर्जित करे। तिसु—परमात्मा की। नदरि—कृपा-दृष्टि में। न आवई—नहीं आ सकता। वात—बात, ख़बर। न के—कोई मनुष्य नहीं। कीटु—कीड़ा। करि—करके, बनाकर। दोसु धरे—दोष लगाता है। कीटा अंदरि कीटु—कीड़ों में कीड़ा, मामूली सा कीड़ा।

अर्थ : अगर वह अच्छा यश कमाकर सारे संसार में शोभा भी प्राप्त कर ले, परन्तु यदि परमात्मा की कृपा-दृष्टि में नहीं आ सकता, तो वह उस मनुष्य जैसा है जिसकी कोई बात भी नहीं पूछता (भाव, इतने मान सम्मान वाला होते हुये भी असल में निराश्रय ही है)। बल्कि ऐसा मनुष्य (परमात्मा के सामने) एक मामूली सा कीड़ा है ("खसमै नदरी कीड़ा आवै.....॥" आसा म: १)। अकाल पुरख (परमात्मा) उस को दोषी निर्धारित करके (उस पर नाम को भूलने का) दोष लगाता है।

नानक निरगुणि गुणु करे गुणवंतिआ गुणु दे ॥
तेहा कोइ न सुझई, जि तिसु गुणु कोइ करे ॥७॥

पद अर्थ : निरगुणि—गुणहीन मनुष्य में। गुणवंतिआ—गुणी मनुष्य को। करे—पैदा करता है। दे—देता है। तेहा—इस जैसा। न सुझई—नहीं मिलता। जि—जो। तिसु—उस निर्गुण को।

अर्थ : हे नानक! वह परमात्मा गुणहीन मनुष्य में गुण पैदा कर देता है तथा गुणी मनुष्यों को भी गुण देने की कृपा वही करता है। ऐसा अन्य कोई नहीं दिखाई देता, जो निर्गुण जीव को कोई गुण दे सकता हो। (प्रभु की कृपा-दृष्टि ही उसको ऊँचा कर सकती है, लम्बी उमर तथा जगत की शोभा सहायता नहीं करती)।७।

भाव : प्राणायाम की सहायता से दीर्घ आयु कर जगत में चाहे मनुष्य का मान-आदर बन जाये, पर यदि वह बन्दगी के गुण से हीन है, तो प्रभु की कृपा का पात्र नहीं बना। प्रभु की दृष्टि में तो वह नाम-हीन जीव एक छोटा-सा कीड़ा ही है। यह बंदगीवाला गुण जीव को प्रभु की कृपा से ही मिल सकता है।

नोट : पउड़ी न. ८ से ११ तक चारों एक ही लड़ी में हैं। इनका

सम्मिलित भाव यह है कि जिन्होंने प्रभु की याद में मन लगाया है, उनके मन सदा प्रसन्न रहते हैं।

सुणिऐ, सिध पीर सुरि नाथ ।।
सुणिऐ, धरति धवल आकास ।।
सुणिऐ, दीप लोअ पाताल ।।
सुणिऐ, पोहि न सकै कालु ।।
नानक, भगता सदा विगासु ।।
सुणिऐ, दूख पाप का नासु ।।८।।

पद अर्थ : सुणिऐ—सुनने से, यदि नाम में ध्यान लगाया जाये। सिध—वह योगी जिनकी मेहनत सफल हो चुकी है। सुरि—देवतागण। धवल—बैल, धरती का आसरा। दीप—पृथ्वी के विभाजन के सात द्वीप। लोअ—लोक, भवन। पोहि न सकै—डरा नहीं सकता, अपना प्रभाव नहीं डाल सकता। विगासु—प्रसन्नता, प्रफुल्लता।

अर्थ : हे नानक! अकाल पुरख (परमात्मा) के नाम में ध्यान लगाने वाले भक्त जनों के हृदय में सदा प्रफुल्लता बनी रहती है, (क्योंकि) उसका गुण-कीर्तन सुनने से (मनुष्य के) दुःखों तथा पापों का नाश हो जाता है। यह नाम हृदय में बसाने की ही बरकत है कि (साधारण मनुष्य) सिद्धों, पीरों, देवताओं तथा नाथों की पदवी प्राप्त कर लेते हैं, तथा उनको यह ज्ञान हो जाता है कि धरती, आकाश का आसरा वह प्रभु है जो सारे द्वीपों, लोकों तथा पातालों में व्यापक है।८।

भाव ; गुण-कीर्तन में जुड़कर साधारण मनुष्य भी उच्च आत्मिक पद पर पहुँच जाते हैं। उनको प्रत्यक्ष प्रतीत होता है कि प्रभु सारे खण्ड

तथा ब्रह्माण्ड में व्यापक है, तथा धरती आकाश का आश्रय है। इस प्रकार सर्वत्र प्रभु का दीदार होने से उनको मौत का डर भी प्रभावित नहीं करता।

सुणिऐ, ईसरु बरमा इंदु ॥
सुणिऐ, मुखि सालाहण मंदु ॥
सुणिऐ, जोग जुगति तनि भेद ॥
सुणिऐ, सासत सिम्रिति वेद ॥
नानक, भगता सदा विगासु ॥
सुणिऐ, दूख पाप का नासु ॥९॥

पद अर्थ : ईसरु—शिव। इंदु—इन्द्र देवता। मुखि—मुख से। सालाहण—गुण-कीर्तन, परमात्मा की बड़ाई। मंदु—बुरा मनुष्य। जोग जुगति—योग की युक्ति, योग के साधन। तनि—शरीर के बीच के। भेद—भेद।

अर्थ : हे नानक! (नाम से प्रेम करने वाले) भक्त जनों के हृदय में सदा प्रफुल्लता बनी रहती है। (क्योंकि) परमात्मा का गुण-कीर्तन सुनने से (मनुष्य के) दुःखों तथा पापों का नाश हो जाता है। परमात्मा के नाम में ध्यान जोड़ने के परिणाम स्वरुप साधारण मनुष्य शिव, ब्रह्मा तथा इन्द्र की पदवी पर पहुँच जाता है, बुरा मनुष्य भी मुँह से परमात्मा की बड़ाई (गुण-कीर्तन) करने लग जाता है। (साधारण बुद्धि वाले को भी) शरीर की गुप्त बातों (भाव, आँख, कान, जीभ आदि इन्द्रियों के कार्य व्यापार तथा उनकी विकारों की तरफ दौड़-भाग) के भेद का पता लग जाता है, प्रभु-मिलाप की युक्ति की समझ आ जाती है, शास्त्रों, स्मृतियों तथा वेदों का ज्ञान हो जाता है। (भाव, धार्मिक पुस्तकों का वास्तविक उच्च लक्ष्य

तब समझ आता है जब हम नाम में (सुरति) ध्यान जोड़ते हैं, नहीं तो केवल शब्दों को ही पढ़ लेते हैं। उस असली भावना में नहीं पहुँचते जिस भावना में पहुँच कर उन धार्मिक पुस्तकों का उच्चारण किया होता है।) ।९।

नोट : सुणिऐ मुखि सालाहण मंदु॥

कई टीकाकार सज्जन इस पंक्ति का इस प्रकार अर्थ करते हैं :

'सुनने से बुरे पुरुष भी मुख से सराहे जाते हैं।' या 'सुनने से बुरे आदमी भी मुख्य तथा प्रशंसा योग्य हो जाते हैं।

परन्तु गुरबाणी व्याकरण के अनुसार इस अर्थ के रास्ते में कई बाधायें हैं। शब्द 'मंदु' एक-वचन है, इस का अर्थ है 'बुरा मनुष्य'। शब्द 'सालाहण' क्रिया नहीं है। 'सालाहे जाते हैं' व्याकरण अनुसार वर्तमान काल, अन्य-पुरुष, बहु-वचन, कर्म वाच्य (Passive Voice) है, पुरानी पंजाबी में इसके लिये शब्द 'सालाहीअनि' है, जैसे 'पावहि' कर्तृवाच्य (Active Voice) से 'पाईअहि' तथा 'भवावहि' से 'भवाईअहि' है, जैसे पउड़ी न. २ में :

हुकमी उतमु नीचु, हुकमि लिखि दुखु सुखु 'पाईअहि' ॥
इकना हुकमी बखसीस, इकि हुकमी सदा 'भवाईअहि' ॥

'सराहते हैं' कर्तृवाच्य (Active Voice) वर्तमान काल, अन्य पुरुष, बहु-वचन है, पुरानी पंजाबी में इस के स्थान पर 'सालाहनि' है। यह अन्तर भी याद रखने वाला है, 'ण' नहीं है 'न' है तथा इसके साथ (ि) है जैसे :

गुरमुखि सालाहनि से सादु पाइनि, मीठा अंम्रितु सारु ॥

(प्रभाती म: ३, पृष्ठ १३३३)

तुधु सालाहनि तिन् धनु पलै, नानक का धनु सोई ॥

(प्रभाती म: ३, पृष्ठ १३२८)

सालाहनि—सराहते हैं।

इसलिये, इस विचार योग्य पंक्ति में शब्द 'सालाहण' का अर्थ 'सराहते हैं' या 'सराहे जाते हैं' नहीं किया जा सकता।

'सालाहण' 'संज्ञा', पुलिंग, बहु-वचन है, इस का एक-वचन 'सालाहणु' है तथा इस का अर्थ है 'सिफति' (प्रशंसा), जैसे :

सचु 'सालाहणु' वडभागी पाईऐ ॥ *(माझ म: ५, पृष्ठ १०७)*

सिफति 'सलाहणु' छडि कै, करंगी लगा हंसु ॥२॥१६॥

(म: १, सूही की वार, पृष्ठ ७९०)

पउड़ी का भाव : जैसे जैसे ध्यान नाम में जुड़ता है, जो मनुष्य पहले विकारी था, वह भी विकार छोड़कर गुण-कीर्तन करने का स्वभाव बना लेता है। इस तरह यह समझ आ जाती है कि कुमार्ग पर चलने वाली ज्ञानेन्द्रियां कैसे प्रभु से दूरी का साधन बनती जाती हैं तथा इस दूरी को मिटाने का कौन-सा तरीका है। नाम में ध्यान जुड़ने से ही धर्म पुस्तकों का ज्ञान मनुष्य के मन को प्रकाशित करता है।

सुणिऐ, सतु संतोखु गिआनु ॥
सुणिऐ, अठसठि का इसनानु ॥
सुणिऐ, पढ़ि पढ़ि पावहि मानु ॥
सुणिऐ, लागै सहजि धिआनु ॥
नानक, भगता सदा विगासु ॥
सुणिऐ, दूख पाप का नासु ॥१०॥

पद अर्थ : सतु संतोखु—दान तथा संतोष।

सतु—इस शब्द के तीन भिन्न भिन्न रूप मिलते हैं : 'सति', 'सतु', 'सत'। इनके अर्थ समझने के लिये निम्नलिखित प्रमाण ध्यान से पढ़ें :

(क) **सतु संतोखु होवै अरदासि ॥ ता सुणि सदि बहाले पासि ॥१॥**

(रामकली म: १, पृष्ठ ८७८)

(ख) **जतु सतु संजमु सचु सुचीतु ॥ नानक जोगी त्रिभवण मीतु ॥८॥२॥**

(रामकली म: १, पृष्ठ ९०३)

(ग) **सतीआ मनि संतोखु उपजै, देणै कै वीचारि ॥१॥६॥**

(आसा की वार म: १, पृष्ठ ४६६)

(घ) **गुर का सबदु करि दीपको, इह सत की सेज बिछाइ री ॥३॥१६॥११८॥**

(आसा म: ५, पृष्ठ ४००)

(ङ) **सती पहरी सतु भला, बहीऐ पढ़िआ पासि ॥१॥८॥**

(माझ की वार, सलोक म: २, पृष्ठ १४६)

इन उपर्युक्त प्रमाणों के अंक नं. (क) में शब्द 'सतु' शब्द 'संतोखु' के साथ आया है। अंक नं. (ख) में 'सतु' शब्द का प्रयोग 'जतु' के साथ किया गया है। अंक नं. (ङ) में 'सतु' (सती) संस्कृत का 'सप्त' है जिसका अर्थ है 'सात' की गिनती।

शब्द 'सतु' संस्कृत के धातु 'अस' से बना है, जिसका अर्थ है 'हाथ से छोड़ना'। इस लिये 'सतु' का अर्थ है 'दानु'। अंक नं. (ग) में आसा की वार वाले प्रमाण से साफ स्पष्ट हो जाता है, जहाँ 'सतीआ' का अर्थ है 'दानी मनुष्यों'। 'सती देइ संतोखी खाइ' आम प्रचलित पंक्ति है, जिस में 'सती' का अर्थ है 'दानी'। 'दानी' तथा 'सन्तोषी' का आपस में गहरा सम्बन्ध है। 'दानी' वही हो सकता है जो 'सन्तोषी' भी है, नहीं तो जो स्वयं तृष्णा से पीड़ित हो, वह अपने हाथों किसी दूसरे को क्या दे सकता है ? गुरु साहिब इन दोनों गुणों का बहुत जगह इक्टठा वर्णन करते हैं। इस लिये, अंक नं. (क) में 'सतु' का अर्थ है 'दान, दान करने का स्वभाव'।

शब्द 'सतु' का दूसरा अर्थ है 'पवित्र आचरण, पतिव्रत धर्म, स्त्रीव्रत

धर्म।' इस अर्थ में इस शब्द का सम्बन्ध 'जतु' के साथ ठीक बैठता है। इस लिये अंक नं (ख) में 'सतु' का अर्थ है 'पवित्र आचरण'।

अंक नं. (ग) में 'सतु' का अर्थ है 'दान'। अंक नं. (घ) में 'सतु' का अर्थ फिर 'पवित्र आचरण' है।

शब्द 'सति' भी संस्कृत के धातु 'अस' से बना है, जिस का अर्थ है 'होना'। 'सति' का अर्थ है 'अस्तित्व वाला, सत्य'।

जपु जी साहिब में 'सति' तथा 'सतु' वाली निम्नलिखित पंक्तियाँ हैं :

(१) **'सतिनामु'** *(मूल मन्त्र में)*

(२) **सुणिऐ, सतु संतोखु गिआनु॥** *(पउड़ी १०)*

(३) **असंख सती असंख दातार॥** *(पउड़ी १७)*

(४) **सति सुहाणु सदा मनि चाउ॥** *(पउड़ी २१)*

(५) **गावनि जती सती संतोखी गावहि वीर करारे॥** *(पउड़ी २७)*

अठसठि—अड़सठ तीर्थ। पढ़ि पढ़ि—विद्या पढ़ कर। पावहि—पाते हैं, प्राप्त करते हैं। सहजि—सहज अवस्था में। सहज—साथ पैदा हुआ, (सह-साथ, ज—पैदा हुआ); वह स्वभाव जो शुद्ध-स्वरूप आत्मा के साथ पैदा हुआ है, शुद्ध स्वरूप आत्मा का अपना वास्तविक धर्म, माया के तीन गुणों को लांघकर ऊपर की उच्च अवस्था, तुरीय अवस्था, शान्ति, अडोलता। धिआनु—ध्यान, वृत्ति। गिआनु—ज्ञान, सारे संसार को प्रभु-पिता का एक परिवार समझने की सूझ, परमात्मा के साथ जान-पहचान।

अर्थ : हे नानक! (परमात्मा के नाम में ध्यान जोड़ने वाले) भक्त जनों के हृदय में सदा प्रफुल्लता बनी रहती है, (क्योंकि) परमात्मा का गुण-कीर्तन सुनने से (मनुष्य के) दुःखों तथा पापों का नाश हो जाता है। प्रभु के नाम में जुड़ने से (हृदय में) (दान देने का स्वभाव) संतोष तथा प्रकाश प्रकट हो जाता है, मानों अड़सठ तीर्थों का स्नान (ही) हो जाता

है (भाव, अड़सठ तीर्थों के स्नान नाम जपने में ही आ जाते हैं)। जो सत्कार (मनुष्य विद्या) पढ़ कर प्राप्त करते हैं, वह भक्त जनों को परमात्मा के नाम में जुड़ कर ही मिल जाता है। नाम सुनने से अडोलता में चित्तवृत्ति टिक जाती है।१०।

भाव : नाम में ध्यान जोड़ने से ही मन विशाल होता है, ज़रूरतमंदों की सेवा तथा संतोष वाला जीवन बनता है। नाम में डुबकी ही अड़सठ तीर्थों का स्नान है, जगत के किसी मान-सम्मान की परवाह नहीं रह जाती, मन सहज-अवस्था में, अडोलता में मग्न रहता है।१०।

सुणिऐ, सरा गुणा के गाह ॥
सुणिऐ, सेख पीर पातिसाह ॥
सुणिऐ, अंधे पावहि राहु ॥
सुणिऐ, हाथ होवै असगाहु ॥
नानक, भगता सदा विगासु ॥
सुणिऐ, दूख पाप का नासु ॥११॥

पद अर्थ : सरा गुणा के—गुणों के सरोवरों के, अनन्त गुणों के। गाह—सूझ वाले, खोजने वाले। राहु—रास्ता। असगाहु—गहरा समुद्र, संसार। हाथ—शब्द 'हाथ' स्त्रीलिंग है इसलिये एक-वचन में भी इसके अन्त में (ु) नहीं है। इसका अर्थ है 'गहराई की समझ'। पर जब यह पुलिंग हो तब इसका अर्थ है 'मनुष्य का अंग', 'हाथ'। जैसे :

हाथु पसारि सकै को जन कउ, बोलि सकै न अंदाजा ॥१॥

(बिलावल कबीर जी, पृष्ठ ८५६)

बहु-वचन 'हाथ' का रूप स्त्रीलिंग 'हाथ' वाला ही है, जैसे :

हाथ देइ राखे परमेसरि, सगला दुरतु मिटाइआ ॥१॥६॥१५॥

(गूजरी म: ५, पृष्ठ ४९९)

हाथ होवै—पकड़ हो जाती है, गहराई का पता चल जाता है, असलीयत की समझ पड़ जाती है।

अर्थ : हे नानक! (परमात्मा के नाम में ध्यान जोड़ने वाले) भक्त जनों के हृदय में सदा प्रफुल्लता बनी रहती है। (क्योंकि) परमात्मा का नाम सुनने से (मनुष्य के) दु:खों तथा पापों का नाश हो जाता है। परमात्मा के नाम में ध्यान जोड़ने से (साधारण) मनुष्य अनन्त गुणों की सूझ वाले हो जाते हैं, शेख़, पीर तथा पातशाहों की पदवी प्राप्त कर लेते हैं। यह नाम सुनने की ही बरकत है कि अन्धे-ज्ञान-हीन मनुष्य भी (परमात्मा के मिलन का) रास्ता खोज लेते हैं। अकाल पुरख परमात्मा के नाम में जुड़ने के परिणाप स्वरूप इस गहरे संसार-समुद्र की असलीयत समझ में आ जाती है।११।

भाव : जैसे जैसे ध्यान नाम में जुड़ता है, मनुष्य दैवी गुणों के समुद्र में डुबकी लगाता है। संसार अथाह समुद्र है, जहाँ परमात्मा से बिछुड़ा हुआ जीव अँधों की तरह हाथ पैर मारता है। परन्तु नाम में जुड़ने से जीव जीवन का सही मार्ग खोज लेता है।

नोट : नं. १२ से १५ तक चार पउड़ियों का विषय एक ही लड़ी का है।

मंने की गति कही न जाइ ॥
जे को कहै, पिछै पछुताइ ॥
कागदि, कलम न लिखणहारु ॥
मंने का, बहि करनि वीचारु ॥

ऐसा नामु निरंजनु होइ ॥
जे को मंनि जाणै मनि कोइ ॥१२॥

पद अर्थ : मंने की—मानने वाले की, विश्वास कर लेने वाले की। गति—हालत, अवस्था। कहै—बताये, ब्यान करे। मंने का वीचारु—श्रद्धा रखने वाले के बड़प्पन का विचार। बहि करनि—बैठ कर करते हैं। ऐसा—ऐसा, इतना ऊँचा। होइ—है। मंनि—श्रद्धा रख कर, लग्न लगाकर। मंनि जाणै—श्रद्धा रखकर देखे, मानकर देखे। मनि—मन में। कागदि—कागज़ पर। कलम—लेखनी (से)।

अर्थ : उस मनुष्य की (उच्च) आत्मिक अवस्था बतायी नहीं जा सकती, जिस ने (परमात्मा के नाम को) मान लिया है, (भाव, जिसकी लग्न नाम में लग गई है)। यदि कोई मनुष्य ब्यान करे भी तो वह बाद में पश्चाताप करता है (कि मैंने हल्का यत्न किया है)। मनुष्य मिलकर (नाम में) विश्वास रखने वाले की आत्मिक अवस्था का अंदाजा लगाते हैं, परन्तु कागज़ पर कलम से कोई मनुष्य लिखने में समर्थ नहीं है। परमात्मा का नाम बहुत ऊँचा है, तथा माया के प्रभाव से परे है (इस में जुड़ने वाला भी उच्च आत्मिक अवस्था वाला हो जाता है परन्तु यह बात तभी समझ में आती है) जब कोई मनुष्य अपने अन्दर लग्न लगाकर देखे।१२।

भाव : प्रभु माया के प्रभाव से बहुत ऊँचा है। उस के नाम में ध्यान जोड़ कर जिस मनुष्य के मन में उसकी लग्न लग जाती है उस की भी आत्मा माया की मार से ऊपर हो जाती है।

जिस मनुष्य की प्रभु से लग्न लग जाये, उसकी आत्मिक उच्चता न कोई ब्यान कर सकता है न कोई लिख सकता है।

मंनै, सुरति होवै मनि बुधि ॥

मंनै, सगल भवण की सुधि ॥

मंनै, मुहि चोटा ना खाइ ॥

मंनै, जम कै साथि न जाइ ॥

ऐसा नामु निरंजनु होइ ॥

जे को मंनि जाणै मनि कोइ ॥१३॥

पद अर्थ : मंनै—मानने से, यदि मान लें, यदि प्रभु के नाम में विश्वास बन जाये, लग्न लग जाये। सुरति होवै—(ऊँची) स्थिति हो जाती है। मनि—मन में। बुधि—जागृति। सुधि—ज्ञान। मुहि—मुँह पर। चोटा—चोट। जम कै साथि—यमों के साथ।

अर्थ : यदि मनुष्य के मन में प्रभु के नाम की लग्न लग जाये, तो उसकी चित्तवृत्ति ऊँची हो जाती है, उस के मन में जागृति आ जाती है (भाव, माया में सोया मन जागृत हो जाता है), सारे भवनों की उसे सूझ हो जाती है (कि हर स्थान पर प्रभु व्यापक है)। वह मनुष्य (संसार के विकारों की) चोटें मुँह पर नहीं खाता (भाव, सांसारिक विकार उसको दबा नहीं सकते) तथा यमों के साथ नहीं जाता (भाव, वह जन्म मरन के चक्र से बच जाता है)। परमात्मा का नाम जो माया के प्रभाव से परे है, इतना ऊँचा है कि (इस में जुड़ने वाला भी उच्च आत्मिक अवस्था वाला हो जाता है, पर यह बात तब ही समझ में आती है), यदि कोई मनुष्य अपने मन में हरि-नाम की लग्न पैदा कर ले।१३।

भाव : प्रभु-चरणों की प्रीति मनुष्य के मन में प्रकाश पैदा कर देती है, सारे संसार में उसको परमात्मा ही दिखायी देता है। उसको विकारों की चोटें नहीं पड़ती तथा न ही उसको मौत डरा सकती है।

मंनै, मारगि ठाक न पाइ ॥
मंनै, पति सिउ परगटु जाइ ॥
मंनै, मगु न चलै पंथु ॥
मंनै, धरम सेती सनबंधु ॥
ऐसा नामु निरंजनु होइ ॥
जे को मंनि जाणै मनि कोइ ॥१४॥

पद अर्थ : मारगि—मार्ग में, राह में। ठाक—रुकावट। ठाक न पाइ—रुकावट नहीं पड़ती। पति सिउ—इज्ज़त से। परगटु—प्रसिद्ध हो कर।

मगु पंथु :

(प्र.) शब्द 'मगु' तथा 'पंथु' के अन्त में (ु) की मात्रा क्यों है ?

(उ.) साधारन नियम अनुसार तो यहाँ (ि) ही चाहिये, परन्तु संस्कृत में एक नियम साधारणत्या प्रचलित है कि यदि 'लम्बे समय' या 'लम्बे मार्ग' का संकेत हो, तो अधिकरन कारक के स्थान पर कर्म कारक का प्रयोग किया जाता है। वही नियम प्राकृत द्वारा थोड़ा थोड़ा पुरानी पंजाबी में इस्तेमाल किया गया है। जैसे :

(१) **गावनि पंडित पढ़नि रखीसर, 'जुगु जुगु' वेदा नाले ॥** *(पउड़ी २७)*

(२) **हरि 'जुगु जुगु' भगत उपाइआ, पैज रखदा आइआ राम राजे ॥**
(आसा छंत म: ४, पृष्ठ ४५१)

(३) **सावणि वरसु अंम्रिति 'जगु' छाइआ जीउ ॥**
(गउड़ी माझ म: ४, पृष्ठ १७३)

(४) **बावै 'मारगु' टेढा चलना ॥ सीधा छोडि अपूठा बुनना ॥३॥२९॥९८॥**
(गउड़ी गुआरेरी म: ५, पृष्ठ १८५)

मगु—मार्ग, रास्ता (संस्कृत मार्ग से प्राकृत शब्द 'मग' है)। पंथु—रास्ता। गुरु ग्रन्थ साहिब की बाणी में ये दोनों शब्द 'मारग' (जिसका प्राकृत रूप 'मग' है) तथा पंथ एक ही अर्थ के लिये प्रयुक्त किये गये हैं। जैसे :

(१) **मारगि पंथि चले गुर सतिगुर संगि सिखा ॥** *(तुखारी छंत म: ४, पृष्ठ १११६)*

(२) **मुंध नैण भरेदी, गुण सारेदी, किउ प्रभ मिला पिआरे ॥**
मारगु पंथु न जाणउ विखड़ा, किउ पाईऐ पिरु पारे ॥

(तुखारी म: १, पृष्ठ ११११)

सेती—साथ। सनबंधु—सम्बन्ध, रिश्ता, मेल।

अर्थ : यदि मनुष्य का मन नाम में लग जाये तो ज़िन्दगी की राह में विकारों आदि की कोई रुकावट नहीं पड़ती। वह (संसार में) यश कमा कर सम्मान के साथ जाता है। उस मनुष्य का धर्म के साथ (सीधा) सम्बन्ध बन जाता है। वह फिर (दुनिया के भिन्न भिन्न धर्मों के बताये) रास्तों पर नहीं चलता। (भाव, उसके अन्दर यह विचार नहीं आता कि यह रास्ता अच्छा है और यह बुरा है)। परमात्मा का नाम जो माया के प्रभाव से परे है, इतना (ऊँचा) है, (कि इस में जुड़ने वाला भी उच्च आत्मिक अवस्था वाला हो जाता है, परन्तु यह बात तब ही समझ में आती है) जब कोई मनुष्य अपने मन में हरि-नाम की लग्न पैदा कर ले।१४।

भाव : याद की बरकत से जैसे जैसे मनुष्य का प्यार परमात्मा से बनता है, इस सिमरन रूप 'धर्म' के साथ उसका इतना गहरा सम्बन्ध बन जाता है कि कोई रुकावट उसको इस सही निशानें से हटा नहीं सकती। अन्य पग-डंडियां भी उसे कुमार्ग पर नहीं ले जा सकतीं।

मंनै, पावहि मोखु दुआरु ॥
मंनै, परवारै साधारु ॥

मंनै, तरै तारे गुरु सिख ॥
मंनै, नानक भवहि न भिख ॥
ऐसा नामु निरंजनु होइ ॥
जे को मंनि जाणै मनि कोइ ॥१५॥

पद अर्थ : पावहि—खोज लेते हैं। मोखु दुआरु—मुक्ति का दरवाजा, असत्य (कूड़) से मुक्ति पाने का रास्ता। परवारै—परिवार को। साधारु—आधार सहित करता है, (परमात्मा का) आश्रय दृढ़ करवाता है। तरै गुरु—गुरु स्वयं तैरता है। सिख—सिक्खों को।

जपु जी में शब्द 'सिख' निम्नलिखित पंक्तियों में आया है :

(१) **मति विचि रतन जवाहर माणिक, जे इक गुर की सिख सुणी ॥**
(पउड़ी ६)

(२) **मंनै तरै तारे गुरु सिख ॥** *(पउड़ी १५)*

पहली पंक्ति में 'सिख' स्त्रीलिंग है। इसका विशेषण 'इक' भी स्त्रीलिंग है। इस लिये एक-वचन होते हुये भी (ु) उ की मात्रा नहीं है, जो केवल पुलिंग लिए है। दूसरी पंक्ति में 'सिख' पुलिंग बहु-वचन है।

तारे सिख—सिक्खों को तारता है। भवहि न—नहीं घूमते। भवहि न भिख—भिक्षा के लिये नहीं घूमते फिरते, ज़रूरतों के लिए दर-दर नहीं भटकते फिरते, हर किसी के मोहताज नहीं बने फिरते।

अर्थ : यदि मन में प्रभु के नाम की लग्न लग जाये तो मनुष्य असत्य (कूड़) से मुक्ति का रास्ता ढूँढ लेते हैं। (ऐसा मनुष्य) अपने परिवार को भी (परमात्मा का) आश्रय दृढ़ करवाता है। नाम में मन लग जाने से ही सतिगुरु (भी आप संसार सागर से) पार हो जाता है तथा सिक्खों को पार कराता है। नाम में मन जुड़ने से, हे नानक! मनुष्य जन जन के मोहताज

नहीं बने फिरते। अकाल पुरख (परमात्मा) का नाम जो माया के प्रभाव से परे है, इतना ऊँचा है कि इस में जुड़ने वाला भी उच्च जीवन वाला हो जाता है, (परन्तु यह बात तब ही समझ में आती है), जब कोई मनुष्य अपने मन में हरि-नाम की लग्न पैदा करे।१५।

भाव : इस लग्न की बरकत से वह सारे बंधन टूट जाते हैं जिन्होंने प्रभु से दूरी बनायी हुयी थी। ऐसी लग्न वाला इन्सान केवल आप ही नहीं बचता, अपने परिवार के सदस्यों को भी स्वामी-प्रभु के साथ जोड़ देता है। यह देन जिनको गुरु से मिलती है, वे प्रभु-दर से हटकर किसी और तरफ़ नहीं भटकते।

नोट : पउड़ी नं. १२ में दो स्थानों पर शब्द 'मंने' है, बाकी सब स्थानों पर मंनै आया है। दोनों के अर्थों में अन्तर है। पहली पंक्ति है—'मंने की गति कही न जाइ' इसी पउड़ी में चौथी पंक्ति है—'मंने का बहि करनि वीचारु'। यहाँ 'मंने' का भाव है 'मंने हुये मनुष्य का'। बाकी सब स्थानों पर 'मंनै' है। जैसे पहली चार पउड़ियों में 'सुणिऐ' आया है। 'सुणिऐ' का अर्थ है, 'सुनने से, यदि सुन ले'। वैसे ही 'मंनै' का अर्थ है—'मान लेने से, यदि मान ले, यदि मन विश्वास कर ले'।

पंच परवाण, पंच परधानु ॥
पंचे, पावहि दरगहि मानु ॥
पंचे, सोहहि दरि राजानु ॥
पंचा का गुरु एकु धिआनु ॥

पद अर्थ : पंच—वे मनुष्य जिन्होंने नाम सुना है तथा माना है। वे मनुष्य जिनकी चित्तवृत्ति नाम में जुड़ी हुयी है तथा जिनके अन्दर विश्वास पैदा हो गया है।

नोट : यह शब्द 'पंच' उनके लिये है जिन का वर्णन पिछली आठ पउड़ियों में आया है।

परवाण—कबूल। परधानु—प्रधान। पंचे—पंच ही, संत जन ही। दरगहि—परमात्मा के दरबार में। मानु—आदर, बड़प्पन। सोहहि—सुशोभित होते हैं, सुन्दर लगते हैं। दरि—दर पर, दरबार में। गुरु एकु—केवल गुरु ही। धिआनु—चित्तवृत्ति (ध्यान) का निशाना (लक्ष्य)।

अर्थ : जिन मनुष्यों की चित्तवृत्ति नाम में जुड़ी रहती है तथा जिन के अन्दर प्रभु के लिये लग्न बन जाती है, वही मनुष्य (यहाँ जगत में) मान-सत्कार प्राप्त करते हैं तथा प्रधान (सब के आगे रहने वाले) बने रहते हैं, परमात्मा के दरबार में भी वे पंच जन ही आदर प्राप्त करते हैं। राज-दरबारों में भी वे पंच जन ही सुशोभित होते हैं। इन पंच जनों की चित्तवृत्ति का लक्ष्य केवल एक गुरु ही है (भाव, इनका ध्यान गुरु-शब्द में ही रहता है, गुरु-शब्द में जुड़े रहना ही इन का असल लक्ष्य है)।

जे को कहै, करै वीचारु ॥
करते कै करणै, नाही सुमारु ॥

पद अर्थ : कहै—ब्यान करे, कथन करे। वीचारु—कुदरत के लेखे का विचार। करते कै करणै—परमात्मा की कुदरत का। सुमारु—हिसाब, लेखा।

अर्थ : (परन्तु गुरु-शब्द में जुड़े रहने का यह परिणाम नहीं निकल सकता कि कोई मनुष्य प्रभु की बनायी सृष्टि का अन्त पा सके) परमात्मा की कुदरत का कोई लेखा ही नहीं है (भाव, अन्त नहीं पाया जा सकता), चाहे कोई कथन कर के देख ले तथा विचार कर ले। (परमात्मा तथा उसकी कुदरत का अन्त ढूँढना मनुष्य के जीवन का मनोरथ हो ही नहीं सकता)।

नोट : प्राचीन काल में कई ऋषि मुनि जंगल में तप करते रहे, जिन्होंने उपनिषदें लिखी। ये बहुत पुरानी धर्म पुस्तकें हैं। कई पुस्तकों में यह विचार किया गया है कि जगत कब बना, क्यों बना, कैसे बना, कितना बड़ा है इत्यादि। भक्ति करने के लिये गये ऋषि भक्ति के स्थान पर एक ऐसे उद्यम में लग गये जो मनुष्य की समझ से परे है। यहाँ सतिगुरु जी इस त्रुटि की ओर संकेत करते हैं। ऐसे तुच्छ यत्नों का ही यह परिणाम था कि साधारण लोगों ने यह मान लिया कि हमारी धरती को एक बैल ने उठाया हुआ है। यह उदाहरण लेकर सतिगुरु जी इस का निषेध करके कहते हैं कि कुदरत अनन्त है तथा इसको बनाने वाला भी अनन्त है।

धौलु धरमु, दइआ का पूतु ॥
संतोखु थापि रखिआ जिनि सूति ॥
जे को बुझै होवै सचिआरु ॥
धवलै उपरि केता भारु ॥
धरती होरु, परै होरु होरु ॥
तिस ते भारु, तलै कवणु जोरु ॥

पद अर्थ : धौलु—बैल। दइआ का पूतु—दया का पुत्र, धर्म दया से पैदा होता है, भाव, जिस हृदय में दया है, वहाँ धर्म प्रफुल्लित होता है। संतोखु—संतोष को। थापि रखिआ—टिका रखा है, अस्तित्व में लाये हैं, पैदा किया है। जिनि—जिस (धर्म) ने। धरमु—परमात्मा के नियम। सूति—सूत्र में, मर्यादा में। बुझै—समझ ले। सचिआरु—सत्य के प्रकाश के योग्य। केता भारु—असीम भार। धरती होरु—धरती के नीचे और बैल। परै—उस के नीचे। तिस ते—उस बैल से। तलै—उस बैल के नीचे। कवणु जोरु—कौन-सा सहारा ?

अर्थ : (परमात्मा का) धर्म रूपी दृढ़ नियम ही बैल है (जो सृष्टि को कायम रख रहा है)। (यह धर्म) दया का पुत्र है (भाव, परमात्मा ने अपनी कृपा से सृष्टि को टिकाये रखने के लिये 'धर्म' रूप नियम बना दिया है)। इस धर्म ने अपनी मर्यादा के अनुसार संतोष को जन्म दिया है। यदि कोई मनुष्य (इस ऊपर बताये विचार को) समझ ले तो वह इस योग्य हो जाता है कि उसके अन्दर परमात्मा का प्रकाश हो जाये। (नहीं तो, विचार तो करो कि) बैल पर धरती का कितना असीम भार है (वह बिचारा इतने भार को उठा कैसे सकता है ?), (दूसरी विचार और है कि यदि धरती के नीचे बैल है, उस बैल को सहारा देने के लिये नीचे और धरती होगी, उस) धरती के नीचे एक अन्य बैल, उस के नीचे (धरती के नीचे) और बैल, फिर और बैल, (इसी तरह अन्तिम) बैल के भार को (सहारने के लिए उस के) नीचे कौन-सा सहारा होगा ?

जीअ जाति, रंगा के नाव ।।
सभना लिखिआ वुड़ी कलाम ।।
एहु लेखा लिखि जाणै कोइ ।।
लेखा लिखिआ केता होइ ।।
केता ताणु, सुआलिहु रूपु ।।
केती दाति, जाणै कौणु कूतु ।।
कीता पसाउ, एको कवाउ ।।
तिस ते होए लख दरीआउ ।।

पद अर्थ : जीअ—जीव-जन्तु। के नाव—कई नामों के। वुड़ी—बहती, चलती। कलाम—कलम। वुड़ी कलाम—चलती कलम से,

भाव कलम को रोके बिना ही लगातार। लिखि जाणै—लिखना जानता है, लिखने की समझ है। कोइ—कोई विरला। लेखा लिखिआ—लिखा हुआ लेखा, यदि यह लेखा लिखा जाये। केता होइ—कितना बड़ा हो जाये, अनन्त हो जाये। पसाउ—पसारा, संसार। कवाउ—बचन, हुक्म। तिस ते—उस हुक्म से। होए—बन गये। लख दरीआउ—लाखों दरिया। सुआलिहु—सुन्दर। कूतु—माप, अन्दाज़ा।

अर्थ : (सृष्टि में) कई जातियों के, कई प्रकार के तथा कई नामों के जीव हैं। इन सब ने लगातार चलती कलम से (परमात्मा की कुदरत का) लेखा लिखा है, (परन्तु) कोई विरला मनुष्य यह लेखा लिखना जानता है (भाव, परमात्मा की कुदरत का अन्त कोई भी जीव नहीं पा सकता)। (यदि) लेखा लिखा (भी जाये, तो यह अन्दाज़ा नहीं लग सकता कि लेखा) कितना बड़ा हो जाये। परमात्मा का बल असीम है, असीम सुन्दर रूप है, उसकी देन असीम है—इसका कौन अन्दाज़ा लगा सकता है ? (परमात्मा ने) अपने हुक्म से सारा संसार बना दिया, उस हुक्म से (ही जिन्दगी के) लाखों दरिया बन गये।

कुदरति कवण, कहा वीचारु ।।
वारिआ न जावा एक वार ।।
जो तुधु भावै साई भली कार ।।
तू सदा सलामति निरंकार ।।१६।।

पद अर्थ : कुदरति—ताकत, सामर्थ्य। कवण—कौन-सी ? कुदरति कवण—क्या सामर्थ्य ? ['कुदरति' शब्द स्त्रीलिंग है। 'कवण' भी स्त्रीलिंग है यह 'कुदरति' का विशेषण है।] कहा—मैं कहूँ। कहा वीचारु—मैं विचार

कर सकूँ। वारिआ न जावा—कुर्बान नहीं हो सकता (भाव, मेरी क्या सामर्थ्य है ?)। साई कार—वही कार्य। सलामति—स्थिर, अटल। निरंकार—हे हरि!

अर्थ : मेरी क्या ताकत है कि (परमात्मा की कुदरत का) विचार कर सकूँ ? (हे परमात्मा!) मैं तो तुझ पर एक बार भी कुर्बान होने योग्य नहीं हूँ। (भाव, मेरी हस्ती बहुत ही तुच्छ है)। हे निरंकार! तू सदा अटल रहने वाला है। जो तुझे अच्छा लगता है वही कार्य भला है (भाव, तेरी रज़ा में रहना ही ठीक है)।१६।

भाव : भाग्यशाली हैं वे मनुष्य, जिन्होंने गुरु के बताये हुये मार्ग को अपने जीवन का मनोरथ बनाया है। जिन्होंने नाम में चित्तवृत्ति जोड़ी है तथा जिन्होंने परमात्मा के साथ प्यार का रिश्ता जोड़ा (बनाया) है। इस मार्ग पर चलकर प्रभु की रज़ा में रहना ही उनको अच्छा लगता है। यह नाम-सिमरन रूप 'धर्म' उनके जीवन का सहारा बनता है, जिस से वे सन्तोष वाला जीवन बिताते हैं।

परन्तु गुरु द्वारा बताये मार्ग पर चलने का यह परिणाम नहीं निकल सकता कि कोई मनुष्य प्रभु की बनायी सृष्टि का अन्त पा सके। इधर तो जैसे जैसे अधिक गहराई में जाओगे, वैसे वैसे यह सृष्टि अधिक असीम, अधिक असीम प्रतीत होगी। असल में ऐसे कुप्रयासों का ही परिणाम था कि साधारण लोगों ने यह मान लिया कि हमारी धरती को एक बैल ने उठाया हुआ है। परमात्मा तथा उसकी कुदरत का अन्त ढूँढना मनुष्य के जीवन का मनोरथ नहीं बन सकता।१६।

असंख जप असंख भाउ ।।

असंख पूजा असंख तपताउ ।।

पद अर्थ : असंख—असंख्य (जीव)। भाउ—प्यार। तपताउ—तपों का तपना (करना)।

अर्थ : (परमात्मा की रचना में) असंख्य जीव जप करते हैं, अनन्त जीव (दूसरों से) प्यार (का व्यवहार) कर रहे हैं। कई जीव पूजा कर रहे हैं तथा असंख्य ही जीव तप साधना कर रहे हैं।

असंख गरंथ मुखि वेद पाठ ॥

असंख जोग मनि रहहि उदास ॥

पद अर्थ : मुखि—मुख से। गरंथ वेद पाठ—वेदों तथा अन्य धार्मिक पुस्तकों के पाठ। जोग—योग साधना करने वाले। मनि—मन में। उदास रहहि—उदासीन रहते हैं।

अर्थ : अनन्त जीव वेदों तथा अन्य धार्मिक पुस्तकों का पाठ मुँह से करते हैं। योग साधना करने वाले असंख्य मनुष्य अपने मन में (माया की तरफ़ से) उदासीन रहते हैं।

असंख भगत, गुण गिआन वीचारु ॥

असंख सती, असंख दातार ॥

पद अर्थ : गुण वीचारु—परमात्मा के गुणों का ख़्याल। गिआन वीचारु—(परमात्मा के) ज्ञान का विचार। सती—सत्य धर्म वाले मनुष्य, दानी मनुष्य। दातार—देय पदार्थ देने वाले, कृपा करने वाले।

अर्थ : (परमात्मा की कुदरत में) असंख्य भक्त हैं, जो परमात्मा के गुणों तथा ज्ञान का विचार कर रहे हैं, अनेक ही दानी तथा दाता हैं।

असंख सूर, मुह भखसार ॥

असंख मोनि, लिव लाइ तार ॥

पद अर्थ : सूर—शूरवीर, योद्धा। मुह—मुखों पर। भखसार—लोहा खाने वाले, शस्त्रों के वार सहने वाले। मोनि—चुप रहने वाले। लिव लाइ तार—लिव की तार लगा कर, लगातार लिव लगाकर, एक-रस वृत्ति जोड़कर।

अर्थ : (परमात्मा की रचना में) अनन्त शूरवीर हैं, जो अपने मुखों पर (भाव, सामने होकर) शस्त्रों के वार सहते हैं, अनेक मौनव्रती हैं, जो लगातार वृत्ति जोड़कर बैठे हुये हैं।

कुदरति कवण, कहा वीचारु ॥
वारिआ न जावा एक वार ॥
जो तुधु भावै साई भली कार ॥
तू सदा सलामति निरंकार ॥१७॥

अर्थ : मेरी क्या ताकत है कि परमात्मा की कुदरत का विचार कर सकूँ ? (हे परमात्मा!) मैं तो तुम पर एक बार भी कुर्बान होने योग्य नहीं हूँ (भाव, मेरी हस्ती बहुत ही तुच्छ है)। हे निरंकार! तू सदा अटल रहने वाला है। जो तुझे अच्छा लगता है वही कार्य भला है। (भाव, तेरी रज़ा में रहना ही ठीक है)।१७।

भाव : प्रभु की सारी कुदरत का अंत खोजना तो एक तरफ़ रहा, जगत में यदि आप केवल उन लोगों की ही गिनती करनी शुरु करें जो जप, तप, पूजा, धार्मिक पुस्तकों का पाठ, योग, समाधि आदि कार्य करते चले आ रहे हैं, तो यह लेखा समाप्त होने योग्य ही नहीं है।

असंख मूरख अंध घोर ॥
असंख चोर हरामखोर ॥
असंख अमर करि जाहि जोर ॥

पद अर्थ : मूरख अंध घोर—महा मूर्ख। हरामखोर—पराया माल खाने वाले। अमर—हुक्म। जोर—धक्का। करि जाहि—करके (अन्त में इस संसार से) चले जाते हैं।

अर्थ : (निरंकार की बनायी हुयी सृष्टि में) अनेक ही महा मूर्ख हैं, अनेक ही चोर हैं, जो पराया माल (चुरा चुरा कर) व्यवहार में ला रहे हैं तथा अनेक ही ऐसे मनुष्य हैं जो (दूसरों पर) हुक्म चलाते तथा ज़बरदस्ती करते हुये (अन्त में इस संसार से) चले जाते हैं।

असंख गलवढ, हतिआ कमाहि ॥
असंख पापी, पापु करि जाहि ॥

पद अर्थ : गलवढ—गला काटने वाले, ख़ूनी मनुष्य। हतिआ कमाहि—दूसरों के गले काटते हैं। पापु करि जाहि—पाप कमाकर अन्त में चले जाते हैं।

अर्थ : अनेक ही ख़ूनी मनुष्य दूसरों के गले काट रहे हैं तथा अनेक ही पापी मनुष्य पाप कमाकर (अन्त में) इस दुनिया से चले जाते हैं।

असंख कूड़िआर, कूड़े फिराहि ॥
असंख मलेछ, मलु भखि खाहि ॥

पद अर्थ : कूड़िआर—वे मनुष्य जिनके हृदय असत्य के टिकाने बने हुये हैं, झूठ के स्वभाव वाले। कूड़े—झूठ में ही। फिराहि—फिरते हैं, प्रवृत हैं, व्यस्त हैं। मलेछ—मलिन बुद्धि वाले, खोटी बुद्धि वाले मनुष्य। खाहि—खाते हैं। भखि खाहि—भूखों की तरह खाये जाते हैं। 'भख' तथा 'खाहि' दोनों संस्कृत की धातुओं से बने हैं। दोनों का अर्थ है 'खाना'। (तीसरी पउड़ी में भी एक ऐसी ही 'खाही खाहि' संयुक्त क्रिया आ चुकी है।)

अर्थ : अनेक ही झूठ बोलने के स्वभाव वाले मनुष्य झूठ में ही व्यस्त हैं तथा अनेक ही खोटी बुद्धि वाले मनुष्य मल (भाव, अखाद्य) ही खाये जा रहे हैं।

असंख निंदक, सिरि करहि भारु ॥
नानकु नीचु कहै वीचारु ॥

पद अर्थ : सिरि—अपने सिर पर। सिरि करहि भारु—अपने सिर पर भार उठाते हैं।

नानकु नीचु—इस पंक्ति में शब्द 'नानक' कर्त्ता कारक है तथा पुलिंग है। शब्द 'नीचु' विशेषण है तथा पुलिंग है। वैसे भी शब्द 'नानकु' के साथ आया है। इस लिये 'नीचु' शब्द 'नानकु' का विशेषण है। सतिगुरु जी अपने आप को 'नीच' कहते हैं, यह 'गरीबी भाव' और भी कई स्थानों पर आता है, जैसे :

(१) **मै कीता न जाता हरामखोरु ॥ हउ किआ मुहु देसा दुसटु चोरु ॥**
नानकु नीचु कहै बीचारु ॥ धाणक रूपि रहा करतार ॥४॥२९॥

(सिरीरागु म: १, पृष्ठ २४)

(२) **जुगु जुगु साचा है भी होसी ॥ कउणु न मूआ कउणु न मरसी ॥**
नानकु नीचु कहै बेनंती, दरि देखहु लिव लाई हे ॥१६॥२॥

(मारु म: १ सोलहे, पृष्ठ १०२२)

(३) **कथनी कथउ न आवै ओरु ॥ गुरु पुछि देखिआ नाही दरु होरु ॥**
दुखु सुखु भाणै तिसै रजाइ ॥ नानकु नीचु कहै लिव लाइ ॥८॥४॥

(गउड़ी म: १, पृष्ठ २२२)

नानकु नीचु—नीच नानक, नानक बिचारा, गरीब नानक।

अर्थ : अनेक ही निंदक (निंदा कर कर के) अपने सिर पर (निंदा

का) भार उठा रहे हैं। (हे निरंकार! अनेक अन्य जीव कुकर्मों में फंसे हुये होंगे, मेरी क्या ताकत है कि तेरी कुदरत का पूर्ण विचार कर सकूँ ?) नानक बिचारा (तो उपर्युक्त तुच्छ-सा) विचार पेश करता है।

वारिआ न जावा एक वार ॥
जो तुधु भावै साई भली कार ॥
तू सदा सलामति निरंकार ॥१८॥

अर्थ : (हे परमात्मा!) मैं तो तुम पर एक बार भी कुर्बान होने योग्य नहीं हूँ (भाव, मैं तेरी अनन्त कुदरत का पूर्ण विचार करने योग्य नहीं हूँ)। हे निरंकार! तू सदा स्थिर रहने वाला है। जो तुझे अच्छा लगता है वही कार्य भला है, (भाव, तेरी रज़ा में रहना ठीक है, तेरी प्रशंसा करते हुये तेरी रज़ा में रहें, हम जीवों के लिये यही ठीक है।)।१८।

भाव : परमात्मा की सारी कुदरत का अन्त ढूँढना तो एक तरफ, यदि आप संसार के केवल चोर, जुआरी, ठग, निंदक आदि लोगों का ही हिसाब लगाने बैठें तो इनका भी कोई अन्त नहीं है। जब से जगत बना है, अनन्त जीव विकारग्रस्त ही दिखायी देते हैं।

असंख नाव, असंख थाव ॥
अगंम अगंम असंख लोअ ॥
असंख कहहि, सिरि भारु होइ ॥

पद अर्थ : नाव—कुदरत के अनेक जीवों तथा अनन्त पदार्थों के नाम। अगंम—जिस तक किसी की पहुँच न हो सके। लोअ—लोक, भवन। असंख लोअ—अनेकों ही भवन। कहहि—कहते हैं, (जो मनुष्य)। सिरि—उनके सिर पर। होइ—होता है।

अर्थ : (कुदरत के अनेक जीवों तथा अनन्त पदार्थों के) असंख्य ही नाम हैं तथा असंख्य ही (उनके) स्थान तथा ठिकाने हैं। (कुदरत में) असंख्य ही भवन हैं, जहाँ तक मनुष्य की पहुँच ही नहीं हो सकती (परन्तु जो मनुष्य कुदरत का लेखा जोखा करने के लिये शब्द) 'असंख्य' (भी) कहते हैं, (उनके) सिर पर भी भार होता है (भाव, वे भी भूल करते हैं, 'असंख्य' शब्द भी पर्याप्त नहीं है)।

अखरी नामु अखरी सालाह ।।
अखरी, गिआनु गीत गुण गाह ।।
अखरी, लिखणु बोलणु बाणि ।।
अखरा सिरि, संजोगु वखाणि ।।
जिनि एहि लिखे, तिसु सिरि नाहि ।।
जिव फुरमाए, तिव तिव पाहि ।।

पद अर्थ : अखरी—अक्षरों द्वारा ही। सालाह—सिफति, प्रशंसा। गुण गाह—गुणों का ज्ञान। बाणि लिखणु—बाणी का लिखना। बाणि—बोली, बाणी। बाणि बोलणु—बाणी (बोली) का बोलना। अखरा सिरि—अक्षरों द्वारा ही। संजोगु—भाग्य के लेख। वखाणि—बताया जा सकता है। जिनि—जिस परमात्मा ने। एहि—संयोग के ये अक्षर। तिसु सिरि—उस अकाल पुरख (परमात्मा) के माथे पर। नाहि—(कोई लेख) नहीं है। जिव—जिस तरह। फुरमाए—परमात्मा हुक्म करता है। तिव तिव—उसी तरह। पाहि—(जीव) प्राप्त कर लेते हैं, भोगते हैं।

अर्थ : (चाहे परमात्मा की कुदरत का लेखा करने के लिये शब्द 'असंख्य' तो क्या, कोई भी शब्द पर्याप्त नहीं है परन्तु) परमात्मा का नाम

भी अक्षरों द्वारा ही (लिया जा सकता है), उस का गुण-कीर्तन भी अक्षरों द्वारा ही किया जा सकता है। परमात्मा का ज्ञान भी अक्षरों द्वारा ही (विचारा जा सकता है)। अक्षरों द्वारा ही उसके गीत तथा गुणों से परिचित हो सकते हैं। बाणी का लिखना और बोलना भी अक्षरों द्वारा ही बतलाया जा सकता है। (इसीलिये शब्द 'असंख्य' का प्रयोग किया गया है, वैसे) जिस परमात्मा ने (जीवों के संयोग के) ये अक्षर लिखे हैं, उस के सिर पर कोई लेख नहीं है (भाव, कोई मनुष्य उस परमात्मा का लेखा नहीं कर सकता)। जैसे जैसे वह परमात्मा हुक्म करता है, वैसे वैसे ही (जीव अपने संयोग) भोगते हैं।

जेता कीता, तेता नाउ ॥
विणु नावै, नाही को थाउ ॥

पद अर्थ : जेता—जितना। कीता—पैदा किया हुआ संसार। जेता कीता—यह सारा संसार जो परमात्मा ने पैदा किया है। तेता—वह सारा, उतना ही। नाउ—नाम, रूप, स्वरूप।

नोट : अंग्रेजी में दो शब्द हैं—Substance तथा Property, वैसे ही संस्कृत में हैं—'नाम' तथा 'गुण' या 'स्वरूप' तथा 'गुण'। अत: 'नाम' (स्वरूप) Substance है तथा 'गुण' Property है। जब किसी जीव या किसी पदार्थ का 'नाम' रखते हैं, इसका भाव यह होता है कि उसका स्वरूप निश्चित करते हैं। जब वह नाम लिया जाता है, वह हस्ती आँखों के सामने आ जाती है।

विणु नावै—'नाम' के बिना, 'नाम' से रहित ।

अर्थ : यह सारा संसार जो परमात्मा ने बनाया है यह उसका स्वरूप है। ("एहु विसु संसारु तुम देखदे, एहु हरि का रूपु है, हरि रूपु नदरी

आइआ") कोई स्थान परमात्मा के स्वरूप से खाली नहीं है, (भाव, जो स्थान या पदार्थ देखें, वही परमात्मा का स्वरूप दिखायी देता है, सृष्टि का कण कण परमात्मा का स्वरूप है।)

नोट : इस पउड़ी के प्रारम्भ में वर्णन है कि कादर की इस कुदरत में अनेक ही जीव-जन्तु, अनेक ही जातियों के, रंगों के तथा विभिन्न नामों वाले हैं। इतने हैं कि इनकी गणना के लिये शब्द 'असंख्य' का प्रयोग करना भी भूल है। परन्तु जितनी भी यह रचना है, यह सारी परमात्मा का स्वरूप है, कोई भी स्थान ऐसा नहीं है जो परमात्मा का स्वरूप नहीं। जिस वस्तु की तरफ़ देखें, परमात्मा का अस्तित्व ही आँखों के सामने आता है।

कुदरति कवण, कहा वीचारु॥
वारिआ न जावा एक वार॥
जो तुधु भावै साई भली कार॥
तू सदा सलामति निरंकार॥१९॥

पद अर्थ : कुदरति कवण—शब्द 'वीचारु' पुलिंग है, यदि शब्द 'कवण' इस का विशेषण होता, तो यह भी पुलिंग होता तथा इस का रूप 'कवणु' हो जाता। 'कुदरति' स्त्रीलिंग है। अत: शब्द 'कवण' 'कुदरति' का विशेषण है। इस शब्द 'कवण' के पुलिंग तथा स्त्रीलिंग को समझने के लिये देखें पउड़ी न. २१।

कवणु सु वेला, वखतु कवणु, कवण थिति, कवणु वारु॥
कवणि सि रुती, माहु कवणु, जितु होआ आकारु॥२१॥

पउड़ी न. १६, १७ तथा १९ में "कुदरति कवण कहा वीचारु" पंक्ति आयी है, पर पउड़ी न. १८ में इस पंक्ति के स्थान पर पंक्ति "नानकु नीचु कहै वीचारु" का प्रयोग हुआ है। इन दोनों पंक्तियों को आमने सामने रख

कर विचार करें तो भी यही अर्थ निकलता है कि 'मेरी क्या ताकत है ? मैं बेचारा नानक क्या विचार कर सकता हूँ ?'

शब्द 'कुदरति' सामर्थ्य के अर्थ में 'श्री गुरु ग्रन्थ साहिब' में अन्य स्थानों पर भी आया है, जैसे :

(१) **जे तू मीर महीपति साहिबु, कुदरति कउण हमारी ॥**
चारे कुंट सलामु करहिगे, घरि घरि सिफति तुम्हारी ॥७॥१॥८॥

(बसंत हिंडोल म: १, पृष्ठ ११९१)

(२) **जिउ बोलावहि तिउ बोलह सुआमी, कुदरति कवन हमारी ॥**
साध संगि नानक जसु गाइओ, जो प्रभ की अति पिआरी ॥८॥१॥८॥

(गूजरी म: ५, पृष्ठ ५०८)

अर्थ : मेरी क्या ताकत है कि परमात्मा की कुदरत का विचार क़र सकूँ ? (हे परमात्मा!) मैं तो तुम पर एक बार भी कुर्बान होने योग्य नहीं हूँ (भाव, मेरी हस्ती बहुत ही तुच्छ है)। हे निरंकार! तू सदा स्थिर रहने वाला है, जो तुझे अच्छा लगता है वही कार्य भला है, (भाव, तेरी रज़ा में रहना ही हम जीवों के लिये भली बात है) ।१९।

भाव : कितनी धरतिओं तथा कितने जीवों की प्रभु ने रचना की है ? मनुष्यों की किसी भी बोली में कोई ऐसा शब्द ही नहीं है जो यह लेखा बता सके।

बोली भी परमात्मा की एक देन है, परन्तु यह मिली है गुण-कीर्तन करने के लिये। यह नहीं हो सकता कि इस के द्वारा मनुष्य प्रभु का अन्त पा सके। देखो! अनन्त है उसकी कुदरत, तथा इस में जिधर देखो वह आप ही आप मौजूद है। कौन अंदाजा लगा सकता है कि वह कितना बड़ा है तथा उसकी रचना कितनी है ?

भरीऐ हथु पैरु तनु देह ॥
पाणी धोतै, उतरसु खेह ॥

पद अर्थ : भरीऐ—जो भर जाये, जो गंदा हो जाये, जो मैला हो जाये। तनु—शरीर। देह—शरीर। पाणी धोतै—पानी से धोने पर। उतरसु—उतर जाती है। खेह—मिट्टी, धूल, मैल।

अर्थ : यदि हाथ पैर या शरीर मैला हो जाये, तो पानी से धोने पर वह मैल उतर जाती है।

मूत पलीती कपड़ु होइ ॥
दे साबूणु, लईऐ ओहु धोइ ॥

पद अर्थ : पलीती—गंदा। मूत पलीती—मूत्र से गंदा। कपड़ु—कपड़ा। दे साबूणु—साबुन लगा कर। लईऐ—लेते हैं। ओहु—वह गंदा हुआ कपड़ा। लईऐ धोइ—धो लिया जाता है।

अर्थ : यदि (कोई) कपड़ा मूत्र से गंदा हो जाये, तो साबुन लगा कर उसको धो लिया जाता है।

भरीऐ मति, पापा कै संगि ॥
ओहु धोपै, नावै कै रंगि ॥

पद अर्थ : भरीऐ—यदि भर जाये, यदि मलिन हो जाये। मति—बुद्धि। पापा कै संगि—पापों के साथ। ओहु—वह पाप। धोपै—धुलता है, धुल सकता है, धोया जा सकता है। रंगि—प्यार से। नावै कै रंगि—परमात्मा के नाम के प्रेम के साथ।

अर्थ : (परन्तु) यदि (मनुष्य की) बुद्धि पापों से मलिन हो जाये, तो वह पाप, परमात्मा के नाम से प्रेम करने पर ही धोया जा सकता है।

पुंनी पापी, आखणु नाहि ॥
करि करि करणा, लिखि लै जाहु ॥
आपे बीजि, आपे ही खाहु ॥
नानक, हुक्मी आवहु जाहु ॥२०॥

नोट : शब्द 'आखणु' की ध्यान से विचार करनी ज़रूरी है। जपु जी साहिब में यह शब्द निम्नलिखित पंक्तियों में आया है :

(१) **पुंनी पापी आखणु नाहि ॥** *(पउड़ी २०)*

(२) **नानक आखणि सभु को आखै, इक दू इकु सिआणा ॥** *(पउड़ी २१)*

(३) **जे को खाइकु आखणि पाइ ॥** *(पउड़ी २५)*

(४) **केते आखहि आखणि पाहि ॥** *(पउड़ी २६)*

(५) **आखणि जोरु चुपै नह जोरु ॥** *(पउड़ी ३३)*

इस शब्द 'आखणु' के अर्थ को स्पष्ट करने के लिये कुछ और प्रमाण निम्नलिखित हैं :

(६) **आखणु आखि न रजिआ, सुनणि न रजे कंन ॥२॥१९॥**
(माझ की वार, पृष्ठ १४७)

(७) **आखणि आखहि केतड़े, गुर बिनु बूझ न होइ ॥३॥१३॥**
(सिरीरागु म: १, पृष्ठ ६१)

उपर्युक्त प्रमाणों से स्पष्ट है कि 'आखणु' संज्ञा है तथा 'आखणि' क्रिया है। संज्ञा 'आखणु' का अर्थ है 'नाम', 'कहना', 'मुँह', जैसे प्रमाण न. १ तथा ६ में है। प्रमाण न. २, ३, ४, ५ तथा ७ में 'आखणि' क्रिया है।

पद अर्थ : आखणु—नाम, वचन। नाहि—नहीं है। करि करि करणा—(अपने अपने) कर्म करके, जैसे कर्म करोगे। लिखि—लिखकर,

(वैसा ही लेखा) लिखकर, (वैसे संस्कारों का लेखा) लिखकर। लै जाहु—तू ले जायेगा, (अपने साथ) ले जायेगा। आपे—आप ही। बीजि—बीज कर। हुकमी—परमात्मा के हुक्म में। आवहु जाहु—आयेगा तथा जायेगा, जन्म लेगा तथा मरेगा, जन्म मरन में पड़ा रहेगा।

अर्थ : हे नानक! 'पुण्यवान' तथा 'पापी' केवल नाम ही नहीं है (भाव, केवल कहने मात्र को नहीं है, सचमुच ही) तू जैसे कर्म करेगा वैसे ही संस्कार अपने अन्दर बना कर साथ ले जायेगा। जो कुछ तू आप बोयेगा, उसका फल आप ही खायेगा। (अपने बोये अनुसार) परमात्मा के हुक्म में जन्म मरन के चक्र में पड़ा रहेगा।२०।

नोट : पहली पउड़ी में पंक्ति आई है, "हुकमि रजाई चलणा नानक लिखिआ नालि"। दूसरी पंक्ति में जिक्र है, "हुकमी उतमु नीचु, हुकमि लिखि दुख सुख पाईअहि"। अब इस पउड़ी में उपर्युक्त पंक्तियों वाला ख्याल बिल्कुल साफ किया गया है। सारी सृष्टि परमात्मा के विशेष नियमों में चल रही है। इन नियमों का नाम सतिगुरु जी ने 'हुक्म' रखा है। वे नियम ये हैं कि मनुष्य जैसा कर्म करता है, वैसा फल पाता है। उसके अपने अन्दर वैसे ही अच्छे बुरे संस्कार बन जाते हैं तथा उनके अनुसार ही जन्म मरन के चक्र में पड़ा रहता है या परमात्मा की रज़ा में चलकर अपना जीवन सफल कर लेता है।

भाव : माया के प्रभाव के कारण मनुष्य विकारों में पड़ जाता है तथा इसकी बुद्धि मलिन हो जाती है। यह मैल इसको शुद्ध-स्वरूप परमात्मा से पृथक (अलग) रखती है तथा जीव दु:खी रहता है। नाम-सिमरन ही एक साधन है जिस से मन की यह मैल धुल सकती है। (सिमरन तो विकारों की मैल धोकर मन को प्रभु से जोड़ने के लिये है, प्रभु तथा उसकी रचना का अंत पाने के लिये जीव को समर्थ नहीं बना सकता)।

तीरथु तपु दइआ दतु दानु ।।
जे को पावै, तिल का मानु ।।

पद अर्थ : जे को पावै—यदि कोई मनुष्य प्राप्त करे, यदि किसी मनुष्य को मिल भी जाये, तो। तिल का—रञ्चक-मात्र, थोड़ा-सा। मानु—आदर, मान, बड़ाई। दतु—दिया हुआ।

अर्थ : तीर्थ यात्रा, तप-साधना, (जीवों पर) दया करनी, दिये हुये दान—(इन कर्मों के बदले) यदि किसी मनुष्य को कोई बड़ाई मिल भी जाये, तो रञ्चक-मात्र ही मिलती है।

सुणिआ, मंनिआ, मनि कीता भाउ ।।
अंतरगति तीरथि, मलि नाउ ।।

पद अर्थ : सुणिआ—(जिस मनुष्य ने) परमात्मा का नाम सुन लिया है। मंनिआ—(जिस का मन उस नाम को सुनकर) मान गया है, द्रवित हो गया है। मनि—मन में। कीता भाउ—(जिसने) प्रेम किया है। अंतरगति—अंदर का। तीरथि—तीर्थ पर। अंतरगति तीरथि—आन्तरिक तीर्थ पर। मलि—मल मल कर, अच्छी तरह। नाउ—स्नान (किया है)।

अर्थ : (परन्तु जिस मनुष्य ने परमात्मा के नाम में) वृत्ति (ध्यान) जोड़ी है, (जिसका मन नाम में) खचित हो गया है, (तथा जिस ने अपने) मन में (परमात्मा) का प्रेम उत्पन्न किया है, उस मनुष्य ने (मानों) अपने आन्तरिक तीर्थ में मल मल कर स्नान कर लिया है। (भाव, उस मनुष्य ने अपने अन्दर बस रहे अकाल पुरख में जुड़ कर अच्छी तरह अपने मन की मैल उतार ली है।)

सभि गुण तेरे, मै नाही कोइ ॥
विणु गुण कीते, भगति न होइ ॥
सुअसति आथि बाणी बरमाउ ॥
सति सुहाणु सदा मनि चाउ ॥

पद अर्थ : सभि—सारे। मै नाही कोइ—मैं कोई नहीं हूँ, मेरी कोई सामर्थ्य नहीं है। विणु गुण कीते—गुण पैदा किये बिना, यदि तू गुण पैदा न करे, यदि तू अपने गुण मेरे में उत्पन्न न करे। न होइ—नहीं हो सकती। सुअसति—तेरी जय हो, तू सदा अटल रहे, (भाव, मैं तेरा ही आसरा लेता हूँ। बरमाउ—ब्रह्मा। सति—सदा स्थिर। सुहाणु—सुन्दर। मनि चाउ—मन में प्रफुल्लता।

अर्थ : (हे परमात्मा!) यदि तू (आप अपने) गुण (मुझ में) पैदा न करे, तो मुझ से तेरी भक्ति नहीं हो सकती। मेरी कोई सामर्थ्य नहीं (कि मैं तेरे गुण गा सकूँ), यह सब तेरा ही बड़प्पन है। (हे निरंकार!) तेरी सदा जय हो। तू आप ही माया है, तू आप ही बाणी है, तू आप ही ब्रह्मा है (भाव, इस सृष्टि को बनाने वाले माया, बाणी या ब्रह्मा तुझ से भिन्न अस्तित्व वाले नहीं हैं जो लोगों ने मान रखे हैं)। तू सदा स्थिर है, सुन्दर है, तेरे मन में सदा प्रफुल्लता है (तू ही जगत की रचना करने वाला है, तुझे ही पता है तूने कब जगत बनाया।)

कवणु सु वेला, वखतु कवणु, कवण थिति, कवणु वारु ॥
कवणि सि रुती, माहु कवणु, जितु होआ आकारु ॥

पद अर्थ : वेला—समय। वखतु—समय, वक्त।

वारु—शब्द 'वार' दो रूपों में प्रयुक्त हुआ है, 'वार' तथा 'वारु'।

'वार' स्त्रीलिंग है, जिस का अर्थ है 'बारी'। 'वारु' पुलिंग है, इस का अर्थ है 'दिन'।

जपु जी में यह शब्द निम्नलिखित पंक्तियों में आया है :

(१) **सोचै सोचि न होवई, जे सोची लख वार ॥** *(पउड़ी १)*

(२) **वारिआ न जावा एक वार ॥** *(पउड़ी १६)*

(३) **जो किछु पाइआ सु एका वार ॥** *(पउड़ी ३१)*

(४) **कवणु सु वेला, वखतु कवणु कवण थिति, कवणु वारु ॥** *(पउड़ी २१)*

(५) **राती रुती थिती वार ॥** *(पउड़ी ३४)*

प्रमाण न. १, २ तथा ३ में 'वार' स्त्रीलिंग है। न. ४ में 'वारु' पुलिंग एक-वचन है तथा नं ५ में 'वार' पुलिंग बहु-वचन है।

जब यह शब्द (ि) के साथ आता है तब क्रिया होता है, जैसे :

वारि वारउ अनिक डारउ ॥
सुखु प्रिअ सुहाग पलक रात ॥१॥रहाउ॥३॥४२॥

(कानड़ा म: ५, पृष्ठ १३०६)

यहाँ 'वारि' का अर्थ है 'कुर्बान करना'।

थिति वारु—चन्द्रमा की चाल से तारीखें गिनी जाती हैं, जैसे—एकम, दूज, तीज आदि तथा सूर्य से दिन रात और वार—सोम, मंगल आदि। कवणि सि रुती—कौन-सी वह ऋतु थी ? माहु—महीना। कवणु—कौन-सा ? जितु—जिस में, जिस समय। होआ—अस्तित्व में आया, पैदा हुआ, बना। आकारु—यह दिखाई देने वाला संसार।

अर्थ : कौन-सा वह समय तथा वक्त था, कौन-सी तिथि थी, कौन-सा दिन था, कौन-सी वह ऋतु थी तथा कौन-सा वह महीना था जब यह संसार बना था ?

वेल न पाईआ पंडती, जि होवै लेखु पुराणु ॥
वखतु न पाइओ कादीआ, जि लिखनि लेखु कुराणु ॥

पद अर्थ : वेल—समय, बेला। पाईआ—पाई, प्राप्त की। वेल न पाईआ—समय न मिला। (नोट—'वेला' पुलिंग है तथा 'वेल' स्त्रीलिंग है)। पंडती—पण्डितों ने। जि—नहीं तो। हौवे—होता, बना होता। लेखु—लेख। लेखु पुराणु—पुराण रूप लेख, इस लेख वाला पुराण (भाव, जैसे अन्य कई पुराण बने पड़े हैं, इस विषय का भी एक पुराण बना होता)। वखतु—समय, जब जगत बना। न पाइओ—न मिला। कादीआ—काज़ियों ने। अरबी के अक्षर ज़ुआद, ज़ुइ तथा ज़े का उच्चारण अक्षर 'द' से होता है। शब्द 'कागज़' का 'कागद', 'नज़र' का 'नदरि', 'हज़ूर' का 'हदूरि' उच्चारण है। इसी तरह काज़ी का कादी उच्चारण भी है। जि—नहीं तो। लिखनि—(काज़ी) लिख देते। लेखु कुराणु—कुरान जैसा लेख (भाव, जैसे काज़ियों ने मुहम्मद साहिब की उच्चारण की गयी आयतें एकत्र करके कुरान लिख दिया था, वैसे वह जगत के बनने के समय का विषय भी लिख देते)।

नोट : इस पउड़ी में आये शब्द 'वखतु', 'पाइओ' तथा 'कादीआ' के अर्थों को मोड़-तोड़ कर कादियानी मुस्लमानों की तरफ़ से अन्जान सिक्खों को भ्रम में डाला जा रहा है कि यहाँ गुरु नानक देव जी ने भविष्यवाणी करते हुये सिक्खों को हिदायत दी हुयी है कि नगर कादियाँ में प्रगट होने वाले पैग़म्बर को वख़त (मुसीबत) में न डालना।

हमने यहाँ किसी बहस में नहीं पड़ना तथा किसी को भ्रम में भी नहीं डालना। शब्दों की बनावट तथा अर्थों की ओर ही ध्यान दिलाना है। शब्द 'कादीया' पद अर्थों में समझाया जा चुका है। शब्द 'वखतु' अरबी का शब्द 'वक्त' है। हिन्दुओं का ज़िक्र करते हुये हिन्दुस्तानी शब्द वेला

प्रयोग में आया है। मुस्लमानों के ज़िक्र में मुस्लमानी शब्द 'वक्त' का पंजाबी 'वखतु' प्रयोग किया गया है। गुरु ग्रन्थ साहिब में जहाँ कहीं भी यह शब्द आया है, इस का अर्थ सदा 'समझ' ही है। जैसे :

जे वेला वखतु वीचारीऐ, ता कितु वेला भगति होइ ॥

(सिरीरागु म: ३, पृष्ठ ३५)

इकना वखत खुआईअहि, इकन्‍ा पूजा जाइ ॥ *(आसा म: १, पृष्ठ ४१७)*

शब्द 'पाइओ' 'आज्ञा भविष्यत्' काल नहीं है जैसा कि कादियानी कहते हैं। यह शब्द भूतकाल में है। इस तरह का भूतकाल गुरबाणी में अनेक बार आया है, जैसे :

आपीन्है आपु 'साजिओ', आपीन्है 'रचिओ' 'नाउ' ॥ *(आसा की वार, पृष्ठ ४६३)*

बिनु सतिगुर किनै न 'पाइओ', बिनु सतिगुर किनै न पाइआ ॥

(आसा की वार, पृष्ठ ४६६)

'हुकमी भविष्यत्' का रूप है 'सदिअहु', 'करिअहु' (रामकली 'सदु')। पाठक शब्दों के जोड़ों का खास ख्याल रखें। 'पाइओ' भूतकाल है, इससे 'हुकमी भविष्यत्' 'पाइअहु' हो सकता है।

अर्थ : (कब यह संसार बना?) उस समय का पण्डितों को भी पता नहीं लगा, नहीं तो (इस विष्य पर भी) एक पुराण लिखा होता। उस समय के काज़ियों को ख़बर न लग सकी, नहीं तो वे लेख लिख देते, जैसे उन्होंने (आयतें एकत्र करके) कुरान (लिखा था)।

थिति वारु न जोगी जाणै, रुति माहु न कोई ॥
जा करता सिरठी कउ साजे, आपे जाणै सोई ॥

पद अर्थ : जा करता—जौन-सा कर्त्ता। सिरठी कउ—जगत को। साजे—पैदा करता है, बनाता हैं। आपे सोई—वह आप ही।

अर्थ : (जब संसार बना था तब कौन-सी) तिथि थी (कौन-सा) दिन था, यह बात कोई योगी भी नहीं जानता। कोई मनुष्य नहीं (बता सकता) कि तब कौन-सी ऋतु थी तथा कौन-सा महीना था। जो सृजन कर्त्ता इस जगत को पैदा करता है, वह आप ही जानता है (कि जगत रचना कब हुई)।

किव करि आखा किव सालाही, किउ वरनी किव जाणा ॥
नानक, आखणि सभु को आखै, इक दू इकु सिआणा ॥

पद अर्थ : किव करि—क्यों, किस तरह ? आखा—मैं कहूँ, मैं ब्यान करुँ ? मैं कह सकूँ। सालाही—मैं सराहूँ, मैं परमात्मा की प्रशंसा करुँ। किउ—क्यों, किस तरह ? वरनी—मैं वर्णन करुँ। सभु को—प्रत्येक जीव। आखणि आखै—कहने को तो कहता है, कहने का यत्न करता है। इक दू इकु सिआणा—एक दूसरे से सयाना बन बन कर, एक अपने आप को दूसरे से सयाना समझ कर। दू—से।

अर्थ : मैं किस तरह (परमात्मा का बड़प्पन) बताऊँ, कैसे परमात्मा की सिफति-सालाह (गुण-कीर्तन) करुँ, किस तरह (परमात्मा के बड़प्पन का) वर्णन करुँ तथा कैसे समझ सकूँ ? हे नानक! प्रत्येक जीव अपने आप को दूसरे से सयाना (अक्लमन्द) समझ कर (परमात्मा का बड़प्पन) बताने का यत्न करता है (परन्तु बता नहीं सकता)।

वडा साहिबु वडी नाई, कीता जा का होवै ॥
नानक, जे को आपौ जाणै, अगै गइआ न सोहै ॥२१॥

पद अर्थ : साहिबु—स्वामी, परमात्मा। नाई—बड़प्पन। जा का—जिस (परमात्मा) का। कीता जा का होवै—जिस हरि का सब कुछ किया होता है। जे को—यदि कोई मनुष्य। आपौ—आप, अपने आप ही, अपनी बुद्धि

के बल से। न सोहै—आदर नहीं पाता, सुशोभित नहीं होता। अगै गइआ—परमात्मा के दर पर जाकर।

अर्थ : परमात्मा (सबसे) बड़ा है, उस का बड़प्पन ऊँचा है। जो कुछ जगत में हो रहा है उसी का किया ही हो रहा है। हे नानक! यदि कोई मनुष्य अपनी बुद्धि के बल पर (प्रभु के बड़प्पन का) अन्त पाने का यत्न करे, वह परमात्मा के दर पर जाकर आदर प्राप्त नहीं करता।२१।

भाव : जिस मनुष्य ने नाम में चित्त जोड़ा है, जिसको सिमरन की लग्न लग गयी है, जिस के मन में प्रभु का प्यार पैदा हुआ है, उस की आत्मा शुद्ध पवित्र हो जाती है। पर यह भक्ति उस की कृपा से ही मिलती है।

बंदगी का यह परिणाम नहीं हो सकता कि मनुष्य यह बता सके कि संसार कब बना। न पंडित, न काज़ी, न योगी कोई भी यह भेद नहीं पा सका। परमात्मा बेअन्त बड़ा है। उसका बड़प्पन भी अनन्त है, उसकी रचना भी अनन्त है।

पाताला पाताल लख, आगासा आगास॥
ओड़क ओड़क भालि थके, वेद कहनि इक वात॥

पद अर्थ : पाताला पाताल—पातालों के नीचे और पाताल हैं। आगासा आगास—आकाशों के ऊपर और आकाश हैं। ओड़क—अन्त, अन्तिम सीमा। भालि थके—ढूँढ ढूँढ कर थक गये हैं। कहनि—कहते हैं। इक वात—एक बात, एक-ज़ुबान होकर।

अर्थ : (सारे) वेद एक-ज़ुबान होकर कहते हैं—"पातालों के नीचे और लाखों पाताल हैं तथा आकाशों के ऊपर और लाखों आकाश हैं, (अनन्त ऋषि मुनि इन की) अन्तिम सीमाओं को ढूँढ ढूँढ कर थक गये हैं, (पर ढूँढ नहीं सके)"।

सहस अठारह कहनि कतेबा, असुलू इकु धातु ।।
लेखा होइ त लिखीऐ, लेखै होइ विणासु ।।

पद अर्थ : सहस अठारह—अठारह हज़ार (आलम)। कहनि कतेबा—कतेब कहते हैं। कतेबा—ईसाई मत तथा इस्लाम आदि की चार पुस्तकें—कुरान, अंजील, तौरेत तथा जंबूर। असुलू—प्रारम्भ, मूल। (*नोट :* यह अरबी बोली का शब्द है। अक्षर—'स' का निचला (ु) अरबी का अक्षर 'सुआद' बताने के लिये है)। इकु धातु—एक परमात्मा, एक पैदा करने वाला। लेखा होइ—यदि लेखा हो सके। लिखीऐ—लिख सकते हैं। लेखै विणासु—लेखे का अन्त।

अर्थ : (मुस्लमान तथा ईसाई आदि की चार धर्म पुस्तकें) कतेब कहती हैं, "कुल अठारह हज़ार आलम हैं जिन का मूल एक परमात्मा है"। (पर सत्य तो यह है कि शब्द 'हज़ारों' तथा 'लाखों' भी कुदरत की गिनती में प्रयुक्त नहीं किये जा सकते, अकाल पुरख की कुदरत का) लेखा तभी लिखा जा सकता है जब लेखा हो ही सके। (यह लेखा तो हो ही नहीं सकता, लेखा करते करते) तो लेखे का ही अन्त हो जाता है। (गिनती तथा अक्षर ही समाप्त हो जाते हैं)।

नानक, वडा आखीऐ, आपे जाणै आपु ।।२२।।

पद अर्थ : आखीऐ—कहा जाता है (जिस परमात्मा को)। आपे—वह परमात्मा आप ही। जाणै—जानता है। आपु—अपने आप को।

अर्थ : हे नानक! जिस परमात्मा को (सारे जगत में) बड़ा कहा जा रहा है, वह आप ही अपने आप को जानता है। (वह अपना बड़प्पन आप ही जानता है)।२२।

भाव : प्रभु की कुदरत का ब्यान करते हुये 'हज़ारों' या 'लाखों' की संख्या का प्रयोग नहीं किया जा सकता। इतनी अनन्त कुदरत है कि इस का लेखा करते समय गिनती की संख्या भी समाप्त हो जाती है।

सालाही सालाहि, एती सुरति न पाईआ ।।
नदीआ अतै वाह, पवहि समुंदि, न जाणीअहि ।।

पद अर्थ : सालाही—सराहने-योग्य परमात्मा। सालाहि—सिफति-सालाह करके। एती सुरति—इतनी समझ (कि परमात्मा कितना बड़ा है)। न पाईआ—किसी ने नहीं पायी। अतै—तथा। वाह—नाले। पवहि—पड़ते हैं। समुंदि—समुद्र में। न जाणीअहि—नहीं जाने जाते, वे नदियाँ तथा नाले (फिर अलग) पहचाने नहीं जा सकते, (बीच में ही लीन हो जाते हैं तथा समुद्र की थाह नहीं प्राप्त कर सकते)।

अर्थ : सराहने-योग्य परमात्मा के बड़प्पन के बारे में कह कह कर किसी मनुष्य ने इतनी समझ प्राप्त नहीं की कि परमात्मा कितना बड़ा है, (गुण-कीर्तन करने वाले मनुष्य उस परमात्मा में ही लीन हो जाते हैं)। नदियाँ तथा नाले समुद्र में गिरते हैं, (पर फिर अलग) वह पहचाने नहीं जा सकते (बीच में ही लीन हो जाते हैं तथा समुद्र की थाह नहीं प्राप्त कर सकते)।

समुंद साह सुलतान, गिरहा सेती मालु धनु ।।
कीड़ी तुलि न होवनी, जे तिसु मनहु न वीसरहि ।।२३।।

पद अर्थ : समुंद साह सुलतान—समुद्रों के बादशाह तथा सुलतान। गिरहा सेती—पहाड़ों जितने। तुलि—बराबर। न होवनी—नहीं होते। तिसु मनहु—उस चींटी के मन से। जे न वीसरहि—यदि तू न बिसर जाये (हे हरि!)।

अर्थ : समुद्रों के बादशाह तथा सुलतान, जिन के (ख़ज़ानों में) पहाड़ों जितने धन पदार्थों (के ढेर हों), (प्रभु का गुण-कीर्तन करने वालों की नज़रों में) एक चींटी के बराबर भी नहीं होते, यदि (हे परमात्मा!) उस चींटी के मन में से तू न निकल जाये।२३।

भाव : बंदगी करने से प्रभु का अन्त नहीं पाया जा सकता, परन्तु इस का यह भाव नहीं कि परमात्मा की सिफति-सालाह करने का कोई लाभ नहीं है। प्रभु की भक्ति की बरकत से मनुष्य शाहों, बादशाहों की भी परवाह नहीं करता। प्रभु के नाम के सामने अनन्त धन भी उसको तुच्छ लगता है।

अंतु न सिफती, कहणि न अंतु ॥
अंतु न करणै, देणि न अंतु ॥
अंतु न वेखणि, सुणणि न अंतु ॥
अंतु न जापै, किआ मनि मंतु ॥

पद अर्थ : सिफती—सिफ़त का, गुणों का। कहणि—कहने से, बताने से। करणै—बनायी हुयी कुदरत का। देणि—देने में, देय पदार्थ देने से। वेखणि सुणणि—देखने तथा सुनने से। न जापै—नहीं प्रतीत होता, नहीं दिखता। मनि—(परमात्मा के) मन में। मंतु—विचार।

अर्थ : (परमात्मा के) गुणों की कोई सीमा नहीं है, गिनने से भी (गुणों का) अंत नहीं पाया जा सकता (गिने नहीं जा सकते)। परमात्मा की रचना तथा देन का अंत नहीं पाया जा सकता। देखने तथा सुनने से भी उसके गुणों का पार नहीं पाया जा सकता। उस परमात्मा के मन में कौन-सा विचार है—इस बात का भी अन्त नहीं पाया जा सकता।

अंतु न जापै कीता आकारु ॥
अंतु न जापै पारावारु ॥

पद अर्थ : कीता—बनाया हुआ। आकारु—यह संसार जो दिखायी दे रहा है। पारावारु—पारावार, पहली तथा अन्तिम हद।

अर्थ : परमात्मा ने यह जगत (जो दिखायी दे रहा है) बनाया है परन्तु इस का अन्त, इसका पारावार कोई दिखायी नहीं देता।

अंत कारणि केते बिललाहि ॥
ता के अंत न पाए जाहि ॥

पद अर्थ : अंत कारणि—सीमा ढूँढने के लिये। केते—कई मनुष्य। बिललाहि—व्याकुल होते हैं, मिन्नतें करते हैं। ता के अंत—उस परमात्मा का अन्त। न पाए जाहि—ढूँढे नहीं जा सकते।

अर्थ : कई मनुष्य परमात्मा का अन्त ढूँढने के लिये व्याकुल रहते हैं, पर उसका अन्त ढूँढा नहीं जा सकता।

एहु अंतु न जाणै कोइ ॥
बहुता कहीऐ बहुता होइ ॥

पद अर्थ : एहु अंतु—यह सीमा (अंत) (जिसकी खोज अनन्त जीव करते हैं)। बहुता कहीऐ—जैसे जैसे परमात्मा को बड़ा कहते जायें, जैसे जैसे उसके गुणों का कथन करते जायें। बहुता होइ—तैसे तैसे वह और बड़ा, और बड़ा प्रतीत होने लगता है।

अर्थ : (परमात्मा के गुणों का) यह अन्त (जिस को अनन्त जीव खोज रहे हैं) कोई मनुष्य नहीं पा सकता। जैसे जैसे यह बात कहते जायें कि वह बड़ा है, वैसे वैसे वह और बड़ा, और बड़ा प्रतीत होने लग जाता है।

वडा साहिबु, ऊचा थाउ ॥
ऊचे उपरि ऊचा नाउ ॥
एवडु ऊचा होवै कोइ ॥
तिसु ऊचे कउ, जाणै सोइ ॥

पद अर्थ : थाउ—परमात्मा के निवास का टिकाना। ऊचे उपरि ऊचा—ऊँचे से ऊँचा, बहुत ऊँचा। नाउ—बड़प्पन, नाम। एवडु—इतना बड़ा। होवै कोइ—यदि कोई मनुष्य हो। तिसु ऊचे कउ—उस ऊँचे अकाल पुरख को। सोइ—वह मनुष्य ही।

अर्थ : परमात्मा बड़ा है, उस का टिकाना ऊँचा है। उस का नाम भी ऊँचा है। यदि कोई और उस जितना बड़ा हो, वह ही उस ऊँचे परमात्मा को समझ सकता है (कि वह कितना बड़ा है)।

जेवडु आपि जाणै आपि आपि ॥
नानक, नदरी करमी दाति ॥२४॥

पद अर्थ : जेवडु—जितना बड़ा। जाणै—जानता है। आपि आपि—केवल आप ही (उस के बिना कोई अन्य नहीं जानता)। नदरी—कृपा-दृष्टि करने वाला हरि। करमी—कृपा से। दाति—देन, कृपा।

अर्थ : परमात्मा आप ही जानता है कि वह स्वयं कितना बड़ा है। हे नानक! (प्रत्येक) देन कृपा-दृष्टि रखने वाले परमात्मा की कृपा से मिलती है।२४।

भाव : प्रभु अनन्त गुणों का स्वामी है, उस की पैदा की हुयी रचना भी अनन्त है। ज्यों ज्यों उसके गुणों की ओर ध्यान दें, वह और बड़ा, और बड़ा प्रतीत होने लग जाता है। जगत में कोई उस प्रभु जितना बड़ा नहीं है, इसलिये कोई यह नहीं बता सकता कि प्रभु कितना बड़ा है।

बहुता करमु, लिखिआ न जाइ ।।
वडा दाता, तिलु न तमाइ ।।

पद अर्थ : करमु—कृपा। तिलु—तिल जितना भी। तमाइ—लालच, तृष्णा। दाता—देय-पदार्थ देने वाला।

अर्थ : परमात्मा बहुत देय-पदार्थ देने वाला है, उसको जरा भी लालच नहीं है। उसकी कृपा इतनी बड़ी है कि लिखी नहीं जा सकती।

केते मंगहि जोध अपार ।।
केतिआ गणत नही वीचारु ।।
केते, खपि तुटहि वेकार ।।

पद अर्थ : केते—कई। जोध अपार—अपार योद्धे, अनन्त शूरवीर। मंगहि—मांगते हैं। गणत—गिनती। केतिआ—कई लोगों की। वेकार—विकारों में। खपि तुटहि—खप खप के नष्ट होते हैं।

अर्थ : अनन्त शूरवीर तथा कई अन्य ऐसे, जिनकी गिनती तथा विचार नहीं हो सकता। (परमात्मा के दर पर) मांग रहे हैं। कई जीव (उस द्वारा दिये पदार्थों का उपभोग कर के) विकारों में ही खप खप कर नष्ट होते हैं।

केते लै लै मुकरु पाहि ।।
केते मूरख, खाही खाहि ।।

पद अर्थ : केते—अनन्त जीव। मुकरु पाहि—जुबान से फिर जाते हैं। खाही खाहि—खाते ही खाते हैं, खाये जाते हैं।

[*नोट :* **तू देखहि हउ 'मुकरि' पाउ ।।** *(सिरीरागु म: १, पृष्ठ २५)*

सभु किछु सुणदा वेखदा किउ 'मुकरि' पइआ जाइ ।।

(सिरीरागु म: ३, पृष्ठ ३५)

इन दोनों पंक्तियों में शब्द 'मुकरि' है, परन्तु उपर्युक्त पंक्ति में 'मुकरु' है। दोनों का अर्थ एक ही है। 'मुकरि' व्याकरण अनुसार ठीक लगता है। इस शब्द सम्बन्धी अभी और अधिक खोज की आवश्यकता है।]

अर्थ : अनन्त जीव (परमात्मा के दर से पदार्थ) प्राप्त करके ज़ुबान से फिर जाते हैं (भाव, कभी कृतज्ञता से यह नहीं कहते कि सब पदार्थ प्रभु आप ही दे रहा है)। अनेक मूर्ख (पदार्थ लेकर) खाये ही जाते हैं (परन्तु दातार प्रभु को याद नहीं रखते)।

केतिआ, दूख भूख सद मार ।।
एहि भि दाति तेरी, दातार ।।

पद अर्थ : केतिआ—कई जीवों को। दूख—कई दुःख कलेश। भूख—भूख (भाव, खाने को भी नहीं मिलता)। सद—सदा। दाति—कृपा। दातार—हे देने वाले परमात्मा।

अर्थ : अनेक जीवों के भाग्य में सदा मार, कलेश तथा भूख ही लिखी है। (पर) हे दातार प्रभु! यह भी तेरी कृपा ही है (क्योंकि इन दुःखों कष्टों के कारण ही मनुष्य को रज़ा में चलने की समझ आती है)।

बंदि खलासी, भाणै होइ ।।
होरु आखि न सकै कोइ ।।

पद अर्थ : बंदि—बन्धन से, माया के मोह से। खलासी—मुक्ति, छुटकारा। भाणै—अकाल पुरख की रज़ा में चलने से। होइ—होता है। होरु—रज़ा के विपरीत कोई अन्य तरीका। कोइ—कोई मनुष्य।

अर्थ : तथा (माया के मोह रूप) बन्धन से छुटकारा, परमात्मा की रज़ा में चलने से ही होता है। रज़ा के बिना कोई अन्य तरीका कोई मनुष्य

नहीं बता सकता। (भाव, कोई मनुष्य नहीं बता सकता कि रज़ा में चले बिना मोह से छुटकारे का कोई अन्य साधन भी हो सकता है)।

जे को खाइकु आखणि पाइ ॥

ओहु जाणै, जेतीआ मुहि खाइ ॥

पद अर्थ : खाइकु—कच्चा मनुष्य, मूर्ख। आखणि पाइ—कहने का यत्न करे, (भाव, मोह से छुटकारे का कोई अन्य साधन) बताने का यत्न करे। ओहु—वह मूर्ख ही। जेतीआ—जितनी (चोटें)। मुहि—मुँह पर। खाइ—खाता है।

अर्थ : (परन्तु) यदि कोई मूर्ख (माया के मोह से छुटकारे का अन्य कोई साधन) बताने का यत्न करे, तो वही जानता है जितनी चोटें वह (इस मूर्खता के कारण) अपने मुँह पर खाता है (भाव, 'कूड़' (असत्य) से बचने के लिये एक ही तरीका है कि मनुष्य रज़ा में चले। पर यदि कोई मूर्ख कोई अन्य तरीका ढूँढता है तो इस 'कूड़' से बचने की बजाये अधिक दुःखी होता है)।

आपे जाणै, आपे देइ ॥

आखहि सि भि केई केइ ॥

पद अर्थ : देइ—देता है। आखहि—कहते हैं। सि भि—यह बात भी। केई—कई मनुष्य।

अर्थ : (सारे कृतघ्न ही नहीं हैं) अनेकों मनुष्य यह बात भी कहते हैं कि परमात्मा स्वयं ही (जीवों की आवश्यकताओं को) जानता है तथा स्वयं ही (देय-पदार्थ, दातें) देता है।

जिस नो बखसे सिफति सालाह ।।
नानक, पातिसाही पातिसाहु ।।२५।।

पद अर्थ : जिस नो—जिस मनुष्य को। नानक—हे नानक! पातिसाही पातिसाहु—बादशाहों का बादशाह।

अर्थ : हे नानक! जिस मनुष्य को परमात्मा अपनी सिफति-सालाह प्रदान करता है (देता है), वह बादशाहों का बादशाह (बन जाता) है। यह गुण-कीर्तन ही सब से बड़ी देन है।२५।

भाव : प्रभु कितना बड़ा है—यह बात बतानी तो दूर रही, उसकी कृपा ही इतनी बड़ी है कि लिखी नहीं जा सकती। संसार में जो बड़े बड़े दिखते हैं, ये सब उस प्रभु के दर से ही मांगते हैं। वह तो इतना बड़ा है कि जीवों के मांगे बिना इनकी आवश्यकतायें जानकर अपने आप ही दातें दिये जाता है।

परन्तु जीव की मूर्खता देखो! देय-पदार्थों का उपभोग करता करता दातार प्रभु को भूल कर विकारों में पड़ जाता है तथा कई दुःख कलेश सहेज लेता है। ये दुःख कलेश भी प्रभु की देन हैं क्योंकि इन दुःखों कलेशों के कारन मनुष्य को रज़ा में चलने की समझ आती है तथा यह प्रभु का गुण-कीर्तन करने लग जाता है। यह सिफति-सालाह (गुण-कीर्तन) सब से ऊँची देन है।

अमुल गुण, अमुल वापार ।।
अमुल वापारीए, अमुल भंडार ।।
अमुल आवहि, अमुल लै जाहि ।।
अमुल भाइ, अमुला समाहि ।।

पद अर्थ : अमुल—अनमोल, जिस का मूल्य न आंका जा सके। गुण—परमात्मा के गुण। वापारीए—परमात्मा के गुणों का व्यापार करने वाले। भंडार—ख़ज़ाने। आवहि—जो मनुष्य (इस व्यापार के लिये) आते हैं। लै जाहि—(यह सौदा खरीद कर) ले जाते हैं। भाइ—भाउ में, प्रेम में। समाहि—(परमात्मा में) लीन हैं।

अर्थ : (परमात्मा के) गुण अनमोल हैं। (भाव, गुणों का मूल्य नहीं आंका जा सकता), (इन गुणों का) व्यापार करना भी अनमोल है। उन मनुष्यों का (भी) मूल्य नहीं आंका जा सकता जो (परमात्मा के गुणों का) व्यापार करते हैं, (गुणों के) खज़ाने (भी) अमूल्य हैं। उन मनुष्यों का मूल्य नहीं आंका जा सकता जो (इस व्यापार के लिये जगत में) आते हैं। (वे भी बड़े भाग्यशाली हैं, जो) यह सौदा खरीद कर ले जाते हैं। जो मनुष्य परमात्मा के प्रेम में हैं तथा जो मनुष्य उस परमात्मा में लीन हैं, वे भी अमोल हैं।

अमुलु धरमु, अमुलु दीबाणु ॥
अमुलु तुलु, अमुलु परवाणु ॥
अमुलु बखसीस, अमुलु नीसाणु ॥
अमुलु करमु, अमुलु फ़ुरमाणु ॥

पद अर्थ : धरमु—नियम, कानून। दीबाणु—कचहरी, राज-दरबार। तुलु—तोल, तुला। परवाणु—प्रमाण, तोलने वाला बाट। बखसीस—रहमत, दया। नीसाणु—परमात्मा की दया का निशान। करमु—रहमत, कृपा। फ़ुरमाणु—हुक्म। अमुलु—अंदाज़ों से परे, जिसका मूल्य न आंका जा सके।

अर्थ : परमात्मा के कानून तथा राज-दरबार अमोल हैं। वह तराजू अमूल्य है तथा बाट अमूल्य है (जिस से जीवों के अच्छे बुरे कर्मों को तोलता

है)। उस की कृपा तथा कृपा-निशान भी अनमोल हैं। परमात्मा की कृपा तथा हुक्म भी मूल्य से परे हैं (किसी का भी अंदाज़ा नहीं लग सकता)।

अमुलो अमुलु आखिआ न जाइ ॥
आखि आखि रहे लिव लाइ ॥

पद अर्थ : अमुलो अमुलु—अमोल ही अमोल, अंदाज़ों से परे। आखि आखि—अंदाजा लगा लगा कर। रहे—रह गये हैं, थक गये हैं। लिव लाइ—लिव लगाकर, ध्यान जोड़कर।

अर्थ : परमात्मा सब अंदाज़ों से परे है, उस का कोई अंदाज़ा नहीं लगा सकता। जो मनुष्य ध्यान जोड़ जोड़ कर परमात्मा का अंदाज़ा लगाते हैं, वे (अन्त को) रह जाते हैं।

आखहि, वेद पाठ पुराण ॥
आखहि पढ़े करहि वखिआण ॥
आखहि बरमे, आखहि इंद ॥
आखहि, गोपी तै गोविंद ॥

पद अर्थ : आखहि—कह रहे हैं, वर्णन करते हैं। वेद पाठ—वेदों के पाठ, वेदों के मन्त्र। पढ़े—पढ़े हुये मनुष्य, विद्वान। करहि वखिआण—व्याख्यान करते हैं, उपदेश करते हैं, अन्य लोगों को सुनाते हैं। बरमे—कई ब्रह्मा। इंद—इन्द्र देवते। तै—तथा। गोविंद—कई कृष्ण।

अर्थ : वेदों के मन्त्र तथा पुराण परमात्मा का अंदाज़ा लगाते हैं। विद्वान मनुष्य भी, जो (अन्य लोगों को) उपदेश देते हैं, (परमात्मा का) ब्यान करते हैं। कई ब्रह्मा, कई इन्द्र, गोपीयाँ तथा कई कृष्ण परमात्मा का अंदाज़ा लगाते हैं।

आखहि ईसर, आखहि सिध ॥
आखहि, केते कीते बुध ॥
आखहि दानव, आखहि देव ॥
आखहि, सुरि नर मुनि जन सेव ॥

पद अर्थ : ईसर—शिव। केते—कई। कीते—परमात्मा के पैदा किये हुये। बुध—महात्मा बुद्ध। दानव—राक्षस, दैत्य। देव—देवता। सुरि नर—देवताओं के स्वभाव वाले मनुष्य। मुनि जन—मुनि लोग। सेव—सेवक।

अर्थ : कई शिव तथा सिद्ध, परमात्मा द्वारा पैदा किये हुये अनन्त बुद्ध, राक्षस तथा देवता-गण, देव-स्वभाव मनुष्य, मुनि जन और सेवक परमात्मा का अंदाज़ा लगाते हैं।

केते आखहि, आखणि पाहि ॥
केते, कहि कहि, उठि उठि जाहि ॥
एते कीते, होरि करेहि ॥
ता, आखि न सकहि केई केइ ॥

पद अर्थ : केते—कई जीव। आखणि पाहि—कहने का यत्न करते हैं। कहि कहि—कह कह कर, परमात्मा का मूल्य आंक कर, परमात्मा का अंदाज़ा लगा लगा कर। उठि उठि जाहि—जहान से चले जा रहे हैं। एते कीते—इतने जीव पैदा किये हुये हैं। होरि—अन्य अनन्त जीव। करेहि—यदि तू पैदा कर दे (हे हरि!)। ता—तो भी। न केई केइ—कोई भी मनुष्य नहीं। आखि सकहि—कह सकते हैं।

अर्थ : अनन्त जीव परमात्मा का अंदाज़ा लगा रहे हैं तथा अनन्त ही लगाने का यत्न कर रहे हैं, अनन्त जीव अंदाज़ा लगा कर इस संसार से जा रहे हैं। संसार में इतने (अनन्त) जीव पैदा किये हुये हैं (जो ब्यान कर रहे हैं), (पर हे हरि!) यदि तू और भी (अनन्त जीव) पैदा कर दे, तो भी कोई जीव तेरा अंदाज़ा नहीं लगा सकता।

जेवडु भावै, तेवडु होइ ॥
नानक, जाणै साचा सोइ ॥
जे को आखै बोलु विगाड़ु ॥
ता लिखीऐ सिरि गावारा गावारु ॥२६॥

पद अर्थ : जेवडु—जितना बड़ा। भावै—चाहता है। तेवडु—उतना बड़ा। साचा सोइ—वह सदा-स्थिर रहने वाला परमात्मा। बोलु विगाड़ु—बोल को बिगाड़ने वाला, बड़बोला। लिखीऐ—(वह बड़बोला) लिखा जाता है। सिरि गावारा गावारु—गँवारों का गँवार, महामूर्ख।

अर्थ : हे नानक! परमात्मा जितना चाहता है, उतना ही बड़ा हो जाता है (अपनी कुदरत बढ़ा लेता है)। वह सदा अटल रहने वाला हरि आप ही जानता है (कि वह कितना बड़ा है)। यदि कोई बड़बोला मनुष्य बताने लगे (कि परमात्मा इतना बड़ा है) तो वह मनुष्य महामूर्ख गिना जाता है।२६।

भाव : संसार में अनन्त विद्वान हो चुके हैं तथा पैदा होते रहेंगे। पर,. न अभी तक कोई मनुष्य लेखा कर सका है तथा न ही आगे कोई कर सकेगा कि प्रभु में कितने गुण हैं तथा वह कितनी कृपा जीवों पर कर रहा है। अनन्त हैं उसके गुण तथा असीम है उसकी देन। इस भेद को उस प्रभु के बिना अन्य कोई नहीं जानता। यह काम मनुष्य की ताकत

से बहुत परे का है। उस मनुष्य को नीच जानो, जो प्रभु के गुणों तथा देन की सीमा ढूँढ सकने का दावा करता है।

सो दरु केहा, सो घरु केहा, जितु बहि सरब समाले ।।
वाजे नाद अनेक असंखा, केते वावणहारे ।।
केते राग परी सिउ कहीअनि, केते गावणहारे ।।

पद अर्थ : केहा—कैसा, आश्चर्ययुक्त। दरु—दरवाज़ा। जितु—जहाँ। बहि—बैठकर। सरब—सारे जीवों को। समाले—तूने सम्भाल की है। नाद—आवाज़, शब्द, राग। वावणहारे—बजाने वाले। परी—रागनी। सिउ—साथ। परी सिउ—रागनियों सहित। कहीअनि—कहे जाते हैं।

अर्थ : वह दर-घर बड़ा ही आश्चर्ययुक्त है जहाँ बैठ कर (हे निरंकार!) तू सारे जीवों की सम्भाल कर रहा है। (तेरी इस रची हुयी कुदरत में) अनेक तथा अगिणत बाजे तथा राग हैं, अनन्त ही जीव (उन बाजों को) बजाने वाले हैं, रागनियों सहित अनन्त ही राग कहे जाते हैं तथा अनेक ही जीव (इन रागों के) गाने वाले हैं (जो तुझे गा रहे हैं)।

गावहि तुहनो, पउणु पाणी बैसंतरु, गावै राजा धरमु दुआरे ।।
गावहि चितु गुपतु लिखि जाणहि, लिखि लिखि धरमु वीचारे ।।

पद अर्थ : तुहनो—तुम्हें (हे परमात्मा!)। राजा धरमु—धर्मराज। दुआरे—तेरे दर पर (हे निरंकार!)। चितु गुपतु—वे व्यक्ति जो यम-लोक में रहकर संसार के जीवों के अच्छे बुरे कर्मों का लेखा लिखते हैं (पुरातन हिन्दु-धर्म-पुस्तकों के अनुसार यह विचार चला आ रहा है)। धरमु—धर्मराज। लिखि लिखि—लिख लिख कर, भाव जो कुछ वह चित्र गुप्त लिखते हैं। बैसंतरु—आग।

अर्थ : (हे निरंकार!) पवन, पानी, अग्नि तेरे गुण गा रहे हैं। धर्मराज तेरे दर पर (खड़ा होकर) तेरी बड़ाई कर रहा है। वह चित्र गुप्त भी, जो (जीवों के अच्छे बुरे कर्मों के लेखे) लिखना जानते हैं तथा जिन के लिखे हुये को धर्मराज विचार करता है, तेरे गुण गा रहे हैं।

गावहि ईसरु बरमा देवी, सोहनि सदा सवारे ।।
गावहि इंद इदासणि बैठे, देवतिआ दरि नाले ।।

पद अर्थ : ईसरु—शिव। बरमा—ब्रह्मा। देवी—देवियाँ। सोहनि—सुशोभित होते हैं, सुन्दर लगते हैं। सवारे—तेरे सँवारे हुये। इंद—इन्द्र देवते। इदासणि—(इद+आसणि) इन्द्र के आसन पर। दरि—तेरे दर पर। देवतिआ नाले—देवताओं सहित।

अर्थ : (हे परमात्मा!) देवियाँ, शिव तथा ब्रह्मा जो तेरे सँवारे हुये हैं, तुझे गा रहे हैं। कई इन्द्र अपने तख्त पर बैठे हुये देवताओं सहित तेरे दर पर तुझे सराह रहे हैं।

गावहि सिध समाधी अंदरि, गावनि साध विचारे ।।
गावनि जती सती संतोखी, गावहि वीर करारे ।।

पद अर्थ : समाधी अंदरि—समाधि में जुड़ कर, समाधि लगाकर। सिध—पुरातन संस्कृत पुस्तकों में सिद्ध वे व्यक्ति माने गये हैं जो मनुष्यों की श्रेणी से ऊपर थे तथा देवताओं से नीचे। ये सिद्ध पवित्रता के पुञ्ज थे तथा आठों ही सिद्धियों के स्वामी समझे जाते थे। विचारे—विचार विचार कर। सती—दानी, दान करने वाले। वीर करारे—बलशाली शूरवीर।

अर्थ : सिद्ध लोग समाधियाँ लगा कर तुझे गा रहे हैं, साधु विचार कर कर के तुझे सराह रहे हैं। जती, दानी तथा सन्तोष युक्त मनुष्य तेरे

गुण गा रहे हैं तथा (अनन्त) बलशाली शूरवीर तेरा गुणगान कर रहे हैं।

गावनि पंडित पढ़नि रखीसर, जुगु जुगु वेदा नाले ।।
गावहि मोहणीआ मनु मोहनि, सुरगा मछ पइआले ।।

पद अर्थ : पढ़नि—पढ़ते हैं। रखीसर—(रिखी-ईसर) बड़े बड़े ऋषि, महर्षि। जुगु जुगु—प्रत्येक युग में, सदा। वेदा नाले—वेदों सहित। मोहणीआ—सुन्दर स्त्रियां। मछ—मातृ-लोक में। पइआले—पाताल में।

अर्थ : (हे परमात्मा!) पण्डित तथा महर्षि, जो (वेदों को) पढ़ते हैं, वेदों सहित तुम्हें गा रहे हैं। सुन्दर स्त्रियाँ जो स्वर्ग, मातृ-लोक तथा पाताल में (भाव, प्रत्येक स्थान पर) मनुष्य के मन को मोह लेती हैं, तुम्हें गा रही हैं।

गावनि रतन उपाए तेरे, अठसठि तीरथ नाले ।।
गावहि जोध महा बल सूरा, गावहि खाणी चारे ।।
गावहि खंड मंडल वरभंडा करि करि रखे धारे ।।

पद अर्थ : उपाए तेरे—तेरे पैदा किये हुये। अठसठि—अड़सठ। तीरथ नाले—तीर्थों सहित। जोध—योद्धा। महा बल—अधिक बल वाले, महाबली। सूरा—शूरवीर। खाणी चारे—चार खाणियाँ : अण्डज, जेरज, सेतज, उत्भुज। खाणी—खान, जिस को खोदकर बीच में से धातु या रत्न आदि पदार्थ निकाले जायें। यह संस्कृत का शब्द है। धातु 'खन' है, जिसका अर्थ है 'खोदना'। खाणी चारे—पुरातन समय से यह ख्याल हिन्दु-धर्म पुस्तकों में चला आ रहा है कि जगत के सारे जड़-चेतन पदार्थों के बनने की चार खानें हैं : अंडा, वीर्य, पसीना तथा अपने आप उग जाना। 'चारे खाणी' का यहाँ भाव है कि चारों ही खानों के जीव-जन्तु, सारी रचना। खंड—टुकड़ा, ब्रह्माण्ड का टुकड़ा, (भाव) प्रत्येक धरती। मंडल—चक्र, ब्रह्माण्ड का एक चक्र,

जिसमें एक सूर्य, एक चन्द्रमा तथा धरती आदि गिने जाते हैं। वरभंडा—सारी सृष्टि। करि करि—बनाकर, रचकर। धारे—टिकाये हुये।

अर्थ : (हे निरंकार!) तेरे पैदा किये हुये रत्न, अड़सठ तीर्थों सहित तुम्हें गा रहे हैं। महाबली योद्धा तथा शूरवीर तेरी सराहना कर रहे हैं। चारों ही खानों के जीव-जन्तु तुझे गा रहे हैं। सारी सृष्टि, सृष्टि के सारे खण्ड तथा चक्र, जो तुमने पैदा करके टिकाये हुये हैं, तुझे गाते हैं।

सेई तुधनो गावहि, जो तुधु भावनि, रते तेरे भगत रसाले ॥
होरि केते गावनि से मै चिति न आवनि, नानकु किआ वीचारे ॥

पद अर्थ : सेई—वही जीव। तुधु भावनि—तुझे अच्छे लगते हैं। रते—रंगे हुये, प्रेम में मस्त हुये। रसाले—(रस+आलय), रस के घर, रसीये। होरि केते—अनेक अन्य जीव। मै चिति—मेरे चित में। मै चिति न आवनि—मेरे चित्त में नहीं आते, मुझ से गिने नहीं जा सकते, मेरे विचार से परे हैं। किआ वीचारे—क्या विचार करे ?

अर्थ : (हे परमात्मा!) (असल में तो) वही तेरे प्रेम में रत रसिक भक्त जन तुझे गाते हैं (भाव, उनका ही गाना सफल है) जो तुझे अच्छे लगते हैं। अनेक अन्य जीव तुझे गा रहे हैं, जो मुझ से गिने भी नहीं जा सकते। (भला) नानक (बिचारा) क्या विचार कर सकता है ?

सोई सोई सदा सचु, साहिबु साचा, साची नाई ॥
है भी होसी, जाइ न जासी, रचना जिनि रचाई ॥

पद अर्थ : सचु—स्थिर रहने वाला, अटल। नाई—बड़प्पन। होसी—होगा, अटल रहेगा। जाइ न—पैदा नहीं होता। न जासी—न ही मरेगा। जिनि—जिस परमात्मा ने। रचाई—पैदा की है।

अर्थ : जिस परमात्मा ने यह सृष्टि पैदा की है, वह इस समय मौजूद है, सदा रहेगा, न वह पैदा हुआ है तथा न ही मरेगा। वह परमात्मा सदा अटल है, वह स्वामी सच्चा है, उस का बड़प्पन भी सदा अटल है।

रंगी रंगी भाती करि करि, जिनसी माइआ जिनि उपाई ॥
करि करि वेखै कीता आपणा, जिव तिस दी वडिआई ॥

पद अर्थ : रंगी रंगी—विभिन्न रंगों की, कई रंगों की। भाती—कई किस्मों की। करि करि—पैदा कर के। जिनसी—कई जिनसों की। जिनि—जिस परमात्मा ने। वेखै—सम्भाल करता है। कीता आपणा—अपना रचा हुआ जगत। जिव—जैसे। वडिआई—रज़ा।

अर्थ : जिस परमात्मा ने कई रंगों, किस्मों तथा जिनसों की माया रची है, वह जैसे उसकी रज़ा है (भाव, जितना बड़ा आप है उतने बड़े दिल से जगत को रचकर) अपने पैदा किये हुये की सम्भाल भी कर रहा है।

जो तिसु भावै सोई करसी, हुकमु न करणा जाई ॥
सो पातिसाहु, साहा पातिसाहिबु, नानक रहणु रजाई ॥२७॥

पद अर्थ : करसी—करेगा। न करणा जाई—नहीं किया जा सकता। साहा पातिसाहिबु—शाहों का बादशाह। रहणु—रहना (हो सकता है), रहना जचता है। रजाई—परमात्मा की रज़ा में।

अर्थ : जो कुछ परमात्मा को अच्छा लगता है, वही करेगा, किसी जीव द्वारा परमात्मा के आगे हुक्म नहीं किया जा सकता (उसको यह नहीं कह सकते—'ऐसा न कर, ऐसा कर') परमात्मा बादशाह है, बादशाहों का भी बादशाह है। हे नानक! (जीवों को) उस की रज़ा में रहना (ही जचता) है।२७।

नोट : पवन, पानी, आग आदि अचेतन पदार्थ कैसे परमात्मा का गुण गान कर रहे हैं ? इस का भाव यह है कि उसके पैदा किये हुये सारे तत्व भी उसकी रज़ा में चल रहे हैं। रज़ा में चलना उसका गुण गान करना है।

भाव : कई रंगों की, कई किस्मों की, कई पदार्थों की, अनन्त रचना परमात्मा ने रची है। इस असीम सृष्टि की सम्भाल भी वह स्वयं ही कर रहा है, क्योंकि वह स्वयं ही एक ऐसा है जो सदा-स्थिर रहने वाला है। जगत् में ऐसा कौन है जो यह कह सके कि कैसे स्थान पर बैठकर वह सृजनहार इस अनन्त रचना की सम्भाल करता है ? किसी मनुष्य की ऐसी सामर्थ्य ही नहीं। मनुष्य को तो केवल एक ही बात जचती है कि प्रभु की रज़ा में रहे। यही है साधन प्रभु से दूरी मिटाने का तथा यही है इसके जीवन का मनोरथ। देखें! हवा, पानी आदि तत्त्वों से लेकर उच्च जीवन वाले महापुरुषों तक सब अपने अपने अस्तित्व के मनोरथ को सफल कर रहे हैं, भाव, उस के हुक्म अनुसार कार्य कर रहे हैं।

नोट : इसके आगे न. २८ से ३१ तक चार पउड़ियों का सामूहिक भाव यह है कि सारे संसार को पैदा करने वाले तथा अटल रहने वाले परमात्मा का सिमरन ही मनुष्य का जीवन-मनोरथ है, सिमरन ही रज़ा में टिका कर प्रभु से जीव की दूरी मिटा सकता है।

मुंदा संतोख, सरमु पतु झोली, धिआन की करहि बिभूति ॥
खिंथा कालु, कुआरी काइआ जुगति, डंडा परतीति ॥

पद अर्थ : मुंदा—मुद्रा (कानों में डालने वाली मुद्राएं)। सरमु—उद्यम, मेहनत। पतु—पात्र, खप्पर। श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में यह शब्द तीन रूपों में आता है, 'पति', 'पत', 'पतु'। पंजाबी में चाहे यह एक शब्द ही

प्रतीत होता हो पर यह तीनों शब्द अलग अलग हैं। तीनों ही संस्कृत में से आये हैं। शब्द 'पति' का संस्कृत में अर्थ है 'स्वामी, मालिक'। पंजाबी में इसका एक अन्य अर्थ भी लिया जाता है 'इज़्जत, आबरु'।

शब्द 'पतु' एक-वचन है। संस्कृत में 'पात्र' है, जिसका अर्थ है 'बर्तन, प्याला, खप्पर'। इसका बहु-वचन है 'पत', पर इस उपर्युक्त अर्थ में यह शब्द 'पत' श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में नहीं आया। अतः शब्द 'पत' के लिये संस्कृत में एक और शब्द है 'पत्र' जिसका अर्थ है 'वृक्षों के पत्र'।

करहि—यदि तू बनाये। बिभूति—राख, उपलों की राख। खिंथा—गोदड़ी। कालु—मौत। कुआरी काइआ—कुआरा शरीर, विषय विकारों से बचा हुआ शरीर, विकारों से अछूती काया। जुगति—योग की युक्ति, योग मत की रहत। परतीति—विश्वास, श्रद्धा।

अर्थ : (हे जोगी!) यदि तू संतोष को अपनी मुद्राएं बनाये, मेहनत को खप्पर तथा झोली, और परमात्मा के ध्यान की राख (शरीर पर लगाये), मौत (का डर) तेरी गोदड़ी हो, शरीर को विकारों से बचाकर रखना तेरे लिये योग की रहत हो तथा श्रद्धा को डंडा बनाये (तो अन्दर से कूड़ (असत्य) की दीवार टूट सकती है)।

आई पंथी, सगल जमाती, मनि जीतै जगु जीतु ।।
आदेसु, तिसै आदेसु ।।
आदि अनीलु अनादि अनाहति, जुगु जुगु एको वेसु ।।२८।।

पद अर्थ : आई पंथु—योगियों की १२ श्रेणियाँ हैं, उन में से सर्वोच्च 'आई पंथ' गिना जाता है। आई पंथी—आई पंथ वाला, आई पंथ के साथ सम्बन्ध रखने वाला। सगल—सारे जीव। जमाती—एक ही पाठशाला में,

एक ही श्रेणी में पढ़ने वाले, एक स्थान पर मिलकर बैठने वाले, मित्र सज्जन। मनि जीतै—मन को जीतने से, यदि मन जीत लिया जाये। ऐसे वाक्यांश श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में अनेक आते हैं, जैसे :

नाइ विसरिऐ—यदि नाम भूल जाये।

नाइ मंनिऐ—यदि नाम मान लें।

आदेसु—प्रणाम। तिसै—उसी परमात्मा को। आदि—आरम्भ से। अनीलु—कलंक-रहित, पवित्र, शुद्ध-स्वरूप। अनादि—जिस का कोई आदि (आरम्भ) नहीं है। अनाहति—(अन+आहिति), आहिति—नाश, (इस शब्द का संस्कृत धातु 'हन' है, जिस का अर्थ है 'मारना, नाश करना')। अनाहति—नाश-रहित, एक-रस। जुगु जुगु—प्रत्येक युग में, सदा। वेसु—रूप।

अर्थ : जो मनुष्य सारी सृष्टि के जीवों को अपने सज्जन मित्र समझता है (असल में) वही आई पंथ वाला है। यदि अपना मन जीत लिया जाये तो सारा जगत ही जीत लिया जाता है (भाव, तब जगत की माया परमात्मा से पृथक नहीं कर सकती)। (इस लिये कूड़ (असत्य) की दीवार को दूर करने के लिये) केवल उस (परमात्मा) को प्रणाम करें, जो (सब का) आदि है, जो शुद्ध स्वरूप है, जिस का कोई मूल नहीं (ढूँढ सकता), जो नाश-रहित है तथा जो सदा ही एक जैसा रहता है।२८।

भाव : योग मत के खिंथा, मुद्रा, झोली आदि प्रभु से जीव की दूरी मिटाने में समर्थ नहीं हैं। ज्यों ज्यों अटल प्रभु की याद में जुड़ेंगे, संतोष वाला जीवन बनेगा, सत्य की मेहनत करने की आदत बनेगी, मौत सिर पर याद रहेगी तथा विकारों से बचे रहेंगे, प्रभु की हस्ती में विश्वास बनेगा तथा सारे जीवों में वह प्रभु बसता दिखायी देगा।

भुगति गिआनु, दइआ भंडारणि, घटि घटि वाजहि नाद ।।
आपि नाथु, नाथी सभ जा की, रिधि सिधि अवरा साद ।।
संजोगु विजोगु दुइ कार चलावहि, लेखे आवहि भाग ।।

पद अर्थ : भुगति—चूरमा। भंडारणि—भंडारा बांटने वाली। घटि घटि—प्रत्येक शरीर में। वाजहि—बज रहे हैं। नाद—शब्द। (योगी भंडारा खाने के समय एक नादी बजाते हैं, जो उन्होंने अपने गले में लटकाई होती है)। आपि—परमात्मा स्वयं। नाथी—वश में, नथी हुयी। सभ—सारी सृष्टि। रिधि—प्रताप, बड़प्पन। सिधि—योगियों में आठ बड़ी सिद्धियाँ मानी जाती हैं। 'सिधि' के शाब्दिक अर्थ हैं, 'सफलता', 'करामात'। (आठ सिद्धियाँ ये हैं—अणिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्यं, महिमा, ईशित्वं, वशित्वं, तथा कामावसायता। अणिमा—एक अणु जितना छोटा बन जाना। लघिमा—बहुत ही हल्के भार का हो जाना। प्राप्ति—प्रत्येक पदार्थ प्राप्त करने की सामर्थ्य। प्राकाम्यं—स्वतन्त्र मर्ज़ी, जिसका कोई विरोध न कर सके। महिमा—अपने आप को जितना चाहे उतना बड़ा बनाने की ताकत। ईशित्वं—प्रभुता। वशित्वं—दूसरे को अपने वश में कर लेना। कामावसायता—कामादि विकारों को वश में रखने का बल)।

अवरा—अन्य, परमात्मा से दूर ले जाने वाले (पदार्थ)। साद—स्वाद, चस्के। संजोगु—मेल, परमात्मा की रज़ा का वह अंश जिस से जीव मिलते हैं, या संसार के अन्य कार्य होते हैं। विजोगु—विछोड़ा, परमात्मा की रज़ा का वह अंश जिस द्वारा जीव बिछुड़ते हैं, या कोई अस्तित्व वाले पदार्थ नष्ट हो जाते हैं। दुइ—दोनों। कार—संसार का व्यवहार। चलावहि—चला रहे हैं। (योगियों में भंडारे के लिये एक मनुष्य रसद लाने वाला होता है, यह अकाल पुरख की 'संजोगु' रूप सत्ता समझ लें। दूसरा बांटने वाला

होता है, जो 'विजोगु' सत्ता है)। लेखे—किये कर्मों के लेखे (हिसाब) अनुसार। आवहि—आते हैं, मिलते हैं। भाग—अपने अपने हिस्से। (योगी भंडारा बाँटते समय प्रत्येक व्यक्ति को दर्जा-बा-दर्जा 'छांदा' देते जाते हैं। परमात्मा की 'संजोगु, विजोगु' सत्ता सब जीवों को उनके किये कर्मों के अनुसार सुख दुःख के 'छांदे' (हिस्से) बांट रही है।)

अर्थ : (हे योगी! यदि) परमात्मा की सर्वव्यापकता का ज्ञान तेरे लिये भंडारा (चूरमा) हो, दया इस (ज्ञान रूप) भंडारे को बांटने वाली हो, प्रत्येक जीव के अन्दर जो ज़िन्दगी की रौ चल रही है, (भंडारा खाते समय तेरे अन्दर) यह नादी बज रही हो, तेरा नाथ आप परमात्मा हो, जिस के वश में सारी सृष्टि है, (तब कूड़ की दीवार तेरे अन्दर से टूट जाने पर परमात्मा से तेरी दूरी मिट सकती है)। (योग साधना द्वारा प्राप्त हुयी ऋद्धियाँ, सिद्धियाँ व्यर्थ हैं, ये) ऋद्धियाँ तथा सिद्धियाँ (तो) किसी अन्य ओर ले जाने वाले स्वाद हैं। परमात्मा की 'संजोगु' सत्ता तथा 'विजोगु' सत्ता दोनों (मिलकर इस संसार के) व्यवहार को चला रही हैं (भाव, पिछले संजोगों के कारण परिवार आदि के जीव यहाँ आकर एकत्र होते हैं। रज़ा में बिछुड़ बिछुड़ कर अपनी अपनी बारी यहाँ से चले जाते हैं) तथा (सब जीवों के किये कर्मों के) लेखे के अनुसार (दर्जा-बा-दर्जा सुख दुःख के) छांदे (हिस्से) मिल रहे हैं (यदि यह विश्वास बन जाये तो अन्दर से 'कूड़' की दीवार टूट जाती है)।

आदेसु, तिसै आदेसु ॥

आदि अनीलु अनादि अनाहति, जुगु जुगु एको वेसु ॥२९॥

अर्थ : (कूड़ की दीवार दूर करने के लिये) केवल उस (परमात्मा) को प्रणाम करें जो (सब का) मूल है, आदि है, शुद्ध स्वरूप है, जिस का

कोई आरम्भ नहीं (खोज सकता), जो नाश-रहित है तथा जो सदा ही एक-सा रहता है।२९।

भाव : सिमरन की बरकत से यह ज्ञान पैदा होगा कि प्रभु प्रत्येक स्थान पर भरपूर है तथा सब का स्वामी है। उसकी रज़ा में जीव यहाँ आकर एकत्र होते हैं, तथा रज़ा में ही यहाँ से चले जाते हैं। यह ज्ञान पैदा होने से जीवों के साथ प्यार करने का तरीका आयेगा। योग-अभ्यास के द्वारा प्राप्त हुयी ऋद्धियों तथा सिद्धियों को ऊँचा जीवन समझ लेना भूल है। यह तो कुमार्ग पर ले जाती हैं। (इनकी सहायता से योगी लोग साधारण जनता पर दबाव डालकर उनको इन्सानियत से गिराते हैं)।

एका माई, जुगति विआई, तिनि चेले परवाणु ।।
इकु संसारी, इकु भंडारी, इकु लाए दीबाणु ।।

पद अर्थ : एका—अकेली। माई—माया। जुगति—युक्ति के साथ, तरीके से। विआई—प्रसूत हुयी। तिनि—इस शब्द के तीन स्वरुप हैं : 'तिन', 'तिनि' तथा 'तीनि'। 'तीनि' का अर्थ है 'तीन', 'तिनि' का अर्थ भी 'तीन' है, पर इसका अन्य अर्थ भी है :

'तिन' सर्वनाम बहु-वचन है तथा 'तिनि' सर्वनाम एक-वचन है।
'जिन' बहु-वचन है तथा 'जिनि' एक-वचन है।

(१) तिनि—उस मनुष्य ने (एक-वचन)

जिनि सेविआ तिनि पाइआ मानु ।। *(पउड़ी ५)*

(२) तिन—उन मनुष्यों ने (बहु-वचन)

जिन हरि जपिआ तिन फलु पाइआ, सभि तूटे माइआ फंदे ।।३।।

(बिलावलु म: ४, पृष्ठ ८००)

परवाणु—शब्द 'परवाणु' की ओर भी ध्यान देने की आवश्यकता है। जपु जी साहिब में यह शब्द निम्नलिखित पंक्तियों में आया है :

(१) **पंच परवाण पंच परधानु ॥** *(पउड़ी १६)*

(२) **अमुलु तुलु, अमुलु परवाणु ॥** *(पउड़ी २६)*

(३) **एका माई जुगति विआई तिनि चेले परवाणु ॥** *(पउड़ी ३०)*

(४) **तिथै सोहनि पंच परवाणु ॥** *(पउड़ी ३४)*

संस्कृत में यह शब्द 'प्रमाण' है, जिसके कई अर्थ हैं, जैसे :

१. बाट २. हैसीयत ३. गवाही ४. माना हुआ आदि।

'माना हुआ' (प्रमाण) अर्थ में शब्द दो तरह प्रयुक्त होता है, भाव, एक-वचन में भी तथा, बहु-वचन में भी जैसे—'व्याकरणे पाणनि प्रमाणं तथा 'वेदाः प्रमाणाः'।

पंक्ति न. १ में परवाण (बहु-वचन) का अर्थ है 'माने हुये'। पंक्ति न. २ में 'परवाणु' (एक-वचन) का अर्थ है 'बाट'। पंक्ति न. ३, ४ में 'परवाणु' (एक-वचन) का अर्थ है, माने होने पर, प्रत्यक्ष रूप से।

परवाणु—प्रत्यक्ष। संसारी—घर-बार वाला। भंडारी—भंडारे का स्वामी, रिज़क देने वाला। लाए—लाता है। दीबाणु—दरबार, कचहरी।

अर्थ : (लोगों में यह ख़्याल प्रचलित है कि) अकेली माया (किसी) युक्ति से प्रसूत हुयी तथा प्रत्यक्ष रूप से उस के तीन पुत्र पैदा हुये। उनमें से एक (ब्रह्मा) संसारी बन गया (भाव, जीव जन्तुओं को पैदा करने लगा), एक (विष्णु) भंडारे का स्वामी बन गया (भाव, जीवों को रिज़क पहुँचाने का काम करने लगा), तथा एक (शिव) कचहरी लगाता है, (भाव, जीवों का संहार करता है।)

जिव तिसु भावै, तिवै चलावै, जिव होवै फुरमाणु ।।
ओहु वेखै, ओना नदरि न आवै, बहुता एहु विडाणु ।।

पद अर्थ : जिव—जैसे, जिस तरह। तिसु—उस परमात्मा को। चलावै—(संसार का व्यवहार) चलाता है। फुरमाणु—हुक्म। ओहु—परमात्मा। ओना—जीवों को। नदरि न आवै—दिखता नहीं। विडाणु—आश्चर्ययुक्त कौतुक।

अर्थ : (पर वास्तविक बात यह है कि) जैसे उस परमात्मा को अच्छा लगता है तथा जैसा उसका हुक्म है, वैसे ही वह स्वयं संसार का व्यवहार चला रहा है (इन ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव के हाथ कुछ नहीं)। यह बड़ा आश्चर्ययुक्त कौतुक है कि वह परमात्मा (सब जीवों को) देख रहा है, पर जीवों को परमात्मा दिखायी नहीं देता।

आदेसु, तिसै आदेसु ।।
आदि अनीलु अनादि अनाहति, जुगु जुगु एको वेसु ।।३०।।

अर्थ : (ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि के स्थान पर) केवल उस (परमात्मा) को प्रणाम करें जो (सब का) आदि है, जो शुद्ध स्वरूप है, जो अनादि है (जिस का कोई आरम्भ नहीं खोज सकता) जो नाश-रहित है तथा जो सदा ही एक जैसा रहता है। (यही साधन है प्रभु से दूरी मिटाने का) ।३०।

भाव : जैसे जैसे मनुष्य प्रभु की याद में जुड़ता है वैसे वैसे उसको यह ख्याल कच्चे प्रतीत होते हैं कि ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि अलग हस्तियाँ जगत का प्रबन्ध चला रही हैं। सिमरन करने वाले को विश्वास है कि प्रभु स्वयं अपनी रज़ा में अपने हुक्म के अनुसार जगत का कार्य-व्यापार चला रहा है, चाहे जीवों को इन आंखों से वह दिखायी नहीं देता।

आसणु लोइ लोइ भंडार ।।
जो किछु पाइआ, सु एका वार ।।
करि करि वेखै सिरजणहारु ।।
नानक, सचे की साची कार ।।

पद अर्थ : आसणु—ठिकाना। लोइ—लोक में। लोइ लोइ—प्रत्येक भवन में। आसणु भंडार—भंडारों का ठिकाना। पाइआ—उस परमात्मा ने डाल दिया है। करि करि—(जीवों को) पैदा करके। वेखै—सम्भाल करता है। सिरजणहारु—सृष्टि को पैदा करने वाला, परमात्मा। साची—सदा अटल रहने वाली, सच्ची।

अर्थ : परमात्मा के भंडारों का ठिकाना प्रत्येक भवन में है (भाव, प्रत्येक भवन में परमात्मा के भंडारे चल रहे हैं)। जो कुछ (परमात्मा ने उन भंडारों में) डाला है, एक बार ही डाल दिया है, (भाव, उस के भंडारे सदा भरे हैं)। सृष्टि को पैदा करने वाला परमात्मा (जीवों को) पैदा करके (उनकी) देखभाल कर रहा है। हे नानक! सदा अटल रहने वाले (परमात्मा) का (सृष्टि की सम्भाल वाला) यह व्यवहार (कार) सदा अटल है।

आदेसु , तिसै आदेसु ।।
आदि अनीलु अनादि अनाहति, जुगु जुगु एको वेसु ।।३१।।

अर्थ : केवल उस (परमात्मा) को प्रणाम करें जो (सब का) मूल है, जो शुद्ध स्वरूप है, जिस का कोई मूल नहीं (खोज सकता), जो नाश-रहित है तथा जो सदा ही एक-सा रहता है। (यही तरीका है, जिस से उस प्रभु से दूरी मिट सकती है।) ।३१।

भाव : बंदगी की बरकत से ही यह समझ आती है कि चाहे परमात्मा

की पैदा की हुयी सृष्टि अनन्त है फिर भी उसका पालन करने के लिये उसके भंडारे भी अनन्त हैं, कभी समाप्त नहीं हो सकते। परमात्मा के इस प्रबन्ध के रास्ते में कोई बाधा नहीं पड़ सकती।

इक दू जीभौ लख होहि, लख होवहि लख वीस ।।
लखु लखु गेड़ा आखीअहि, एकु नामु जगदीस ।।

पद अर्थ : इक दू—एक से। इक दू जीभौ—एक जीभ से। होहि—हो जायें। लख—लाख (जीभें)। लख होवहि—लाख जीभों से हो जायें। लख वीस—बीस लाख। गेड़ा—चक्कर, फेरे। आखीअहि—कहे जायें। एकु नामु जगदीस—परमात्मा का एक नाम। जगदीस—जगत का ईश, जगत का स्वामी, परमात्मा।

अर्थ : यदि एक जीभ से लाख जीभें हो जायें तथा लाख जीभों से बीस लाख बन जायें, (इन बीस लाख जीभों से यदि) परमात्मा के एक नाम को एक एक लाख बार कहें (तो भी यह झूठे मनुष्य की झूठी गप्प है) (भाव, यदि मनुष्य यह सोचे कि मैं अपने उद्यम से इस तरह नाम सिमरन करके परमात्मा को पा सकता हूँ, तो यह झूठा अहंकार है)।

एतु राहि पति पवड़ीआ, चड़ीऐ होइ इकीस ।।
सुणि गला आकास की, कीटा आई रीस ।।

पद अर्थ : एतु राहि—इस रास्ते में, परमात्मा के मिलन के मार्ग में। पति पवड़ीआ—पति की सीढ़ियाँ, पति को मिलने के लिये जो सीढ़ियाँ हैं। चड़ीऐ—चढ़ते हैं, चढ़ सकते हैं। होइ इकीस—एक-रूप होकर, आपा-भाव गँवाकर। सुणि—सुनकर। कीटा—कीड़ों को।

अर्थ : इस रास्ते में (परमात्मा से दूरी मिटाने वाले मार्ग में) परमात्मा

को मिलने के लिये जो सीढ़ियाँ हैं, उन पर आपा-भाव गँवाकर ही चढ़ सकते हैं। (लाखों जीभों से भी गिनती के सिमरन से कुछ नहीं बनता। आपा-भाव दूर किये बिना यह गिनती के पाठों वाला उद्यम ऐसे है मानों) आकाश की बातें सुनकर कीड़ों को भी यह बराबरी करनी आ गयी है (कि हम भी आकाश पर पहुँच जायें)।

नानक नदरी पाईऐ, कूड़ी कूड़ै ठीस ।।३२।।

पद अर्थ : नदरी—नदरि, परमात्मा की कृपा-दृष्टि से। पाईऐ—प्राप्त करते हैं, परमात्मा को प्राप्त करते हैं। कूड़ै—झूठे मनुष्य की। कूड़ी ठीस—झूठी गप्प, अपने आप की झूठी प्रशंसा।

अर्थ : हे नानक! यदि परमात्मा कृपा-दृष्टि करे, तो ही उसको मिल सकते हैं। (नहीं तो) झूठे मनुष्य की अपने आप की केवल झूठी ही प्रशंसा है (कि मैं सिमरन कर रहा हूँ)।३२।

भाव : 'कूड़ की पालि' (झूठ के पर्दे) में घिरा हुआ जीव, दुनियावी चिन्ता फिक्र, दुःख क्लेशों की खाई में गिरा रहता है तथा प्रभु का निवास-स्थान मानो एक ऐसा ऊँचा ठिकाना है जहाँ ठण्ड ही ठण्ड है, शीतलता है, शान्ति ही शान्ति है। इस निम्न स्थान से उस ऊँची आत्मिक अवस्था में मनुष्य तभी पहुँच सकता है, यदि सिमरन की सीढ़ी का सहारा ले। 'तू तू' करता 'तू' में आपा लीन कर दे। इस 'अपनत्व' को न्यौछावर किये बिना यह सिमरन वाला उद्यम ऐसा ही है जैसे आकाश की बातें सुनकर चीटियों को भी वहाँ पहुँचने का शौक पैदा हो जाये, परन्तु चलें अपनी चींटी की गति से ही। यह भी ठीक है कि प्रभु की मर्ज़ी में अपनी मर्ज़ी को वही मनुष्य मिटाते हैं जिन पर प्रभु की कृपा हो।

आखणि जोरु, चुपै नह जोरु ॥
जोरु न मंगणि, देणि न जोरु ॥
जोरु न जीवणि, मरणि नह जोरु ॥
जोरु न राजि मालि मनि सोरु ॥

पद अर्थ : आखणि—कहने में, बोलने में। चुपै—चुप में, चुप रहने में। जोरु—सामर्थ्य, अपने मन की मर्ज़ी। मंगणि—मांगने में। देणि—देने में। जीवणि—जीवन में। मरणि—मरने में। राजि मालि—राज माल में, राज-माल के प्राप्त करने में। सोरु—शोर।

अर्थ : बोलने में तथा चुप रहने में भी हमारा कोई अपना वश नहीं है। न ही मांगने में हमारी अपनी मर्ज़ी चलती है तथा न ही देने में। जीवन में तथा मृत्यु में भी हमारी कोई सामर्थ्य (काम नहीं आती)। इस राज्य तथा माल (ऐश्वर्यादि का सामान) के प्राप्त करने में भी हमारा कोई ज़ोर नहीं चलता (जिस राज्य ऐश्वर्य के कारण हमारे) मन में (अहंकार का) शोर होता है।

जोरु न सुरती गिआनि वीचारि ॥
जोरु न जुगती छुटै संसारु ॥
जिसु हथि जोरु, करि वेखै सोइ ॥
नानक, उतमु नीचु न कोइ ॥३३॥

पद अर्थ : सुरती—आत्मिक जागृति में। गिआनि—ज्ञान (प्राप्त करने) में। वीचारि—विचार (करने) में। जुगती—युक्ति में, रहत में। छुटै—मुक्त होता है, समाप्त हो जाता है।

'जिसु हथि जोरु, करि वेखै सोइ'—इस पंक्ति को समझने के लिये शब्द 'सोइ' तथा 'करि वेखै' की ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

जपु जी साहिब में शब्द 'सोइ' निम्नलिखित पंक्तियों में आता है :

(१) **आपे आपि निरंजनु सोइ ॥** *(पउड़ी ५)*

(२) **जा करता सिरठी कउ साजे, आपे जाणै सोई ॥** *(पउड़ी २१)*

(३) **तिसु ऊचे कउ जाणै सोइ ॥** *(पउड़ी २४)*

(४) **नानक जाणै साचा सोइ ॥** *(पउड़ी २६)*

(५) **सोई सोई सदा सचु, साहिबु साचा, साची नाई ॥** *(पउड़ी २७)*

(६) **करहि अनंदु सचा मनि सोइ ॥** *(पउड़ी ३७)*

इन उपर्युक्त पंक्तियों में केवल पउड़ी २४ वाली पंक्ति में 'सोइ' पहली पंक्ति वाले 'कोइ' मनुष्य के लिये आया है। बाकी सब जगह परमात्मा के लिये आया है। इसी अर्थ को 'करि वेखै' और पक्का करता है। वेखै—सम्भाल करता है। जैसे :

(१) **गावै को वेखै हादरा हदूरि ॥** *(पउड़ी ३)*

(२) **करि करि वेखै कीता आपणा, जिव तिस दी वडिआई ॥** *(पउड़ी २७)*

(३) **करि करि वेखै सिरजणहारु ॥** *(पउड़ी ३१)*

(४) **ओहु वेखै ओना नदरि न आवै, बहुता एहु विडाणु ॥** *(पउड़ी ३०)*

(५) **करि करि वेखै नदरि निहाल ॥** *(पउड़ी ३७)*

(६) **वेखै विगसै करि वीचारु ॥** *(पउड़ी ३७)*

जिसु हथि—जिस परमात्मा के हाथ में। करि वेखै—(सृष्टि को) रच कर सम्भाल कर रहा है। सोइ—वही परमात्मा। संसारु—जन्म-मरन।

अर्थ : आत्मिक जागृति में, ज्ञान में तथा विचार में रहने की भी हमारी सामर्थ्य नहीं है। उस युक्ति में रहने के लिये भी हमारा वश नहीं

है, जिस कारन जन्म मरन समाप्त हो जाता है। वही परमात्मा रचना रचकर (उस की हर तरह से) सम्भाल करता है, जिस के हाथ में सामर्थ्य है। हे नानक! अपने आप में न कोई मनुष्य उत्तम है तथा न ही नीच। (भाव, मनुष्यों को सदाचारी या दुराचारी बनाने वाला वह प्रभु आप ही है), (यदि सिमरन की बरकत से यह निश्चय बन जाये तो ही परमात्मा से जीव की दूरी मिटती है) ।३३।

भाव : सुमार्ग पर चलना या कुमार्ग पर चलना, जीवों के अपने वश की बात नहीं। जिस प्रभु ने पैदा किये हैं, वही इन पुतलियों को खेल खिला रहा है। अतः यदि कोई जीव प्रभु का गुण-कीर्तन कर रहा है तो यह प्रभु की अपनी कृपा है; यदि कोई इस तरफ़ से हटा हुआ है तो भी यह स्वामी की रज़ा है। यदि हम उसके दर से देय पदार्थ (दाति) मांगते हैं तो यह प्रेरणा भी वह स्वयं ही करने वाला है, तथा फिर (दाति) देय पदार्थ देता भी आप ही है। यदि कोई जीव राज्य तथा धन के नशे में मस्त पड़ा है, यह भी रज़ा प्रभु की ही है। यदि किसी की चित्तवृत्ति प्रभु-चरणों में है तथा जीवन-युक्ति निर्मल है, तो यह कृपा भी प्रभु की ही है।

राती रुती थिती वार ।।
पवण पाणी अगनी पाताल ।।
तिसु विचि, धरती थापि रखी धरमसाल ।।
तिसु विचि, जीअ जुगति के रंग ।।
तिन के नाम, अनेक अनंत ।।

पद अर्थ : राती—रातें। रुती—ऋतुएं। थिती—तिथि। वार—दिन। पवण—सब प्रकार की हवा। पाताल—सारे पाताल। तिसु विचि—इन सब

के समुदाय में। यहाँ 'तिसु' की ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। पहली पंक्ति के सारे शब्द बहु-वचन में है। 'तिसु' एक-वचन है, जिस का अर्थ है 'सब का समुदाय'। थापि रखी—स्थापित कर दी है, रचकर टिका दी है। धरमसाल—धर्म अर्जित करने का स्थान। तिसु विचि—उस धरती पर। जीअ—जीव जन्तु। जीअ जुगति—जीवों की युक्ति, जीवों के रहने की युक्ति (बना दी है)।

के रंग—इस 'के रंग' को समझने के लिये निम्नलिखित पंक्तियों की ओर ध्यान देना आवश्यक है :

(१) **जीअ जाति रंगा के नाव ॥ सभना लिखिआ वुड़ी कलाम ॥** *(पउड़ी १६)*

(२) **तिथै भगत वसहि के लोअ ॥** *(पउड़ी ३७)*

(३) **जे तिसु नदरि न आवई, त वात न पुछै के ॥** *(पउड़ी ७)*

(४) **आपे जाणै आपे देइ ॥ आखहि सि भि केई केइ ॥** *(पउड़ी २५)*

(५) **एते कीते होरि करेहि ॥ ता आखि न सकहि केई केइ ॥** *(पउड़ी २६)*

(६) **करमी आपो आपणी के नेड़ै के दूरि ॥** *(सलोकु)*

इन सब पंक्तियों में 'के' का अर्थ है 'कई', 'न के' का अर्थ है 'कोई भी नहीं'। पउड़ी न. २६ में 'केई केइ' आया है। आज कल की पंजाबी में 'कई कई' कहते हैं।

जैसे 'के रंग' का अर्थ है 'कई रंगों के', वैसे ही 'के नांव' का अर्थ है 'कई नामों वाले', 'के लोअ' का अर्थ है 'कई लोकों के' 'कई भवनों के'।

अर्थ : रातें, ऋतुएं, तिथियाँ तथा वार, हवा, पानी, आग, पाताल—इन सब के समुदाय में (परमात्मा ने) धरती को धर्म अर्जित करने का स्थान बना कर स्थापित कर दिया है। इस धरती पर कई युक्तियों तथा रंगों के जीव (बसते) हैं, जिन के अनेक तथा अगिणत ही नाम हैं।

करमी करमी होइ वीचारु ॥
सचा आपि, सचा दरबारु ॥
तिथै सोहनि पंच परवाणु ॥
नदरी करमि पवै नीसाणु ॥

पद अर्थ : करमी करमी—जीवों के किये हुये कर्मों के अनुसार। तिथै—परमात्मा के दरबार में। सोहनि—सुशोभित होते हैं। परवाणु—प्रत्यक्ष रूप से। नदरी—कृपा-दृष्टि रखने वाला प्रभु। करमि—कर्म द्वारा, कृपा से। नदरी करमि—प्रभु की कृपा से। पवै नीसाणु—निशान पड़ जाता है, निशान लग जाता है, बड़प्पन का चिन्ह (माथे पर) चमक जाता है।

अर्थ : (इन अनेक नामों तथा रंगों वाले जीवों के) अपने अपने किये हुये कर्मों के अनुसार (प्रभु के दर पर) फैसला होता है, (जिस में कोई गलती नहीं होती, क्योंकि न्याय करने वाला) परमात्मा आप सच्चा है, उस का दरबार भी सच्चा है। उस दरबार में संत जन प्रत्यक्ष रूप से सुशोभित होते हैं, तथा कृपा-दृष्टि रखने वाले परमात्मा की कृपा से (उन संत जनों के मस्तक पर) बड़प्पन का निशान चमक जाता है।

कच पकाई, ओथै पाइ ॥
नानक, गइआ जापै जाइ ॥३४॥

पद अर्थ : कच—कच्चापन। पकाई—पक्कापन। ओथै—परमात्मा की दरगाह में। पाइ—पाई जाती है, पता लगती है। गइआ—जाकर ही, पहुँच कर ही। जापै जाइ—जाना जाता है, देखा जाता है, पता लगता है।

अर्थ : (यहाँ संसार में किसी का बड़ा या छोटा कहलवाना कोई अर्थ नहीं रखता, इनका) कच्चा होना या पक्का होना परमात्मा के दर पर

जा कर मालूम होता है। हे नानक! परमात्मा के दर पर जाकर ही समझ आती है (कि असल में कौन पक्का है तथा कौन कच्चा है) ।३४।

भाव : जिस मनुष्य पर प्रभु की कृपा होती है, उसको पहले यह समझ आती है कि मनुष्य इस धरती पर कोई खास कर्तव्य पूरा करने के लिये आया है। यहाँ जो अनेक जीव पैदा होते हैं, इन सब के अपने अपने कृत कर्मों के अनुसार यह फैसला होता है कि किस किस ने मनुष्य-जन्म के मनोरथ को पूरा किया है। जिन की मेहनत कबूल होती है, वे प्रभु की हजूरी में आदर पाते हैं। यहाँ संसार में किसी का बड़ा या छोटा होना कोई अर्थ नहीं रखता।

नोट : उपर्युक्त विचार आत्मिक मार्ग में जीव की पहली अवस्था है, जहाँ वह अपने कर्तव्य को पहचानता है। इस आत्मिक अवस्था का नाम 'धर्म खण्ड' है।

धरम खंड का एहो धरमु ॥
गिआन खंड का आखहु करमु ॥

पद अर्थ : धरम—धर्म, मन्तव्य। आखहु—बतायें, वर्णन करें, समझ लें। करमु—कर्म। एहो—यह जो ऊपर बताया गया है।

अर्थ : धर्म खण्ड का यही कर्तव्य है, (जो ऊपर बताया गया है) अब ज्ञान-खण्ड का कर्तव्य (भी) समझ लें (जो अगली पंक्तियों में है)।

नोट : सतिगुरु जी पउड़ी ३४ से ३७ तक मनुष्य की आत्मिक अवस्था के पाँच भाग बताते हैं: धर्म खण्ड, ज्ञान खण्ड, सरम (श्रम) खण्ड, कर्म खण्ड तथा सच्च खण्ड।

इन चार पउड़ियों में यह वर्णन है कि प्रभु की कृपा से मनुष्य साधारण अवस्था से ऊँचा उठकर कैसे प्रभु के साथ एक-रूप हो जाता है। पहले

मनुष्य दुनिया के विषय विकारों से हट कर आत्मा की ओर नज़र डालता है तथा यह सोचता है कि मेरे जीवन का क्या प्रयोजन है ? मैं संसार में क्यों आया हूँ ? मेरा क्या कर्तव्य है ? इस अवस्था में मनुष्य यह सोचता है कि इस धरती पर जीव धर्म कमाने (अर्जित करने) के लिये आये हैं। परमात्मा के दर पर जीवों के अपने अपने किये हुये कर्मों के अनुसार फैसला होता है। जिन गुरमुखों पर परमात्मा की कृपा होती है, वे उसकी हजूरी में सुशोभित होते हैं। यहाँ दुनिया में आदर या निरादर का कोई मूल्य नहीं है, वही सम्मानित हैं जो प्रभु के दर पर स्वीकृत हैं।

जैसे जैसे मनुष्य की चित्तवृत्ति ऐसे विचारों में जुड़ती है, वैसे वैसे उसके अन्दर के स्वार्थ की गाँठ खुलती जाती है। मनुष्य पहले माया में मस्त रहने के कारण सिर्फ अपने आप को या अपने परिवार को ही अपना मानता था तथा इन से हटकर अन्य किसी विचार पर अपने को केन्द्रित नहीं करता था। अब अपना 'धर्म' समझकर अपने ज्ञान को बढ़ाने का यत्न करता है। विद्या तथा विचार के बल से परमात्मा की असीम कुदरत का नक्शा आँखों के आगे लाता है। ज्ञान की आंधी आ जाती है जिस के सामने सब वहम भ्रम उड़ जाते हैं। जैसे जैसे अंदर विद्या द्वारा समझ आती है, वैसे वैसे वह आनन्द मिलता है, जो पहले माया के पदार्थों में नहीं मिलता था। आत्मिक मार्ग पर इस अवस्था का नाम 'ज्ञान खण्ड' है।

परन्तु इस राह पर पड़कर मनुष्य सिर्फ यहाँ ही बस नहीं कर देता। बाणी का विचार उसे उद्यम की ओर प्रेरित करता है। सिर्फ अक्ल से समझ लेना पर्याप्त नहीं है। मन का पहला स्वभाव, पहली बुरी आदतें केवल 'समझ' के साथ नहीं हट सकती। इस पहली घाड़त (बनावट) को, इन पहले संस्कारों को तोड़कर अन्दर नयी घाड़त घड़नी है, अन्दर ऊँची चित्तवृत्ति वाले नये संस्कार इक्टठे करने हैं। अमृत वेला (प्रातः काल) में जागना

आदि यह मेहनत करनी है। ज्ञान खण्ड में पहुँचा हुआ मनुष्य जैसे जैसे यह मेहनत करता है, जैसे जैसे गुरमति वाली नयी कमाई करता है, वैसे वैसे उसके मन को मानों सुन्दर रूप चढ़ता है, काया कंचन जैसी होने लगती है। ऊँची चित्तवृत्ति तथा ऊँची अक्ल हो जाती है, मन में जागृति आ जाती है। मनुष्य को देवताओं तथा सिद्धों वाली समझ आ जाती है। यह 'सरम खण्ड' है।

बस फिर क्या है! प्रभु की कृपा हो जाती है। अन्दर परमात्मा बल भर देता है, आत्मा विकारों में डोलती नहीं। बाहर भी सब जगह वही सृजनहार ही दिखायी देता है, मन सदा निरंकार की याद में मस्त रहता है। उनको फिर जन्म मरन का डर कैसा ? उनके मन में सदा प्रफुल्लता ही प्रफुल्लता रहती है। यह 'कर्म खण्ड' है।

परमात्मा का कृपापात्र बनकर आखिर पाँचवें खण्ड में जाकर निवास होता है, भाव परमात्मा के साथ एक रूप हो जाते हैं। उस परम ज्योति की हजूरी में पहुँच जाते हैं, जो सारे जीवों की सम्भाल कर रहा है, जिसका हुक्म हर जगह चल रहा है।

केते पवण पाणी वैसंतर, केते कान महेस ।।
केते बरमे घाड़ति घड़ीअहि, रूप रंग के वेस ।।

पद अर्थ : केते—कई, अनन्त। वैसंतर—अग्नियाँ। महेस—(कई) शिव। बरमे—कई ब्रह्मा। घाड़ति घड़ीअहि—घड़े जा रहे हैं, पैदा किये जा रहे हैं। के वेस—कई वेशों के (इस 'के' के अर्थ के लिये देखें पिछली पउड़ी नं. ३४)।

अर्थ : (परमात्मा की रचना में) कई प्रकार के पवन, पानी तथा अग्नियाँ हैं, कई कृष्ण हैं तथा कई शिव हैं। कई ब्रह्मा पैदा किये जा रहे हैं, जिन के कई रूप, रंग तथा कई वेश हैं।

केतीआ करम भूमी, मेर केते, केते धू उपदेस ।।
केते इंद चंद, सूर केते, केते मंडल देस ।।
केते सिध बुध नाथ केते, केते देवी वेस ।।

पद अर्थ : केतीआ—कई, अनन्त। करम भूमी—कर्म करने की भूमि। मेर—मेरु पर्वत। धू—ध्रुव भक्त। उपदेस—उन ध्रुव भक्तों के उपदेश। इंद—इन्द्र देवता। चंद—चन्द्रमा। सूर—सूर्य। मंडल देस—भवन-चक्र। बुध—बुद्ध अवतार। देवी वेस—देवियों के पहरावे। *नोट :* केते पुलिंग है जिसका प्रयोग 'वेस' शब्द के साथ किया गया है। इस लिये 'देवी वेस' का अर्थ करना है 'देवियों के पहरावे'।

अर्थ : (परमात्मा की कुदरत में) अनन्त धरतियाँ हैं, अनन्त मेरु पर्वत हैं, अनन्त ध्रुव भक्त तथा उनके उपदेश हैं। अनन्त इन्द्र देवता, अनन्त चन्द्रमा, अनन्त सूर्य तथा अनन्त भवन-चक्र हैं। अनन्त सिद्ध हैं, अनन्त बुद्ध अवतार हैं, अनन्त नाथ हैं तथा अनन्त देवियों के परिधान हैं।

केते देव दानव, मुनि केते, केते रतन समुंद ।।
केतीआ खाणी, केतीआ बाणी, केते पात नरिंद ।।
केतीआ सुरती, सेवक केते, नानक, अंतु न अंतु ।।३५।।

पद अर्थ : दानव—राक्षस, दैत्य। मुनि—मौनधारी ऋषि। रतन समुंद—रत्न तथा समुद्र। पात—बादशाह। नरिंद—राजे। सुरती—लिव। (*नोट :* इस सारी पउड़ी की ओर थोड़ा ध्यान देने से यह स्पष्ट पता चल जाता है कि 'केते' पुलिंग शब्दों के साथ प्रयोग किया गया है तथा 'केतीआ' स्त्रीलिंग शब्दों के साथ। इस लिये 'सुरती' स्त्रीलिंग है तथा 'सुरति' का बहु-वचन है)।

अर्थ : (परमात्मा की रचना में) अनन्त देवता तथा दैत्य हैं, अनन्त मुनि हैं, अनन्त प्रकार के रत्न तथा (रत्नों के) समुद्र हैं। (जीव रचना की) अनन्त खानें हैं, (जीवों की बोलियाँ भी चार नहीं) अनन्त बाणियाँ हैं, अनन्त बादशाह तथा राजे हैं, अनेक प्रकार के ध्यान हैं, (जो जीव मन द्वारा लगाते हैं) अनन्त सेवक हैं। हे नानक! कोई अन्त नहीं है।३५।

भाव : मानव जन्म के फ़र्ज़ (धर्म) की समझ आने से मनुष्य का मन बड़ा विशाल हो जाता है। पहले एक छोटे से परिवार के स्वार्थ में बंधा हुआ यह जीव बहुत संकीर्ण हृदय था। अब यह ज्ञान हो जाता है कि अनन्त प्रभु का पैदा किया हुआ यह अनन्त जगत एक बहुत बड़ा परिवार है, जिस में अनन्त कृष्ण, अनन्त विष्णु, अनन्त ब्रह्म, अनन्त धरतियाँ हैं। इस ज्ञान के प्रभाव से तंग-दिली हटकर इस के अन्दर जगत प्यार की लहर चलती है तथा खुशी ही खुशी बनी रहती है।

गिआन खंड महि, गिआनु परचंडु ।।
तिथै, नाद बिनोद कोड अनंदु ।।

पद अर्थ : महि—में। परचंडु—तेज़, प्रबल, बलवान। तिथै—उस ज्ञान खण्ड में। नाद—राग। बिनोद—तमाशे। कोड—कौतुक। अनंदु—आनन्द।

अर्थ : ज्ञान खण्ड में (भाव, मनुष्य की ज्ञान अवस्था में) ज्ञान ही बलवान होता है। इस अवस्था में (मानों) सब रागों, तमाशों तथा कौतुकों का आनन्द (स्वाद) आ जाता है।

सरम खंड की बाणी रूपु ।।
तिथै घाड़ति घड़ीऐ, बहुतु अनूपु ।।

पद अर्थ : सरम—श्रम, उद्यम, मेहनत। सरम खंड की—उद्यम-अवस्था की। बाणी—बनावट। रूपु—सुन्दरता। तिथै—इस मेहनत वाली अवस्था में। घाड़ति घड़ीऐ—घाड़त में घड़ा जाता है। बहुतु अनूपु—(मन) बहुत सुन्दर।

अर्थ : उद्यम-अवस्था की बनावट सुन्दरता है। (भाव, इस अवस्था में आकर मन दिन-ब-दिन सुन्दर बनना शुरू हो जाता है। इस अवस्था में (नई) घाड़त के कारण मन बहुत सुन्दर घड़ा जाता है।

ता कीआ गला, कथीआ न जाहि ॥
जे को कहै पिछै पछुताइ ॥

पद अर्थ : ता कीआ—उस अवस्था की। कथीआ न जाहि—कही नहीं जा सकतीं। को—कोई मनुष्य। कहै—कहे, ब्यान करे। पिछै—बताने के बाद। पछुताइ—पछताता है (क्योंकि वह ब्यान करने में असमर्थ रहता है)।

अर्थ : उस अवस्था की बातें ब्यान नहीं की जा सकतीं। यदि कोई मनुष्य ब्यान करता है तो पीछे पछताता है (क्योंकि वह ब्यान करने में असमर्थ रहता है)।

तिथै घड़ीऐ, सुरति मति मनि बुधि ॥
तिथै घड़ीऐ, सुरा सिधा की सुधि ॥३६॥

पद अर्थ : तिथै—उस श्रम खण्ड में। घड़ीऐ—घड़ी जाती है। मनि बुधि—मन में जागृति। सुरा की सुधि—देवताओं की सूझ। सिधा की सुधि—सिद्धों वाली अक्ल।

अर्थ : उस मेहनत वाली अवस्था में मनुष्य की सुरति तथा मति घड़ी जाती है, (भाव, चित्तवृत्ति (सुरति) तथा मति ऊँची हो जाती है)

तथा मन में जागृति आ जाती है। सरम (श्रम) खण्ड में देवताओं तथा सिद्धों वाली अक्ल (मनुष्य के अन्दर) बन जाती है।३६।

भाव : ज्ञान अवस्था की बरकत से जैसे जैसे सारा जगत एक सांझा परिवार दिखता है, जीव प्राणियों की सेवा की मेहनत (श्रम) सिर पर उठाता है, मन की पहली तंग-दिली हट कर विशालता तथा उदारता की घाड़त में मन नये सिरे से सुन्दर घड़ा जाता है, मन में एक नयी जागृति आती है, चित्तवृत्ति ऊँची होने लगती है।

करम खंड की बाणी जोरु ॥
तिथै, होरु न कोई होरु ॥
तिथै, जोध महाबल सूर ॥
तिन महि रामु रहिआ भरपूर ॥

पद अर्थ : करम—कृपा। बाणी—बनावट। जोरु—बल, ताकत। होरु—परमात्मा के बिना कोई दूसरा। होरु न कोई होरु—परमात्मा के बिना दूसरा बिल्कुल कोई नहीं है। जोध—योद्धा। महाबल—बहुत बल वाले। सूर—शूरवीर। तिन महि—उनमें। रामु—अकाल पुरख, परमात्मा। रहिआ भरपूर—पूरा भरा हुआ है, रोम रोम में बस रहा है।

अर्थ : कृपा वाली अवस्था की बनावट बल है, (भाव, जब मनुष्य पर परमात्मा की कृपा-दृष्टि होती है तब उसके अन्दर ऐसा बल पैदा होता है कि विष्य विकार उसे प्रभावित नहीं कर सकते।) क्योंकि उस अवस्था में (मनुष्य के अन्दर) परमात्मा के बिना कोई दूसरा बिल्कुल नहीं रहता। उस अवस्था में (जो मनुष्य हैं वे) यौद्धा, महाबली तथा शूरवीर हैं, उनके रोम रोम में परमात्मा बस रहा है।

तिथै, सीतो सीता, महिमा माहि ।।
ता के रूप, न कथने जाहि ।।
ना ओहि मरहि न ठागे जाहि ।।
जिन कै, रामु वसै, मन माहि ।।

पद अर्थ : सीतो सीता—पूर्ण रूप से सिला हुआ है, पिरोया हुआ है। (*नोट :* एक ही शब्द 'सीता' दूसरी बार आया है। इस तरह इस ख्याल पर विशेष बल दिया गया है। इस तरह के वाक्यांश और भी हैं, जैसे :

(१) नानक अंतु न अंतु ।। *(पउड़ी ३५)*

(२) तिथै होरु न कोई होरु ।। *(पउड़ी ३७)*

(३) जे को कथै त अंत न अंत ।। *(पउड़ी ३७)*

महिमा—(परमात्मा की) सिफति-सालाह, प्रशंसा, बड़ाई। माहि—में। ता के—उन मनुष्यों के। रूप—सुन्दर स्वरूप। न कथने जाहि—कहे नहीं जा सकते। ओहि—वे मनुष्य। ना मरहि—आत्मिक मौत नहीं मरते। न ठागे जाहि—ठगे नहीं जा सकते (माया उन्हें ठग नहीं सकती)।

अर्थ : उस (कृपा की) अवस्था में पहुँचे हुये मनुष्यों का मन केवल परमात्मा की प्रशंसा (गुण-कीर्तन) में लगा रहता है। (उनकी काया ऐसी कंचन जैसी हो जाती है कि) उनके सुन्दर रूप का वर्णन नहीं किया जा सकता (उनके मुख पर नूर ही नूर चमकता है)। (इस अवस्था में) जिन के मन में परमात्मा बसता है, वे आत्मिक मौत नहीं मरते तथा माया उनको ठग नहीं सकती।

तिथै भगत वसहि, के लोअ ।।
करहि अनंदु, सचा मनि सोइ ।।

पद अर्थ : वसहि—बसते हैं। लोअ—लोक, भवन। के लोअ—कई भवनों के (देखें पउड़ी ३४ में 'के रंग')। करहि अनंदु—आनन्द करते हैं सदा प्रफुल्लत रहते हैं। सचा सोइ—वह सच्चा परमात्मा। मनि—(उनके) मन में।

अर्थ : उस अवस्था में कई भवनों के भक्त जन बसते हैं, जो सदा प्रफुल्लत रहते हैं, (क्योंकि) वह सच्चा परमात्मा उनके मन में (मौजूद है)।

सचि खंडि वसै निरंकारु ॥
करि करि वेखै, नदरि निहाल ॥

पद अर्थ : सचि—सत्य में। सचि खंडि—सच्च (सत्य) खण्ड में। करि करि—सृष्टि रचकर। नदरि निहाल—निहाल करने वाली दृष्टि से। वेखै—देखता है, सम्भाल करता है।

अर्थ : सच्च खण्ड में (भाव, परमात्मा के साथ एक रूप होने वाली अवस्था में) मनुष्य के अन्दर (वह परमात्मा) आप ही बसता है, जो सृष्टि को रचकर कृपा की दृष्टि से उसकी सम्भाल करता है।

तिथै, खंड मंडल वरभंड ॥
जे को कथै, त अंत न अंत ॥
तिथै, लोअ लोअ आकार ॥
जिव जिव हुकमु तिवै तिव कार ॥
वेखै विगसै, करि वीचारु ॥
नानक, कथना करड़ा सारु ॥३७॥

पद अर्थ : वरभंड—ब्रह्मण्ड। को—कोई मनुष्य। कथै—बताने लगे, ब्यान करे। त अंत न अंत—इन मंडलों तथा ब्रह्मण्डों का अन्त नहीं पाया जा

सकता। लोअ लोअ—कई लोक, कई भवन। विगसै—ख़ुश होता है। करि वीचारु—विचार कर के। कथना—कथन करना, ब्यान करना। सारु—इस शब्द को समझने के लिये उदाहरण मात्र निम्नलिखित प्रमाण दिये जाते हैं :

(१) **पहिरा अगनि हिवै घरु बाधा भोजनु सारु कराई ॥१॥**

(पउड़ी १९, माझ की वार, पृष्ठ १४७)

(२) **तूं सागरो रतनागरो हउ सार न जाणा तेरी राम ॥**

(सूही छंत महला ५, पृष्ठ ७७९)

(३) **लाहा भगति सु सारु गुरमुखि पाईऐ ॥** *(वार माझ, पउड़ी १५, पृष्ठ १४५)*

(४) **धनु धनु वडभागी नानका, जिन गुरमति हरि रसु सारि ॥१॥**

(कानड़े की वार, पृष्ठ १३१२)

इन उपर्युक्त प्रमाणों का परिणाम यह है :

(१) 'सारु' संज्ञा है, पुलिंग तथा स्त्रीलिंग।
'सारु' पुलिंग का अर्थ है 'लोहा' या 'तत्व'।
'सार' स्त्रीलिंग का अर्थ है 'खबर'।
जैसे प्रमाण नं (१) तथा (२)।

(२) 'सारु' विशेषण है, जैसे प्रमाण न. (३) में है, इसका अर्थ है 'श्रेष्ठ'।

(३) 'सारि' क्रिया है, जिसका अर्थ है 'खबर लेनी', 'याद करना', जैसे प्रमाण न. (४)।

सारु—लोहा। करड़ा सारु—कठोर, जैसे लोहा है।

अर्थ : उस अवस्था में (भाव, परमात्मा के साथ एक रूप हो जाने वाली अवस्था में) मनुष्य को अनन्त खण्ड, अनन्त मंडल तथा असीम ब्रह्माण्ड दिखते हैं। (इतने अनन्त कि) यदि कोई मनुष्य उनका कथन करने लगे तो उनका अन्त नहीं होता। उस अवस्था में अनन्त भवन तथा आकार दिखते हैं, (जिन सब में) उसी तरह व्यवहार चल रहा है जैसे परमात्मा का हुक्म होता है, (भाव,

इस अवस्था में पहुँच कर मनुष्य को प्रत्येक स्थान पर परमात्मा की रज़ा काम कर रही दिखायी देती है)। (उस को प्रत्यक्ष दिखायी देता है कि) परमात्मा विचार करके (सब जीवों की) संभाल करता है तथा खुश होता है। हे नानक! इस अवस्था का वर्णन करना बहुत कठिन है। (भाव, यह अवस्था ब्यान नहीं हो सकती, अनुभव ही की जा सकती है) ।३७।

भाव : परमात्मा के साथ एक रूप हो चुकी आत्मिक अवस्था में पहुँचे हुये जीव पर परमात्मा की कृपा का दरवाज़ा खुलता है, उसको सब अपने ही अपने दिखायी देते हैं, हर तरफ प्रभु ही दिखायी देता है। ऐसे मनुष्य का ध्यान सदा प्रभु की सिफति-सालाह (गुण-कीर्तन) में जुड़ा रहता है। अब माया उसे ठग नहीं सकती, आत्मा बलवान हो जाती है, प्रभु से दूरी नहीं हो सकती। अब उसको प्रत्यक्ष प्रतीत होता है कि अनन्त कुदरत की रचना कर के प्रभु सबको अपनी रज़ा में चला रहा है, तथा सब पर कृपा-दृष्टि कर रहा है।

जतु पाहारा, धीरजु सुनिआरु ॥
अहरणि मति, वेदु हथीआरु ॥

पद अर्थ : जतु—अपनी शारीरिक इन्द्रियों को विकारों की ओर से नियन्त्रित रखना। पाहारा—सुनार की दुकान। सुनिआरु—सुनार। मति—बुद्धि। वेदु—ज्ञान। हथीआरु—हथौड़ा।

नोट : शब्द 'वेद' निम्नलिखित पंक्तियों में जपु जी में प्रयुक्त हुआ है :

(१) **गुरमुखि नादं, गुरमुखि वेदं, गुरमुखि रहिआ समाई ॥** *(पउड़ी ५)*

(२) **सुणिऐ सासत सिम्रिति वेद ॥** *(पउड़ी ९)*

(३) **असंख गरंथ मुखि वेद पाठ ॥** *(पउड़ी १७)*

(४) **ओड़क ओड़क भालि थके, वेद कहनि इक वात ॥** *(पउड़ी २२)*

(५) **आखहि वेद पाठ पुराण ॥** *(पउड़ी २६)*

(६) **गावनि पंडित पढ़नि रखीसर, जुगु जुगु वेदा नाले ॥** *(पउड़ी २७)*

नंबर १ वाली पंक्ति के बिना बाकी सब पंक्तियों में शब्द 'वेद' बहु-वचन है तथा हिन्दु मत की धर्म पुस्तकों, वेदों की ओर संकेत किया गया है। परन्तु पंक्ति नं १ में 'वेद' एक-वचन है तथा अर्थ है 'ज्ञान'। इसी तरह 'वेदु हथीआरु' में 'वेदु' एक-वचन है तथा अर्थ है 'ज्ञान'। पर यह ज़रूरी नहीं कि जहाँ जहाँ शब्द 'वेदु' एक-वचन में आया है, वहाँ इसका अर्थ 'ज्ञान' ही है। कई शब्द ऐसे हैं, जहाँ 'वेदु' एक-वचन होते हुये भी हिन्दु मत की धर्म पुस्तक वेद ही है। पर प्रकरण की विचार भी ज़रूरी है।

इस पउड़ी में 'जतु', 'धीरजु' 'मति' 'भउ', 'तपताउ' तथा 'भाउ' भाव-वाचक शब्द आये हैं, इस लिये शब्द 'वेदु' भी उनके साथ मिलता ('ज्ञान' अर्थ) भाव-वाचक ही हो सकता है।

अर्थ : (यदि) जत-रूप दुकान हो, धीरज सुनार बने, मनुष्य की अपनी मति अहरण हो, (उस मति-अहरण पर) ज्ञान रूपी हथौड़ा पड़े।

भउ खला, अगनि तपताउ ॥
भांडा भाउ, अंम्रितु तितु ढालि ॥
घड़ीऐ सबदु, सची टकसाल ॥

भउ—'भउ' शब्द को यहाँ ध्यान से विचार करने की आवश्यकता है। ('जपु जी' साहिब में यह शब्द दो बार आया है, मूलमंत्र में 'निर-भउ' तथा पउड़ी न. ३८ में 'भउ')।

संस्कृत का शब्द 'भय' है, पर सतिगुरु जी इसको 'भउ' लिखते हैं। आर्य समाज जैसी पढ़ी लिखी श्रेणी के प्रधान स्वामी दयानन्द इस 'भउ' शब्द को सामने रखकर अपनी विद्या के आधार पर गुरु नानक साहिब को

अनपढ़ लिख गये हैं। संस्कृत विद्या के परिचय के आधार पर वे लिखते हैं कि गुरु नानक साहिब संस्कृत जानते होते तो, 'भय' को 'भउ' न लिखते।

इस पुस्तक का इस विष्य के साथ कोई सम्बन्ध नहीं कि गुरु नानक साहिब की संस्कृत विद्या का सबूत दिया जाये, क्योंकि इस बात की तो आवश्यकता ही नहीं थी कि गुरु साहिब अपने समय के जीवों को संस्कृत बोली में उपदेश देते या संस्कृत की धार्मिक पुस्तकों के उपदेश को दृढ़ करवाते। परमात्मा से वह जो सन्देश लेकर आये थे, वह उन्होंने उस बोली में सुनाना था तथा सुनाया, जो उस समय इस देश के लोगों में प्रचलित थी।

बोली सदा बदलती आयी है। वेदों की संस्कृत बदल कर और हो गई। संस्कृत बदल कर प्राकृत बन गयी। प्राकृत से पंजाबी बनती गई। गुरु नानक साहिब के समय की पंजाबी भी अब नहीं रही, और हो गई है। इस लिये स्वामी दयानन्द जी गुरु नानक साहिब की शान में दुःखदायी शब्द लिखने के स्थान पर, यदि यह देखते कि देश की बोली उस समय कौन-सी थी, तो यह भूल न करते।

संस्कृत, प्राकृत तथा पंजाबी के शब्दों की खोज के आधार पर अनेकों शब्द पेश किये जा सकते हैं, जहाँ यह प्रत्यक्ष सिद्ध हो जाता है कि कैसे संस्कृत शब्द बदल बदल कर पंजाबी में नया रूप धारण करते गये।

नोट : इस विचार को विस्तार से समझने के लिये पढ़ें मेरी पुस्तक *गुरबाणी ते इतिहास बारे*।

पद अर्थ : भउ—परमात्मा का डर। खला—धौंकनी (जिससे सुनार फूंक मार कर आग जलाते हैं)। तपताउ—तपों का तपना, कमाई करनी। भांडा—कुठाली। भाउ—प्रेम। अंम्रितु—परमात्मा का अमर करने वाला नाम। तितु—उस बर्तन में। घड़ीऐ—घड़ा जाता है। घड़ीऐ सबदु—शब्द घड़ा जाता है। सची टकसाल—इस ऊपर बतायी हुयी सच्ची टकसाल में।

नोट : जत, धीरज, मति, ज्ञान, भउ (डर), तपताउ तथा भाउ (प्रेम) की मिली जुली सच्ची टकसाल में गुरु शब्द की कृपा घड़ी जाती है, भाव, जिस ऊँची आत्मिक अवस्था में कोई शब्द सतिगुरु जी द्वारा उच्चारण किया गया है, सिक्ख को भी वह शब्द उसी अवस्था में ले जाता है, (कूड़ की दीवार तोड़ देता है) यदि सत, धीरज आदि वाला जीवन बन जाये। टकसाल—वह स्थान जहाँ सरकारी रुपये, सिक्के आदि बनाए जाते हैं।

अर्थ : (यदि) अकाल पुरख (परमात्मा) का डर धौंकनी (हो), घाल कमाई आग (हो), प्रेम कुठाली हो, तो (हे भाई !) उस (कुठाली) में परमात्मा का अमृत-नाम गलाओ (क्योंकि इस जैसी ही) सच्ची टकसाल में (गुरु का) शब्द घड़ा जा सकता है।

जिन कउ नदरि करमु तिन कार ॥

नानक, नदरी नदरि निहाल ॥३८॥

पद अर्थ : जिन कउ—जिन मनुष्यों पर। नदरि—कृपा-दृष्टि। करमु—कृपा। तिन कार—उन मनुष्यों की यह कार है, (भाव, वही मनुष्य यह ऊपर बतायी गयी टकसाल त्यार करके शब्द की घाड़त घड़ते हैं)। निहाल—प्रसन्न, खुश, आनन्द। नदरी—कृपा-दृष्टि करने वाला प्रभु।

अर्थ : यह कार उन मनुष्यों की है, जिन पर कृपा-दृष्टि होती है, जिन पर कृपा (बखशिश) होती है। हे नानक! वे मनुष्य परमात्मा की कृपा-दृष्टि से निहाल हो जाते हैं।३८।

भाव : परन्तु यह ऊँची आत्मिक अवस्था तब ही बन सकती है, यदि आचरण पवित्र हो, दूसरों की ज्यादती सहने का हौसला हो, ऊँची तथा विशाल समझ हो, प्रभु का डर हृदय में टिका रहे, सेवा की मेहनत की जाये, रचयता तथा रचना का प्यार दिल में हो। यह जत, धीरज, मति,

ज्ञान, भय, घाल (मेहनत) तथा प्रेम के गुण एक सच्ची टकसाल है, जिस में गुरु-शब्द की मोहर घड़ी जाती है, (भाव, जिस ऊँची आत्मिक अवस्था में किसी शब्द का सतिगुरु जी ने उच्चारण किया है, ऊपर बताये गये जीवन वाले सिक्ख को भी वह शब्द उसी आत्मिक अवस्था में पहुँचा देता है)।

नोट : बाणी 'जपु' की कुल ३८ पउड़ियाँ हैं, जो यहाँ समाप्त हुयी हैं। पहले श्लोक में मंगलाचरण के रूप में सतिगुरु जी ने अपने इष्ट प्रभु का स्वरूप ब्यान किया था। अगले अन्तिम श्लोक में सारी बाणी 'जपु' का सिद्धान्त बताया है।

सलोकु ॥

पवणु गुरू, पाणी पिता, माता धरति महतु ॥
दिवसु राति दुइ दाई दाइआ, खेलै सगल जगतु ॥

पद अर्थ : पवणु—हवा, श्वास, प्रांण। महतु—बड़ी। दिवसु—दिन। दुइ—दोनों। दिवसु दाइआ—दिन खेल खिलाने वाला है। राति दाई—रात दाई (खेल खिलाने वाली) है। सगल—सारा।

अर्थ : प्राण (शरीरों के लिये ऐसे हैं जैसे) गुरु (जीवों की आत्मा के लिये) है, पानी (सब जीवों का) पिता है तथा धरती (सब की) बड़ी माँ है। दिन खिलाने वाला तथा रात खिलाने वाली है, सारा संसार खेल रहा है, (भाव, संसार के सारे जीव रात को सोने तथा दिन में कार्य-व्यवहार में लगे हुये हैं)।

चंगिआईआ बुरिआईआ, वाचै धरमु हदूरि ॥
करमी आपो आपणी, के नेड़ै के दूरि ॥

पद अर्थ : वाचै—परखता है, (लिखे हुये) पढ़ता है। हदूरि—परमात्मा की हजूरी में, अकाल पुरख के दर पर। करमी—कर्मों के अनुसार। के—कई जीव। नेड़ै—परमात्मा के नज़दीक।

अर्थ : धर्मराज परमात्मा की हजूरी में (जीवों के किये हुये) अच्छे तथा बुरे कर्मों के बारे में विचार करता है। अपने अपने (इन किये हुये) कर्मों के अनुसार कई जीव परमात्मा के नज़दीक हो जाते हैं तथा कई परमात्मा से दूर हो जाते हैं।

जिनी नामु धिआइआ, गए मसकति घालि ।।
नानक ते मुख उजले, केती छुटी नालि ।।१।।

पद अर्थ : जिनी—जिन मनुष्यों ने। ते—वे मनुष्य। धिआइआ—चिन्तन किया है। मसकति—मेहनत, घाल कमाई। घालि—सफल कर के। मुख उजले—उज्जवल मुख वाले। केती—कई जीव। छुटी—मुक्त हो गयी, माया के बन्धनों से रहित हो गयी। नालि—उन (गुरमुखों) की संगति में।

अर्थ : हे नानक! जिन मनुष्यों ने परमात्मा के नाम का चिन्तन किया है, उन्होंने अपनी मेहनत सफल कर ली है, (परमात्मा के दर पर) वे उज्जवल मुख वाले हैं तथा (अन्य भी) कई जीव उनकी संगति में (रहकर) (असत्य की दीवार तोड़कर माया के बंधनों से) आज़ाद हो गये हैं।१।

भाव : यह जगत एक रंगभूमि है, जिस में जीव खिलाड़ी अपना अपना खेल खेल रहे हैं। प्रत्येक जीव के खेल की पड़ताल (जाँच) बड़े ध्यान से हो रही है। जो केवल माया का खेल ही खेलते रहे, वे प्रभु से दूर होते गये। परन्तु जिन्होंने सिमरन किया, वे अपनी मेहनत सफल कर गये तथा और कई जीवों को इस सुमार्ग पर चलने की प्रेरणा देते हुये स्वयं भी प्रभु की हजूरी में सुशोभित हुये।१।

१ओं सतिगुरप्रसादि ॥

वाहिगुरु जी की फ़तह ॥

जापु

श्री मुखवाक पातिसाही १० ॥

अर्थ : पातिशाही दसवीं जी के पवित्र मुख का वाक्य।

नोट : जिस प्रकार श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी में महला १, महला २, महला ३ आदि पदों का प्रयोग किया गया है, उसी प्रकार श्री गुरु गोबिन्द सिंघ जी की बाणी से पहले पद 'पातिसाही १०' का प्रयोग किया गया है। जिस प्रकार 'महला ३' का भाव यह है कि इस के आगे जो बाणी लिखी गई है, वह गुरु अमरदास जी द्वारा उच्चारण की गयी है, उसी प्रकार 'पातिसाही १०' का भाव भी यही है कि इससे आगे जो बाणी दर्ज की गई है, वह श्री गुरु गोबिन्द सिंघ जी द्वारा उच्चरित है। महला १, महला २, महला ३, महला ४, महला ५ पदों में अंक १, २, ३, ४, ५ का उच्चारण एक, दो, तीन, चार, पाँच, करना अशुद्ध है (देखें, *गुरबाणी व्याकरण*); शुद्ध पाठ पहला, दूसरा, तीसरा, चौथा, पाँचवां है। 'महला पहला' उच्चारण करके यह प्रक्ट करना है कि जो बाणी इस के साथ पढ़ने लगे हैं, वह 'महले पहले' की है, इत्यादि। इसी तरह 'पातिसाही १०' में अंक '१०' का पाठ 'दस' अशुद्ध है, 'दसवीं' पाठ ठीक है। इस का भाव यह है कि जो बाणी अब पढ़नी प्रारम्भ कर रहे हैं, वह 'दसवें' पातिशाह जी की है।

'अरदास' के पहले शब्दों की तरफ़ भी प्रत्येक सिक्ख का विशेष ध्यान देना ज़रूरी है, वे शब्द इस प्रकार हैं :

१ओं वाहिगुरु जी की फ़तह॥

श्री भगउती जी सहाए॥ पातिसाही १०॥

यहां शब्द 'पातिसाही १०' का भाव यह है कि अरदास 'पृथ्म भगउती' से लेकर 'सभ थाईं होइ सहाइ' तक श्री गुरु गोबिन्द सिंघ जी द्वारा उच्चारण की गई है। यहाँ अंक १० का उच्चारण 'दस' करना अशुद्ध है, शुद्ध पाठ 'दसवीं' है। *आसा की वार सटीक* में कई स्थानों पर प्रमाण देकर बताया गया है कि बाणी की किसी मात्रा का, या किसी अंक का भी, अशुद्ध पाठ अनेक बार 'बाणी' के वास्तविक भाव से बहुत दूर ले जाता है। इस लापरवाही का जो परिणाम श्री कलगीधर जी की बाणी के सम्बन्ध में निकला है, वह विशेष तौर पर शोकमय है। अंक १० का उच्चारण 'दस' करने के कारण साधारणत्या यह धारणा प्रचलित हो गई है कि यह अरदास दसों पातशाहियों की है। जो सज्जन देहधारी गुरु में श्रद्धा रखते हैं, उन्होंने अंक १० के स्थान पर बारह, चौदह, आदि का प्रयोग करना शुरु कर दिया है। वे सोचते हैं कि इस तरह वे अपने बारह या चौदह गुरुओं की अरदास करते हैं। वास्तव में प्रत्येक सिक्ख अपनी-अपनी अरदास करता है और अकाल पुरख के आगे करता है; न कोई दस गुरुओं की अरदास करता है और न कोई अधिक गुरुओं की। हां, अरदास वाली बाणी श्री गुरु गोबिन्द सिंघ जी द्वारा उच्चारण की गई है, इस लिये इस के प्रारम्भ में पढ़ना है, "श्री मुखवाक पातिसाही दसवीं॥"

छपै छंद॥ त्व प्रसादि॥

अर्थ : तेरी कृपा से (इस बाणी का उच्चारण करता हूँ)।

नोट : संस्कृत शब्द 'तव' के प्राकृत रूप 'त्व' 'तुअ' तथा 'तउ' हैं, इस का अर्थ है 'तेरा'।

चक्र चिहन अरु बरन, जाति अरु पाति नहिन जिह ॥
रूप रंग अरु रेख, भेख कोऊ कहि न सकत किह ॥
अचल मूरति अनभउ प्रकासु अमितोजु कहिजै ॥
कोटि इंद्र इंद्रान साहु साहान गणिजै ॥
त्रिभवण महीपु सुर नर असुर नेति नेति बन त्रिण कहत ॥
तव सरब नामु कथै कवनु करम नाम बरनत सुमति ॥१॥

पद अर्थ : चक्र—गोल रेखा (पैरों की तलियों में अथवा हाथों की उंगलियों में जो गोल लकीरें होती हैं, उनको चक्र कहा जाता है)। चिहन—निशान। बरन—रंग। पाति—कुल। नहिन—नहीं। जिह—जिस (प्रभु) का। भेख—लिबास। किह भेख—कौन-सा लिबास ? कोऊ कहि न सकत—कोई कह नहीं सकता। अचल—न हिलने वाली, अटल। अनभउ (Direct Perception or Cognition, knowledge derived from personal observation or experiment) अपने आप से पैदा हुआ ज्ञान। अनभउ प्रकासु—जिस को अपने प्रकाश का ज्ञान अपने आप से ही हुआ है। अमितोज—अमित+ओज। अमित—जिसे मापा न जा सके। ओज—ताकत, बल। अमितोजु—जिसका बल मापा न जा सके। कहिजै—कहते हैं। कोटि—करोड़ों। इंद्रान इंद्र—इन्द्रों का इन्द्र। इंद्र—१. देवताओं का राजा, २. राजा। गणिजै—माना जाता है। त्रिभवण—आकाश, पाताल, मात लोक। महीपु—मही+पा, पृथ्वी का रक्षक, राजा। सुर—देवते। असुर—दैत्य। नर—मनुष्य। नेति—न इति, नहीं है यह, भाव इस के समान और

कोई नहीं। बन—जंगल। त्रिण—घास। बन त्रिण—बन का घास, भाव सारी बनस्पति। तव—तेरे। कथै—कहे। सरब—सारा (वजूद, अस्तित्व), सारी (हस्ती)। सरब नामु—वह नाम जो (प्रभु की) सारी (हस्ती) को व्यक्त कर सके। करम—काम। करम नाम—वे नाम जो उसके कार्य देखकर बनाये गये हैं। बरनत—वर्णन करते हैं, कहते हैं। सुमति—अच्छी बुद्धि वाले मनुष्य, अक्लमन्द मनुष्य। कथै कवनु—कौन बताए, भाव कोई नहीं बता सकता।

अर्थ : (हे प्रभु!) (तू ऐसा है कि) जिसके न कोई लक्षण (दिखते) हैं, न कोई रंग है, न जाति है और न कोई कुल है। कोई मनुष्य नहीं कह सकता कि तेरा कैसा रूप है, कैसा रंग है, कैसी रूपरेखा (चित्र) है और कैसा तेरा पहरावा है।

तेरा अस्तित्व सदा स्थिर रहने वाला है। तेरा नूर (प्रकाश) तेरे अपने अस्तित्व से है। तू अपरिमित बल वाला कहा जाता है। (भाव, सब जीव यही कहते हैं कि तेरे बल का अनुमान नहीं लगाया जा सकता)।

तू करोड़ों राजाओं का राजा और इन्द्रों का इन्द्र गिना जाता है।

तू तीनों भवनों (लोकों) का स्वामी है; देवता, मनुष्य, दैत्य (राक्षस) (जीव जन्तु का तो क्या कहना) सारी बनस्पति द्वारा यही कहा जाता है कि तू यह नहीं है, तू यह नहीं है (भाव, दुनिया में कोई भी तेरे समान नहीं है)।

(हे प्रभु!) कोई इन्सान तेरा ऐसा नाम नहीं बता सकता जो तेरे सम्पूर्ण अस्तित्व को व्यक्त कर सके, अक्लमन्द (ज्ञानवान) इन्सानों ने तेरे वही नाम बताये हैं जो उन्होंने तेरे कर्मों को देखकर बनाये हैं।१।

भुयंग प्रयात छंद ॥

नमसत्वं अकाले ॥ नमसत्वं क्रिपाले ॥
नमसतं अरूपे ॥ नमसतं अनूपे ॥२॥

पद अर्थ : नमसत्वं—नमस+त्वं। नमस—नमस्कार, प्रणाम। त्वं—(त्वां) तुझे। अकाल—अ+काल, काल-रहित। काल—मौत। क्रिपाल—क्रिपा+आलय, दया का घर। अरूप—अ+रूप, रूप-रहित। अनूप—अन+ऊप, उपमा रहित। उपमा—बराबरी। अनूप—जिस के समान और कोई नहीं है। नमसतं—नमस+तं। तं—त्वं, त्वां, तुझे।

अर्थ : (हे प्रभु!) तुझे हमारी नमस्कार है; तू मौत रहित है, दया का घर है, तेरा कोई एक रूप नहीं; तेरे समान कोई और नहीं है।२।

नमसतं अभेखे ॥ नमसतं अलेखे ॥
नमसतं अकाए ॥ नमसतं अजाए ॥३॥

पद अर्थ : अभेखे—अभेख (भेख रहित) को। अभेख—अ+भेख, जिस का एक पहरावा नहीं। अलेख—अ+लेख, जिस का चित्र न बनाया जा सके। लेख—चित्र, तस्वीर। अकाए—अ+काए। काए—काया, शरीर। अकाए—हे काया-रहित प्रभु! अजाए—अ+जाए, हे जाया-रहित प्रभु! जाए—जाया, स्त्री। अजाइआ—अ+जाइआ, जो स्त्री से पैदा न हुआ हो।

अर्थ : (हे प्रभु!) तुझे नमस्कार है; तेरा कोई एक पहरावा नहीं, तेरी कोई तस्वीर नहीं बन सकती, (सांसारिक जीवों के शरीरों के समान) तेरा कोई शरीर नहीं है, तथा (जीवों की तरह) तू स्त्री से पैदा नहीं हुआ।३।

नमसतं अगंजे ॥ नमसतं अभंजे ॥
नमसतं अनामे ॥ नमसतं अठामे ॥४॥

पद अर्थ : अगंज—अ+गंज। गंजन—(Surpassing, excelling, defeating, conquering) जीतना, किसी से बढ़ जाना। अगंज—अविजित। अभंज—अ+भंज। भंज—(to break, destroy) तोड़ना, नष्ट करना। अभंज—जो तोड़ा न जा सके। अनाम—अ+नाम, नाम-रहित, जिसका कोई एक नाम नहीं। अठाम—अ+ठाम। ठाम—स्थान। अठाम—जिसका कोई एक स्थान नहीं।

अर्थ : (हे प्रभु!) तुझे नमस्कार है; तुझ से (किसी बात में) कोई आगे बढ़ नहीं सकता, तुझे कोई तोड़ नहीं सकता, तेरा कोई एक नाम नहीं है, तथा तेरा कोई एक स्थान नहीं है।४।

नमसतं अकरमं ॥ नमसतं अधरमं ॥
नमसतं अनामं ॥ नमसतं अधामं ॥५॥

पद अर्थ : नमसतं—नमस+तं। तं—त्वं, त्वां, तुझे, तुम को। अकरमं—अ+करम। करम—धार्मिक रीतियाँ। अकरम—जिस के लिये कोई धार्मिक रीतियाँ करने की आवश्यकता नहीं। अधरम—अ+धरम। धरम—(The customary observances of a caste) वर्ण आश्रमों की अपनी अपनी रीतियाँ करने का कर्त्तव्य। अधरम—जिस के लिये वर्ण आश्रमों की रीतियाँ करने की आवश्यकता न हो। अनांम—अ+नाम, जिस का कोई एक नाम नहीं है। अधाम—अ+धाम (धाम—घर) जिस का कोई एक घर नहीं है।

अर्थ : (हे प्रभु!) तुझे नमस्कार है; तेरे लिये किसी धार्मिक रस्म को करने की आवश्यकता नहीं, वर्ण आश्रमों की (रीतियां) रस्में करने की आवश्यकता नहीं, तेरा कोई एक नाम नहीं है, तथा तेरा कोई एक घर नहीं है।५।

नमसतं अजीते ।। नमसतं अभीते ।।
नमसतं अबाहे ।। नमसतं अढाहे ।।६।।

पद अर्थ : अजीत—अ+जीत, अविजित, जो जीता न जा सके। अभीत—अ+भीत। भीत—डरा हुआ। भी—डरना। अबाह—अवाह, अ+वाह। वाह—(to carry, lead) ले जाना, नेतृत्व करना। अबाह—जिस को हिलाया न जा सके। अढाह—अ+ढाह, जिसे गिराया न जा सके।

अर्थ : (हे प्रभु!) तुमको नमस्कार है; तुझे न कोई जीत सकता है, न डरा सकता है, तुझे न कोई हिला सकता है, न गिरा सकता है।६।

नमसतं अनीले ।। नमसतं अनादे ।।
नमसतं अछेदे ।। नमसतं अगाधे ।।७।।

पद अर्थ : अनील—(सं: अनिल) हवा। अनादे—हे अनादि! अनादि—अन+आदि, जिस का प्रारम्भ न हो। अछेद—अ+छेद। छेद—टुकड़े टुकड़े कर देना। अछेद—वह जिसके टुकड़े न किये जा सकें, (inseparable, undivided, constant) जिस के स्वरूप को अलग अलग न किया जा सके, जो हर स्थान पर एक-रस है। अगाध—अ+गाध, जिसका गहन न किया जा सके, जिसकी गहराई न खोजी जा सके। गाध—गहन।

अर्थ : (हे प्रभु!) तुझे नमस्कार है; तू सभ चीजों के प्राणों का आश्रय है। तेरा आरम्भ कब का है ? यह तथ्य खोजा नहीं जा सकता। तेरे अस्तित्व के टुकड़े टुकड़े नहीं हो सकते, (भाव, तू हर स्थान पर एक-रस मौजूद है)। तू (एक गहरा समुद्र है) जिसकी गहराई खोजी नहीं जा सकती।७।

नमसतं अगंजे ॥ नमसतं अभंजे ॥
नमसतं उदारे ॥ नमसतं अपारे ॥८॥

पद अर्थ : अगंज—अविजित। अभंज—जो तोड़ा न जा सके। उदार—खुले दिल वाला। अपार—अ+पार, अनन्त।

अर्थ : (हे प्रभु!) तुम्हें नमस्कार है; तुम से (किसी बात में) कोई आगे नहीं बढ़ सकता। तुम्हें कोई तोड़ नहीं सकता। तू खुले दिल वाला तथा बेअंत है (अनन्त है)।८।

नमसतं सु एकै ॥ नमसतं अनेकै ॥
नमसतं अभूते ॥ नमसतं अजूपे ॥९॥

पद अर्थ : अनेक—अन+एक, जो केवल एक (स्वरूप वाला) नहीं, भाव जिस ने कई रूप रंग बनाये हुये हैं। अभूत—अ+भूत। भूत—(पांच) तत्व जिन से संसार की रचना हुयी है। अभूत—वह जिसका अस्तित्व पाँच तत्वों से नहीं है। अजूप—अ+जूप। जूप—जू-यू, (to bind fasten) बांधना (जैसे किल्ले के साथ)। जूप—यूप, वह किल्ला (स्तम्भ) जिस के साथ कुर्बानी के पशु को बांध कर मारा जाता है। अजूप—वह जिस को यह आवश्यकता नहीं कि उसके निमित्त किसी पशु को स्तम्भ के साथ बांध कर मारा जाये और उस की कुर्बानी दी जाये।

अर्थ : (हे प्रभु!) तुझे नमस्कार है; तू एक स्वयंभू है, तथा (अपने आप से) अनन्त (रूपों वाला) है। (हे प्रभु!) तेरा अस्तित्व (जगत रचना के पाँच) तत्वों से नहीं हुआ। तुझे यह आवश्यकता नहीं कि कोई इन्सान तेरे आगे कुर्बानी देने के लिये किसी पशु को स्तम्भ के साथ बांध कर मारे, (क्योंकि हे अनेक! उस पशु में भी तू आप ही है)।९।

नमसतं त्रिकरमे ।। नमसतं त्रिभरमे ।।
नमसतं त्रिदेसे ।। नमसतं त्रिभेसे ।।१०।।

पद अर्थ : त्रिकरम—निर+करम, अकरम। करम—धार्मिक-रस्में। त्रिकरम—जिस के निमित धार्मिक रस्मों को करने की आवश्यकता नहीं। त्रिभरम—भ्रमों से रहित। त्रिदेस—निर+देस (देश), देश रहित, जिस का कोई एक देश नहीं। त्रिभेस—जिस का कोई एक वेश नहीं है (लिबास नहीं है)। भेस—लिबास, पहरावा। नमसतं—नमस+तं। तं—त्वं, त्वां, तुझे, तुम को।

अर्थ : (हे प्रभु!) तुम्हें नमस्कार है; तुम्हें मिलने के लिये किसी धार्मिक रस्म को करने की आवश्यकता नहीं है, तू भ्रमों से ऊपर है तेरा न कोई एक देश है, न कोई एक पहरावा (वेश) है।१०।

नमसतं त्रिनामे ।। नमसतं त्रिकामे ।।
नमसतं त्रिधाते ।। नमसतं त्रिघाते ।।११।।

पद अर्थ : त्रिनाम—जिसका कोई एक नाम नहीं। त्रिकाम—जिस को कोई कामना (भाव, वासना) प्रभावित नहीं कर सकती। त्रिधात—निर+धात। धात—१. तत्त्व : पृथ्वी, जल, तेज, हवा, आकाश; २. ज्ञानेन्द्रियाँ, ३. पाँच तत्त्वों के गुण : रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द। त्रिघात—निर+घात। घात—१.चोट, २. कत्ल। त्रिघात—जिस पर कोई चोट नहीं कर सकता।

अर्थ : (हे प्रभु!) तुम्हें नमस्कार है; तेरा कोई एक नाम नहीं है, तुम्हें कोई वासना नहीं। तेरा अस्तित्व (जगत रचना के पाँच) तत्त्वों से परे है। तुम पर कोई चोट नहीं कर सकता।११।

नमसतं त्रिधूते ॥ नमसतं अभूते ॥
नमसतं अलोके ॥ नमसतं असोके ॥१२॥

पद अर्थ : त्रिधूते—निर+धूते, निरधूत को। धूत—जो (अपने स्थान) से हिल जाये। धू—हिलाना। निरधूत—जिस को उसके स्थान से हिलाया न जा सके। अभूत—अ+भूत, तत्त्वों से रहित। अलोक—अ+लोक (that which can not be seen) अदृष्ट। असोक—अ+सोक(शोक), शोक-रहित। शोक—चिंता, गम।

अर्थ : (हे प्रभु!) तुम्हें नमस्कार है; तुम्हें (अपने स्थान से, टिकाने से) कोई हिला नहीं सकता, तेरा अस्तित्व (जगत रचना वाले इन पांच) तत्त्वों से निराला है। हे प्रभु! तू (हमें इन आँखों से) दिखाई नहीं देता, कोई चिंता तुम्हें प्रभावित नहीं कर सकती।१२।

नमसतं त्रितापे ॥ नमसतं अथापे ॥
नमसतं त्रिमाने ॥ नमसतं निधाने ॥१३॥

पद अर्थ : ताप—तीन तरह के दुःख जो जीवों को सहने पड़ते हैं—अध्यात्मिक, अधिदैविक, अधिभौतिक। अध्यात्मिक ताप वे हैं जो 'मन' से ही पैदा होते हैं। अधिदैविक ताप वे कलेश हैं जो मनुष्य की किस्मत के कारण आते हैं। अधिभौतिक ताप वे हैं जो जीवों को एक दूसरे से मिलते हैं। त्रिताप—निर+ताप, जो संसार के तीनों ही तरह के दुःखों से ऊपर है। अथाप—अ+थाप। थाप—मूर्ति को मन्दिर में पहली बार स्थापित करने की रस्म करना। अथाप—वह जिसे मूर्ति की तरह मन्दिर में स्थापित न किया जा सके। त्रिमाने—त्रि+माने। त्रि—तीन लोक (आकाश, पाताल, मातृ लोक)। त्रिमान—जिसका आदर तीनों ही लोकों के जीव करते हैं। निधान—ख़ज़ाना (सब गुणों तथा पदार्थों का)।

अर्थ : (हे प्रभु!) तुम्हें (हमारी) नमस्कार है; तू संसार के तीनों ही तरह के दु:खों से ऊपर है; (देवताओं की मूर्तियों के समान) तुम्हें किसी मन्दिर में (टिकाया) स्थापित नहीं किया जा सकता। हे प्रभु! तीनों ही लोगों के जीव तेरे आगे झुकते हैं। तू सब गुणों का ख़ज़ाना है।१३।

नमसतं अगाहे ॥ नमसतं अबाहे ॥
नमसतं त्रिबरगे ॥ नमसतं असरगे ॥१४॥

पद अर्थ : अबाह (देखें छंद न. ६) जिसको हिलाया न जा सके। अगाह—अथाह, अगाध (न. ७)। त्रिबरग—तीनों ही वर्गों से सम्बन्ध रखने वाला। त्रि—तीन। त्रिबरग—१. सांसारिक जीवन के तीन मनोरथ : धर्म, अर्थ तथा काम; २. प्रकृति के तीन गुण : सत्व, रजस तथा तमस; ३. संसार के पदार्थों की तीन अवस्थायें : पतन की अवस्था, समानता (एक-सारता), चढ़दी कला (उनन्त अवस्था)। त्रिबरग—वह जिसमें संसार के तीनों मनोरथ (धर्म, अर्थ, काम) मौजूद हैं। असरग—अ+सरग। सरग—उत्पत्ति, रचना। असरग—जो पैदा न किया जा सके।

अर्थ : (हे प्रभु!) तुम्हें हमारी नमस्कार है; तू (मानो, एक ऐसा समुद्र है जो) अगाध है, तू (मानो एक ऐसा पर्वत है जो) हिलाया नहीं जा सकता। हे प्रभु! जीवों के सांसारिक जीवन के तीनों ही पदार्थ (धर्म, अर्थ, काम) तुमसे ही प्राप्त होते हैं। तेरी कोई रचना नहीं कर सकता।१४।

नमसतं प्रभोगे ॥ नमसतं सुजोगे ॥
नमसतं अरंगे ॥ नमसतं अभंगे ॥१५॥

पद अर्थ : प्रभोगे—हे प्रभोगी! प्रभोगी—प्र+भोगी, अच्छी तरह भोगने वाला (देखें छंद न. १२५, 'प्रभुगत'—जो अच्छी तरह भोगा जाता है)

सुजोगे—हे सुजोगी! सुजोगी—सु+जोगी, अच्छी तरह मिला हुआ (देखें छंद न. १२५, 'सुजुगत')। अरंग—अ+रंग, जिसका कोई रंग नहीं है। अभंग—अ+भंग। भंग—तबाही, नाश। अभंग—अविनाशी।

अर्थ : (हे प्रभु!) तुम्हें नमस्कार है; तू संसार के सब पदार्थों को भोगने वाला है (पदार्थों का आनन्द लेने वाला है), (क्योंकि) तू (सृष्टि के) सारे ही जीवों में सम्पूर्ण रूप से मौजूद है, (फिर भी) हे प्रभु! (जीवों की तरह) तेरा न कोई विशेष रंग है तथा न ही तू (संसार के जीवों की तरह पदार्थों का भोग कर कर के) कभी नष्ट हो सकता है।१५।

नमसतं अगंमे ॥ नमसतसतु रंमे ॥
नमसतं जलासरे ॥ नमसतं निरासरे ॥१६॥

पद अर्थ : अगंम—जिस तक पहुँच न हो सके, जिस तक मन की पहुँच न हो सके। नमसतसतु—नमस+त+सतु, नमस+त्वां+असतु। नमस—नमस्कार। त—त्वं, त्वां, तुम्हें। असतु—(अस्तु) हो। नमसतसतु—तुम्हें नमस्कार हो। रंम—सुन्दर। जलासर—जल+आश्रय, जल का आश्रय, भाव, समुद्र (अथाह)। निरासरे—निर+आश्रय, जिस को किसी सहारे की आवश्यकता नहीं।

अर्थ : (हे प्रभु!) तुम्हें नमस्कार है; तू (जीवों के मन की) पहुँच से परे है। हे सुन्दर स्वरूप प्रभु! तुम्हें हमारी नमस्कार हो; तू (मानो) एक अथाह समुद्र है। तुम्हें किसी आश्रय (आसरे, सहारे) की आवश्यकता नहीं।१६।

नमसतं अजाते ॥ नमसतं अपाते ॥
नमसतं अमजबे ॥ नमसतसतु अजबे ॥१७॥

पद अर्थ : अजाति—अ+जाति, जिसकी कोई विशेष जाति नहीं। अपाति—अ+पाति, जिस की कोई विशेष कुल नहीं। अमजब—अ+मजब, जिस का कोई विशेष मत नहीं है। नमसतसतु—(देखें छंद न. १६) तुम्हें नमस्कार हो। अजब—आश्चर्य।

अर्थ : (हे प्रभु!) तुम्हें हमारी नमस्कार है; तेरी कोई विशेष जाति नहीं, तेरी कोई खास कुल नहीं, तेरा कोई खास मत नहीं है। हे आश्चर्य रूप! तुम्हें हमारी नमस्कार हो।१७।

अदेसं अदेसे ॥ नमसतं अभेसे ॥
नमसतं त्रिधामे ॥ नमसतं त्रिबामे ॥१८॥

पद अर्थ : अदेसं—आदेस, नमस्कार। अदेस—अ+देस, जिसका कोई एक देश नहीं है। अभेस—अ+भेस, जिसका कोई वेश नहीं है। त्रिधाम—निर+धाम। धाम—घर। त्रिधाम—जिसका कोई विशेष घर नहीं है। त्रिबाम—निर+बाम। बाम—(वामा) स्त्री। त्रिबाम—जो स्त्री से पैदा नहीं हुआ।

अर्थ : (हे प्रभु!) तुम्हें हमारी नमस्कार है; तेरा कोई एक देश नहीं, तेरा कोई वेश नहीं, कोई ख़ास घर नहीं, तू स्त्री से पैदा नहीं हुआ।१८।

नमो सरब काले ॥ नमो सरब दिआले ॥
नमो सरब रूपे ॥ नमो सरब भूपे ॥१९॥

पद अर्थ : सरब काल—सब जीवों का नाश करने वाला। भूप—(भू+पा) धरती की रक्षा करने वाला। नमो—नमस्कार।

अर्थ : (हे प्रभु!) तुम्हें नमस्कार है; तू सब जीवों को नष्ट करने वाला है, तू सब जीवों पर दया करने वाला है। तू सब का रूप है, भाव तू सब हस्तियों में मौजूद है। तू सब जीवों का राजा है।१९।

नमो सरब खापे ॥ नमो सरब थापे ॥
नमो सरब काले ॥ नमो सरब पाले ॥२०॥

पद अर्थ : खापे—(सं: खिय—नाश होना, ख्याप्य, नाश हो जाना। ख्याप्य—नाश करना) नाश करने वाले को। सरब खापे—सब जीवों का नाश करने वाले (नाशक) को। थाप—(स्थाप्य—to cause, to stand) पैदा करने वाला, सहारा देने वाला।

अर्थ : (हे प्रभु!) तुम्हें हमारी नमस्कार है; तू सब जीवों का नाश करने वाला है, तथा सब जीवों को आश्रय (सहारा) देने वाला (भी) है। तू सब जीवों का काल है, तथा सब जीवों का रक्षक (भी) है।२०।

नमसतसतु देवै ॥ नमसतं अभेवै ॥
नमसतं अजनमे ॥ नमसतं सुबनमे ॥२१॥

पद अर्थ : नमसतसतु (देखें छंद न. १६) तुम्हें नमस्कार हो। देव—पूज्य, प्रकाश रूप। अभेव—अ+भेव, जिस का भेद न पाया जा सके। अजनम—अ+जनम, जो (बाकी जीवों के समान) पैदा नहीं हुआ, (जन्मा नहीं)। सुबनमे—सु+बन+मे, सु+वंन+मय, सु+वर्ण+मय। बन—वन, वर्ण, रंग। सु+बन—सु+वर्ण, सुन्दर रंग। बनमे—बन+मे—वर्ण+मय, रंग वाला। सुबनमे—सुवंर्ण-मय, अच्छे रंग वाला, सुन्दर।

अर्थ : (हे प्रभु!) तुम्हें हमारी नमस्कार हो; तू प्रकाश रूप है। तेरा किसी ने भेद नहीं पाया, तू (सृष्टि के जीवों के समान) जन्म में नहीं आया, तू सुन्दर रंग वाला है।२१।

नमो सरब गउने ॥ नमो सरब भउने ॥
नमो सरब रंगे ॥ नमो सरब भंगे ॥२२॥

पद अर्थ : गउन—गमन, पहुँच। भउन—भवन, लोक। सरब भउन—जो सब भवनों में व्यापक है। सरब भंग—जो सब जीवों का नाश करने वाला है (देखें छंद न. १५, 'अभंग')।

अर्थ : (हे प्रभु!) तुम्हें नमस्कार है; तेरी पहुँच सब जीवों तक है, तू सब भवनों में व्यापक है। सब रंगों में तू (शोभायमान) है। सब का नाश करने वाला (भी) है।२२।

नमो काल काले ॥ नमसतसतु दिआले ॥
नमसतं अबरने ॥ नमसतं अमरने ॥२३॥

पद अर्थ : काल—मौत। काल काले—मौत की मौत, भाव मौत जिस के आधीन है, जो मौत को भी समाप्त कर सकता है। नमसतसतु—(देखें छंद न. १६) तुम्हें नमस्कार हो! दिआले—दया+आलय, दया का घर। अबरन—अ+बरन, अ+वर्ण, जिस का कोई एक रंग नहीं है। अमरन—अ+मरन, मौत रहित।

अर्थ : (हे प्रभु!) तुम्हें नमस्कार है; तू मौत को भी समाप्त कर देने वाला है। हे दया के घर! तुम्हें हमारी नमस्कार है। तेरा कोई एक रंग नहीं है, तुम्हें मौत मार नहीं सकती।२३।

नमसतं जरारिं ॥ नमसतं क्रितारं ॥
नमो सरब धंधे ॥ नमो सत अबंधे ॥२४॥

पद अर्थ : जरारिं—जरा+अरिं। जरा—बुढ़ापा। अरिं—वैरी को। क्रितारं—करतार, करतार को, सब जीवों को पैदा करने वाले को। धंधा—कार्य, दुनिया के कार्य-क्लाप। सरब धंधा—वह जो संसार के सारे कार्य-क्लाप आप चला रहा है। सत—अस्तित्व वाला। अबंध—अ+बंध, बंधनों से रहित।

अर्थ : (हे प्रभु!) तुम्हें हमारी नमस्कार है; तू बुढ़ापे का शत्रु है। (बुढ़ापा तुम्हारे समीप नहीं आ सकता), तू सब जीवों का उत्पात्ति कर्ता है, तू स्वयं ही (संसार के) सारे कार्य-क्लाप चला रहा है। तू वास्तव में है (तेरा अस्तित्व है यह सत्य है) तथा (संसार के) बंधनों से रहित (भी) है।२४।

नमसतं त्रिसाके ।। नमसतं त्रिबाके ।।
नमसतं रहीमे ।। नमसतं करीमे ।।२५।।

पद अर्थ : त्रिसाक—निर+साक, जिस का कोई विशेष सम्बन्धी नहीं है। त्रिबाक—निर+बाक। बाक—डर (फ़ारसी शब्द है)। रहीम—रहम (दया) करने वाला। करीम—कृपा करने वाला।

अर्थ : (हे प्रभु!) तुम्हें नमस्कार है; तेरा कोई ख़ास सम्बन्धी नहीं है, तुझे किसी से डर नहीं, तू सब पर रहम करने वाला है, तथा सब पर कृपा करने वाला है।२५।

नमसतं अनंते ।। नमसतं महंते ।।
नमसतसतु रागे ।। नमसतं सुहागे ।।२६।।

पद अर्थ : अनंत—अन+अंत, जिस का अंत नहीं पाया जा सकता। महंत—महांत, सब से बड़ा। नमसतसतु—(देखें छंद न. १६) तुझे नमस्कार हो। राग—प्यार (-स्वरूप)। सुहाग—सौभाग्य, अच्छे भाग्य वाला, प्रताप वाला।

अर्थ : (हे प्रभु!) तुम्हें हमारी नमस्कार है; तेरा कोई अंत नहीं पा सका। तू सब से बड़ा है। हे प्रभु! तुम्हें नमस्कार हो! तू प्यार-स्वरूप है तथा अति-प्रतापशाली है।२६।

नमो सरब सोखं ॥ नमो सरब पोखं ॥
नमो सरब करता ॥ नमो सरब हरता ॥२७।

पद अर्थ : सोखं—(शुख—सूख जाना। सोख्य—सुखा देना) नाश करने वाला। पोखं—पालन कर्ता। हरता—नाशक (नाश करने वाला)।

अर्थ : (हे प्रभु!) तुम्हें हमारी नमस्कार है; तू सब जीवों का नाश करने वाला है, तथा पालन करने वाला (भी) है। तू सब जीवों को उत्पन्न करने वाला है, तथा नष्ट करने वाला (मारने वाला भी) है।२७।

नमो जोगि जोगे ॥ नमो भोगि भोगे ॥
नमो सरब दिआले ॥ नमो सरब पाले ॥२८॥

पद अर्थ : जोगि—योगी, तपी, त्यागी। भोगि—भोगी, गृहस्थी पदार्थों को भोगने वाला।

अर्थ : (हे प्रभु!) तुम्हें हमारी नमस्कार है! तू त्यागियों में त्यागी है, गृहस्थियों में गृहस्थी है, तू सब जीवों पर दया करने वाला है। सब की रक्षा करने वाला है।२८।

चाचरी छंद ॥ त्व प्रसादि ॥
अरूप हैं ॥ अनूप हैं ॥ अजू हैं ॥ अभू हैं ॥२९॥

पद अर्थ : अनूप—अन+ऊप, उपमा रहित, बे-मिसाल, लासानी। अजू—अ+जू। जू—(to move on quickly) चल। अजू—अचल। अभू—अ+भू। भू—पैदा होना। अभू—जो जन्म रहित है।

अर्थ : (हे प्रभु!) न तेरा कोई एक रूप है, न कोई तेरी समता रखता है। तू अचल है, तथा जन्म रहित है।२९।

अलेख हैं ॥ अभेख हैं ॥ अनाम हैं ॥ अकाम हैं ॥३०॥

पद अर्थ : अलेख—अ+लेख। लेख—चित्र, तस्वीर। अभेख—अ+भेख। भेख—वेश, पहरावा। अनाम—अ+नाम। अकाम—अ+काम, कामना रहित।

अर्थ : (हे प्रभु!) कोई तेरी तस्वीर नहीं बना सकता। तेरा कोई विशेष वेश नहीं है (परिधान नहीं है), तेरा कोई एक नाम नहीं है। तुम्हें कोई कामना प्रभावित नहीं कर सकती।३०।

अधे हैं ॥ अभे हैं । अजीत हैं ॥ अभीत हैं ॥३१॥

पद अर्थ : अधे—अ+धे। धे—(सं. ध्येय, to be meditated upon) जिस को विचार मंडल में लाया जा सके। अधे—जो मनुष्य की विचार शक्ति से बाहर हो। अभे—अ+भे, भेद रहित है, तेरा भेद नहीं पाया जा सकता। अजीत—अविजित। अभीत—अ+भीत, डर रहित। भीत—डरा हुआ।

अर्थ : (हे प्रभु!) तू जीवों की विचारशक्ति से परे है, (भाव विचार शक्ति की सहायता से तेरा पूर्ण स्वरूप कोई नहीं समझ सका)। तेरा भेद कोई नहीं पा सका। तू अजय है, तथा तुम्हें किसी का डर नहीं।३१।

त्रिमान हैं ॥ निधान हैं ॥ त्रिबरग हैं ॥ असरग हैं ॥३२॥

पद अर्थ : त्रि—तीन लोक (आकाश, भूलोक, पाताल। मान—आदर, पूजा। त्रिमान—तीनों लोकों के जीव जिसके आगे झुकते हैं। निधान—ख़ज़ाना (सब गुणों का)। त्रिबरग—(देखें छंद न. १४) वह जिसमें संसार के तीनों ही पदार्थ मौजूद हैं। असरग—(देखें छंद न. १४) जो पैदा न किया जा सके।

अर्थ : (हे प्रभु!) तीनों ही भवनों के जीव तेरे आगे झुकते हैं। तू सब गुणों का ख़ज़ाना है। (हे प्रभु!) जगत के तीनों ही पदार्थ (धर्म, अर्थ, काम) जीवों को तुमसे ही प्राप्त होते हैं। तुम्हें कोई पैदा नहीं कर सकता।३२।

अनील हैं ।। अनादि हैं ।। अजे हैं ।। अजादि हैं ।।३३।।

पद अर्थ : अनील—अनिल, हवा (छंद न. ७) सब जीवों के प्राणों का आश्रय। अनादि—जिस का आदि नहीं खोजा जा सकता। आदि—आरम्भ। अजे—अविजित। अजादि—अज+आदि। अज—अ+ज, अ-जन्मा। आदि—(सब का) प्रारम्भ, मूल। जा—पैदा होना।

अर्थ : (हे प्रभु!) सारे प्राणी तेरे सहारे जीवित रहते हैं। तू कब का है, (किस समय से तुम्हारा प्रारम्भ है), यह तथ्य कोई खोज नहीं सका। तुम्हें कोई जीत नहीं सकता, तू जन्म से रहित है तथा सब का मूल है।३३।

अजनम हैं ।। अबरन हैं ।। अभूत हैं ।। अभरन हैं ।।३४।।

पद अर्थ : अजनम—अ+जनम, जन्म में न आने वाला। अबरन—अ+बरन। बरन—रंग, जाति-भेद (ब्राहमण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) (देखें छंद न. २३)। अभूत—अ+भूत, तत्वों से रहित। अभरन—अ+भरन। भरन—पालन पोषण करना। अभरन—जो परवरिश के लिये किसी का मोहताज न हो।

अर्थ : (हे प्रभु!) तू जन्म के चक्र में नहीं आता। तेरी कोई जाति नहीं है। (संसार-रचना वाले) तत्वों से परे है। अपने पालन पोषण के लिये किसी का मोहताज नहीं है।३४।

अगंज हैं ॥ अभंज हैं ॥ अजूझ हैं ॥ अझंझ हैं ॥३५॥

पद *अर्थ* : अगंज—अ+गंज। गंजन—हराना, जीतना। अगंज—अविजित (देखें छंद न. ४, ८)। अभंज—अ+भंज, जो तोड़ा न जा सके। अजूझ—अ+जूझ। जूझना—लड़ना। अजूझ—जिस से कोई लड़ न सके। अझंझ—अ+झंझ। झंझ—झगड़ा। अझंझ—झगड़ों से रहित।

***अर्थ* :** (हे प्रभु!) कोई तुझे जीत नहीं सकता, कोई तुझे तोड़ नहीं सकता, कोई तेरे साथ लड़ नहीं सकता, तुम लड़ाई झगड़ों से परे हो।३५।

अमीक हैं ॥ रफ़ीक हैं ॥ अधंध हैं ॥ अबंध हैं ॥३६॥

पद *अर्थ* : अमीक (अरबी शब्द) गहरा, अथाह। रफ़ीक—मित्र, साथी। अधंध—अ+धंध। धंध—झमेले। अबंध—अ+बंध। बंध—(संसार के) बंधन।

***अर्थ* :** (हे प्रभु!) (तू एक ऐसा समुद्र है जिसकी) गहरायी नापी नहीं जा सकती, तू अथाह है। तू (सब जीवों का) मित्र है। पर (जगत के कोई) झमेले तुम्हें घेर नहीं सकते, तथा (माया के) जंजाल तुम्हें फंसा नहीं सकते।३६।

त्रिबूझ हैं ॥ असूझ हैं ॥ अकाल हैं ॥ अजाल हैं ॥३७॥

पद *अर्थ* : त्रिबूझ—निर+बूझ, जिसका भेद न जाना जा सके। असूझ—अ+सूझ, समझ से परे। अजाल—अ+जाल, माया-जाल से रहित, बंधनों से परे।

***अर्थ* :** (हे प्रभु!) तेरे गहरे भेद जाने नहीं जा सकते, तू (मनुष्य की) समझ से परे है, तू मौत रहित है, माया के बंधन तुम्हें फंसा नहीं सकते।३७।

अलाह हैं ।। अजाह हैं ।। अनंत हैं ।। महंत हैं ।।३८।।

पद अर्थ : अलाह—अ+लाह, जिसे खोजा न जा सके। अजाह—अ+जाह, जाह—जगह, स्थान। अजाह—जिसकी कोई खास जगह नहीं, जिसका कोई स्थान नहीं। अनंत—अन+अंत, बेअंत। महंत—महांत, बहुत बड़ा।

अर्थ : (हे प्रभु!) तुम्हें (किसी स्थान पर) खोजा नहीं जा सकता, (क्योंकि) तेरा कोई एक स्थान नहीं है। हे प्रभु! तू अनन्त है, सब से बड़ा है।३८।

अलीक हैं ।। त्रिसरीक हैं ।। निरलंभ हैं ।। असंभ हैं ।। ३९।।

पद अर्थ : अलीक—अ+लीक, जो रेखांकित न किया जा सके। जिस की सीमा-रेखा न खींची जा सके। त्रिसरीक—निर+सरीक जिस का कोई शरीक नहीं, जिसके साथ कोई बैर न कर सके। निरलंभ—निर+अलंभ। अलंभ—आलम्ब, सहारा, आसरा। निरलंभ—जिसको किसी आलम्ब, (सहारे) की आवश्यकता नहीं। असंभ—असंभव्य, जो विचारों की सीमा में न आ सके। सम्भावना—विचार, ख्याल, (देखें छंद न. १४०)।

अर्थ : (हे प्रभु!) तेरी सीमा बतायी नहीं जा सकती, कोई तेरे साथ बैर नहीं कर सकता, तुझे किसी सहारे की आवश्यकता नहीं है, तथा तू जीवों के विचारमण्डल से परे है।३९।

अगंम हैं ।। अजंम हैं ।। अभूत हैं ।। अछूत हैं ।।४०।।

पद अर्थ : अगंम—जिस तक पहुँच न हो सके। अजंम—जन्म से रहित। अछूत—स्पर्श से रहित, जिसे कोई छू न सके।

अर्थ : (हे प्रभु!) तू पहुँच से परे है। तू जन्म के चक्र में नहीं

आता। तेरा अस्तित्व (जगत रचना के पाँच) तत्वों से नहीं बना। (इसलिये) कोई (पंच भौतिक जीव) तुम्हें छू नहीं सकता।४०।

अलोक हैं ॥ अशोक हैं ॥ अकरम हैं ॥ अभरम हैं ॥४१॥

पद अर्थ : अलोक—(देखें छंद न. १२) अदृष्ट।

अर्थ : (हे प्रभु!) तू हमें इन आंखों से नहीं दिखता, तुझे कोई चिंता चिंतित नहीं कर सकती। तुम्हें मिलने के लिये किसी धार्मिक रस्म को करने की आवश्यकता नहीं, तू भ्रमों से रहित है।४१।

अजीत हैं ॥ अभीत हैं ॥ अबाह हैं ॥ अगाह हैं ॥४२॥

अर्थ : (हे प्रभु!) तुम्हें कोई जीत नहीं सकता। तुम्हें किसी का डर नहीं। तू (मानो एक ऐसा पर्वत है जो) हिलाया नहीं जा सकता। तू (मानो एक ऐसा समुद्र) है जिस की गहराई को समझा नहीं जा सकता।४२।

अमान हैं ॥ निधान हैं ॥ अनेक हैं ॥ फिरि एकु हैं ॥४३॥

पद अर्थ : अमान—अ+मान। मान—(मा—मापना) माप। अमान—माप रहित, जो ऐसा है कि कोई माप उसको माप नहीं सकता (तोल नहीं सकता)। निधान—ख़ज़ाना।

अर्थ : (हे प्रभु!) जगत का कोई माप तेरा अंदाज़ा नहीं लगा सकता, तू सब (पदार्थों तथा गुणों) का ख़ज़ाना है। तूने (अपने एक स्वरूप से) अनन्त रूप बनाये हुये हैं, फिर भी तू स्वयं एक है (भाव, तेरा कोई शरीक नहीं है।)४३।

भुजंग प्रयात छंद ॥

नमो सरब माने ॥ समसती निधाने ॥
नमो देव देवे ॥ अभेखी अभेवे ॥४४॥

पद अर्थ : मान—माननीय, आदर-योग्य। समसत—सारे। निधान—ख़ज़ाना। अभेखी—अ+भेखी, जिस का कोई एक वेश नहीं है। अभेव—अ+भेव, जिस का भेद नहीं जाना जा सकता।

अर्थ : (हे प्रभु!) तुम्हें नमस्कार है; सब जीव जन्तु तुम्हें ही पूजते हैं। तू सब (गुणों तथा पदार्थों) का ख़ज़ाना है। तू सब देवताओं का देवता है। तेरा कोई एक वेश नहीं है। तेरा कोई भेद नहीं पा सकता।

नमो काल काले ॥ नमो सरब पाले ॥
नमो सरब गउणे ॥ नमो सरब भउणे ॥४५॥

पद अर्थ : काल काले—मौत की भी मौत, मौत का भी अन्त कर देने वाला (देखें छंद न. १३)। सरब पाल—सब की रक्षा करने वाला। सरब गउण—सर्व-गमन, जिस की सब जीवों तक पहुँच है। सरब भउण—जो सब लोकों (भवनों) में विद्यमान है। (देखें छंद न. २२)।

अर्थ : (हे प्रभु!) तुम्हें नमस्कार है; तू मौत का भी अन्त कर देने वाला है। तू सब जीवों की रक्षा करने वाला है। सब जीवों तक तेरी पहुँच है, तथा तू सब भवनों में विद्यमान है।४५।

अनंगी अनाथे ॥ त्रिसंगी प्रमाथे ॥
नमो भान भाने ॥ नमो मान माने ॥४६॥

पद अर्थ : अनंगी—अन+अंगी, जिस का कोई अंग नहीं।

अनाथ—अ+नाथ, जिस के सिर पर अन्य कोई स्वामी नहीं है। त्रिसंगी—निर+संगी, जिस का कोई साथी नहीं, कोई बराबर का नहीं है। प्रमाथ—नाश करने वाला। (देखें छंद न. १४६)। भान—सूर्य। भान भाने—सूर्यों का सूर्य, सूर्य को भी प्रकाशित करने वाला। मान—मान्य, (respectable) आदर-योग्य। भान—(भा—चमकना, रौशन होना) रौशनी का ख़ज़ाना।

अर्थ : (हे प्रभु!) तुम्हें हमारी नमस्कार है; न तेरा कोई विशेष अंग है, न तेरा (तुमसे बड़ा) कोई स्वामी है। तेरे बराबर का कोई नहीं है। तू सब को नष्ट करने वाला है। तुम्हें नमस्कार है! तू सूर्यों का भी सूर्य है, (भाव तू सूर्य को भी प्रकाशित करने वाला है), बड़े बड़े माननीय भी तुम्हारी ही पूजा करते हैं।४६।

नमो चंद्र चंद्रे॥ नमो भान भाने॥
नमो गीत गीते॥ नमो तान ताने॥४७॥

पद अर्थ : चंद्र—चन्द्रमा। चंद—(सं: to shine) चमकना, प्रकाश देना, चन्द्र चन्द्र—चन्द्रमा का चन्द्रमा, चन्द्रमा को प्रकाशित करने वाला। तान—(सं: a protracted tone: 'राग' में, 'तान' गिनती में ४९ माने गये हैं), सुरों का लम्बा पलटा जो किसी गीत आदि को बहुत सुन्दर बना देता है।

अर्थ : (हे प्रभु!) तुम्हें नमस्कार है; तू चन्द्रमा को प्रकाशित करने वाला तथा सूर्य को भी रौशनी देने वाला है, (भाव चन्द्रमा की कोमल चांदनी का तू मूल है, तथा सूर्य के तेज प्रकाश का भी तू खज़ाना है, तू शीतलता तथा तेज दोनों का स्वामी है)। तू (मानो!) एक सुन्दर गीत है। तू एक दिल को आकृष्ट करने वाला तराना है (जो अपनी मधुरता से संसार को मोहित कर रहा है)।४७।

नमो त्रित्त त्रित्ते ॥ नमो नाद नादे ॥
नमो पान पाने ॥ नमो बाद बादे ॥४८॥

पद अर्थ : त्रित्त—नाच। नाद—आवाज़। पान—(सं: पाणि) हाथ। बाद—वाद, बजाना। पाणि वादि—(playing on a drum) ढोल बजाना। पाणि वादि—ढोल बजाने वाला। 'पान पान', 'वाद वाद'—तू एक महान ढोलची है (जिस ने ढोल बजा के संसार रूप मेला एकत्रित किया हुआ है)। 'पान पान' 'वाद वाद'—पानि-वादि, पानि-वादि, ढोलचियों का ढोलची।

अर्थ : (हे प्रभु!) तुम्हें नमस्कार है; तू एक महान सुन्दर नृत्य है, एक महान सुन्दर आवाज़ है (जिस ने सारे जगत को मोह लिया है)। तुम्हें नमस्कार है; तू एक महान ढोलची है (जिस ने ढोल बजा के जगत-रूप मेला एकत्रित किया हुआ है) ।४८।

अनंगी अनामे ॥ समसती सरूपे ॥
प्रभंगी प्रमाथे ॥ समसती बिभूते ॥४९॥

पद अर्थ : अनंगी—अन+अंगी, अंग रहित। अनाम—अ+नाम जिसका कोई एक नाम नहीं। समसत—सारे। समसती सरूप—सारे जीव जिसका स्वरूप हैं। प्रभंग—(destruction, complete defeat) पूर्णरूप से हार, तबाही। प्रभंगी—प्रलय लाने वाला। प्रमाथ—सब का नाश करने वाला (देखें, छंद न. १४६)। बिभूत—विभूति, सिद्धि (जो गिनती में ८ हैं)। समसती बिभूते—उस प्रभु को जो सब जीवों के लिये सिद्धियों का स्थान है।

अर्थ : (हे प्रभु!) तुम्हें नमस्कार है; तेरा न कोई खास अंग है। न तेरा कोई एक नाम है। सारे ही जीव तेरा रूप हैं। तू संसार में प्रलय

लाने वाला है, तथा सब जीवों का नाश करने वाला है। तू ही सब जीवों की ऋद्धि सिद्धि है।४९।

कलंकं बिना नेकलंकी सरूपे ॥
नमो राज राजेस्वरं परम रूपे ॥५०॥

पद अर्थ : कलंकं बिना—कलंक से रहित, जिस को कोई दाग नहीं है। नेकलंकी—निह-कलंकी, कलंक-रहित। राजेस्वरं—राज+ईश्वर, राजाओं का राजा। परम रूप—सब से बड़ी हस्ती।

अर्थ : (हे प्रभु!) तुम्हें हमारी नमस्कार है; तू (विकार आदि) दाग़ से रहित है। तू पवित्र अस्तित्व वाला है। तू नृपों का नृप है, तथा सब से बड़ा मालिक है।५०।

नमो जोग जोगेस्वरं परम सिद्धे ॥
नमो राज राजेस्वरं परम ब्रिधे ॥५१॥

पद अर्थ : सिद्ध—वह ऋषि जिस की आत्मा पवित्र हो चुकी हो, तथा जो आठ प्रसिद्ध आत्मिक शक्तियों 'सिद्धियों' का स्वामी बन गया हो। जोगेस्वर—जोग+ईश्वर, योगिराज, योगियों का स्वामी। राजेस्वर—राज+ईश्वर, नृपों का नृप। ब्रिध—बड़ा।

अर्थ : (हे प्रभु!) तुम्हें नमस्कार है; तू ही योगियों का योगी, योगिराज है, तथा सबसे ऊँची आत्मिक अवस्था वाला सिद्ध है। तू ही राजाओं का राजा है, तथा सबसे बड़ा स्वामी है।५१।

नमो शसत्र पाणे ॥ नमो असत्र माणे ॥
नमो परम गयाता ॥ नमो लोक माता ॥५२॥

पद अर्थ : शसत्र—वह हथियार जो काट सके। शस—काटना। असत्र—वह हथियार जो हाथ से फेंक कर प्रयोग किया जाये, जैसे तीर, चक्र। अस—फेंकना। पाणि—हाथ। शसत्र पाणि—वह जिसके हाथों में (तलवार आदि) हथियार हैं। असत्र माण—अस्त्रों वाला, वह जिस के पास (तीर आदि) हथियार हैं। परम—सब से अच्छी तरह, पूर्णरूप से। गयाता—जानने वाला। लोक माता—जगत की माँ, माँ के समान जगत को प्यार करने वाला।

अर्थ : (हे प्रभु!) तुम्हें हमारी नमस्कार है; तेरे हाथ में तलवार आदि हथियार सज रहे हैं। तू (तीर आदि) हथियारों को भी धारण करने वाला है। हे प्रभु! तू (सब जीवों के दिल का) परम ज्ञाता है (अच्छी तरह जानने वाला है) तथा माँ (जैसे अपने बच्चे को प्यार करती है) तू उस के समान संसार के साथ प्यार करता है।५२।

अभेखी अभरमी अभोगी अभुगते ।।
नमो जोग जोगेस्वरं परम जुगते ।।५३।।

पद अर्थ : अभेख—अ+भेख, जिस का कोई विशेष पहरावा नहीं। अभरमी—जो भ्रम-वहम नहीं करता। अभोगी—अ+भोगी, जो नहीं भोगता। भोगी—भोगने वाला, इन्द्रियों के रसों में फंसा हुआ, स्वादों में लिप्त। अभुगत—अ+भुगत। भुगत—जो भोगा जा रहा है, जो अपनी शारीरिक शक्ति को सांसारिक रसों में समाप्त कर रहा है। अभुगत—वह जिसकी शक्ति दुनिया के रसों के स्वाद में कमज़ोर नहीं हो रही। जुगति—तरीका, युक्ति। परम जुगति—सब से उत्तम तरीके वाला।

अर्थ : (हे प्रभु!) तुम्हें नमस्कार है; तू योगियों का योगिराज है, सब से श्रेष्ठ, उत्तम युक्ति वाला (योगिराज) है। न तेरा कोई एक वेश

है, न तू किसी वहम-भ्रम के आधीन है। न तू इन्द्रियों के रसास्वाद में फंसा हुआ है तथा न ही तू अपनी शक्ति को (दुनिया के जीवों के समान) दुनिया के रसों में क्षीण कर रहा है।५३।

नमो नित्त नाराइणे क्रूर करमे ॥
नमो प्रेत अप्रेत देवे सुधरमे ॥५४॥

पद अर्थ : क्रूर—निर्दयी, पत्थर-दिल। क्रूर करम—जिस के कठोर कर्म हैं। नाराइण—विष्णु का एक नाम है जिस पर संसार की रक्षा करने तथा पालन करने का उतरदायत्व है। नित्त नाराइण—सदा रक्षा करने वाला। प्रेत—(an evil spirit) बुरी रूह। अप्रेत—अ+प्रेत—जो बुरी आत्मा नहीं, पवित्र आत्मा। देव—प्रकाश-रूप। सुधरम—जो अपने परिवार का पालन बड़े ध्यान से करता है।

अर्थ : (हे प्रभु!) तुम्हें हमारी नमस्कार है; तू सदा जीवों की रक्षा करने वाला भी है, तथा हिंसा करने वाला भी है। हे प्रभु! बुरी तथा पवित्र आत्माएं (यह सब तेरा ही रूप है, यह सारा तेरा ही परिवार है)। तू सब का स्वामी है, तथा अपने इस सारे संसार-परिवार को ध्यान से पालता है।५४।

नमो रोग हरता ॥ नमो राग रूपे ॥
नमो शाह शाहं ॥ नमो भूप भूपे ॥५५॥

पद अर्थ : हरता—दूर करने वाला। राग—प्यार, प्रेम। शाह—पातशाह। भूप—राजा।

अर्थ : (हे प्रभु!) तुम्हें नमस्कार है; तू ही जीवों के दुःख दूर करने वाला है। (क्योंकि) तू प्रेम स्वरूप है, (भावं तेरा अस्तित्व ही प्यार है) तू राजाओं का राजा है।५५।

नमो दानि दाने ।। नमो मान मानं ।।
नमो रोग रोगे ।। नमसतं इसनानं ।।५६।।

पद अर्थ : दानि—दानी, उदार-चित्त। मान—माननीय, आदर-योग्य (देखें छंद न. ४६)। रोग रोगे—(देखें छंद न. २३, 'काल काले') रोग का रोग, जो हर तरह के रोग को समाप्त कर देने वाला है। इसनानं—नहाना, स्नान; स्नान की कोई धार्मिक रस्म, किसी देव मूर्ति को स्नान कराने की रस्म, पवित्रता जो नहा कर प्राप्त की जाती है। (नोट—मूर्ति पूजा करने वाले लोग सवेरे मन्दिर में जाकर मूर्ति को स्नान आदि करवाते हैं, तथा उस से देह अरोगता की दुआ मांगते हैं।)

अर्थ : (हे प्रभु!) तुम्हें हमारी नमस्कार है; तू महान, उदार-चित्त दानी है। जगत में माननीय जन भी तेरी ही पूजा करते हैं। हे प्रभु! (तुम्हें भूल कर मूर्ति पूजा करने वाले लोग मूर्ति को नित्य स्नान कराते हैं, तथा उससे देह-अरोगता का दान मांगते हैं, पर) एक तू ही जीवों के रोगों को दूर करने में समर्थ है, (क्योंकि तू स्वयं शुद्ध-स्वरूप) पवित्रता का रूप है) ।५६।

नमो मंत्र मंत्रं ।। नमो जंत्र जंत्रं ।।
नमो इशट इशटे ।। नमो तंत्र तंत्रं ।।५७।।

पद अर्थ : नोट—देवताओं, भूतों आदि की पूजा करने वाले मनुष्य साधारणत्य तीन तरीके अपनाते हैं, जिस द्वारा वह अपने इष्ट देव को वश में करने का यत्न करते हैं। १. उस देवता के स्वभाव अनुसार उसे खुश करने वाले कुछ शब्दों की एक 'पंक्ति' को बार बार पढ़ना, इस को मंत्र कहा जाता है। २. पत्र या काग़ज़ आदि पर उस इष्ट देव से सम्बन्धित

कुछ अक्षर या शब्द लिखकर उस तावीज़ को अपने पास रखना, इसको जंत्र कहते हैं। ३. उस इष्ट देव को प्रसन्न करने के लिये कोई खास रस्में करनी जैसे; भूतों को वश में करने वाले श्मशान या कब्र में जाकर दूध या अन्य पदार्थ कई तरीकों से उन्हें भेंट करते हैं, इसको तन्त्र कहा जाता है। (इष्ट—सब से प्रिय देवता)।

अर्थ : (हे प्रभु!) तुम्हें नमस्कार है; तेरा नाम ही मेरे लिये सब से बड़ा 'मंत्र' है, सब से श्रेष्ठ 'जंत्र' है तथा उत्तम 'तंत्र' है। हे प्रभु! तू ही मेरा इष्ट देवता है।५७।

सदा सच्चिदानंद सरबं प्रणासी ।।
अनूपे सरूपे समसतुल निवासी ।। ५८।।

पद अर्थ : सच्चिदानंद—सत+चित+आनंद। सत—सत्य, वास्तविक अस्तित्व वाला। चित—(intelligence) समझ, ज्ञान-रूप। आनंद—खुशी, प्रफुल्लता। सरब—सारे। प्रणासी—नष्ट करने वाला। अनूप—अन+ऊप। ऊप—उपमा, समता, बराबरी। अनूप—जिसके समान अन्य कोई नहीं। समसत—सारे।

अर्थ : (हे प्रभु!) तू सदा रहने वाला है, ज्ञान रूप है, आनन्द स्वरूप है, तू सब जीवों का नाश करने वाला है। तेरा स्वरूप ऐसा है कि जिसकी समता किसी अन्य से नहीं है। तू सब जीवों में विद्यमान है।५८।

सदा सिधिदा बुधिदा ब्रिधि करता ।।
अधो उरध अरधं अघं ओघ हरता ।।५९।।

पद अर्थ : सिधिदा—(दा—देना) सफलता देने वाला। सिधि—(सिद्धि) आत्मिक बल, करामात दिखाने की क्षमता। (नोट—देखें

छंद न. ५१। शब्द 'सिद्ध' तथा 'सिद्धि' में अन्तर समझने की खास आवश्यकता है; सिद्ध—वह मनुष्य जो आठ आत्मिक बल प्राप्त कर चुका है; सिद्धि—आत्मिक बल। बुद्धिदा—बुद्धि देने वाला। बुद्धि—अक्ल। ब्रिधि—उन्नति। करता—करने वाला। अघो—(in the lower region) पाताल। उरध (upwards, above) ऊपर, आकाश में। अरध—अर्ध (half) बीच में, मध्य में। अघं—पाप। ओघ—समूह, ढेर। हरता—नाश करने वाला। अघं ओघ—पापों के ढेर, असंख्य पाप।

अर्थ : (हे प्रभु!) तू ही आत्मिक ताकत देने वाला है, तू ही जीवों को बुद्धि प्रदान करता है तथा तू ही (जीवों को) उन्नति देने वाला है। पाताल में, आकाश में तथा मध्य में (प्रत्येक स्थान पर मौजूद है), तू जीवों के असंख्य पापों को नष्ट करने वाला है।५९।

परं परम परमेस्वरं प्रोछ पालं ॥
सदा सरबदा सिधि दाता दिआलं ॥६०॥

पद अर्थ : परमेस्वरं—परम+ईश्वर, सब से बड़ा स्वामी। प्रोछ—सं. परोक्ष—(beyond the range of sight) दृष्टि से परे। सरबदा—सदा, सर्वदा। सिधि दाता—आत्मिक बल देने वाला। दिआल—दया का घर।

अर्थ : (हे प्रभु!) तू श्रेष्ठ स्वामी है। जीवों की दृष्टि से परे रहकर तू (जीवों का) पालन कर रहा है। तू सदा (जीवों को) सिद्धियाँ देने वाला है तथा दया का घर है।६०।

अछेदी अभेदी अनामं अकामं ॥
समसतो पराजी समसतसतु धामं ॥६१॥

पद अर्थ : अछेद—अ+छेद, न टूटने वाला। अभेद—अ+भेद, न

बिन्धा जाने वाला। भेद—चोट, ज़ख़्म। अनाम—अ+नाम, जिसका कोई एक नाम नहीं। अकाम—अ+काम, जिसको कोई कामना नहीं। समसत—सारे। पराजी—विजय प्राप्त करने वाला। पराजय—जीत। समसतसतु—समसत+असत। समसत—सारे। असत—है। धाम—घर, ठिकाना।

अर्थ : (हे प्रभु!) तुम्हें न कोई तोड़ सकता है, न कोई बिन्ध (चोट पहुँचा) सकता है। तेरा कोई एक नाम नहीं है। तुम्हें कोई कामना प्रभावित नहीं कर सकती। तू सब जीवों को जीतने वाला है, तथा सब जीवों में तेरा निवास है।६१।

तेरा जोर ॥ चाचरी छंद ॥

जले हैं ॥ थले हैं ॥ अभीत हैं ॥ अभे हैं ॥ ६२॥

पद अर्थ : अभीत—जो किसी से न डरे। भीत—डरा हुआ। अभे—भेद रहित, जिस का कोई भेद न पा सके।

अर्थ : (हे प्रभु!) तू जल में है, थल में है, तुम्हें किसी से डर नहीं, तेरा भेद कोई नहीं पा सकता।६२।

प्रभू हैं ॥ अजू हैं ॥ अदेस हैं ॥ अभेस हैं ॥ ६३॥

पद अर्थ : भू—होना, अस्तित्व में आना, जन्म लेना। प्रभू—(प्र+भू) मज़बूत होना, स्वामित्व प्राप्त होना। प्रभू—(Lord, Master) स्वामी। अजू—अ+जू, अचल। अदेस—अ+देस, देश रहित। अभेस—अ+भेस, वेश रहित।

अर्थ : तू सब का स्वामी है, तुझे कोई हिला नहीं सकता, तेरा कोई एक देश नहीं, कोई एक वेश नहीं।६३।

भुजंग प्रयात छंद ॥

अगाधे अबाधे ॥ अनंदी सरूपे ॥
नमो सरब माने ॥ समसती निधाने ॥ ६४॥

पद अर्थ : अगाध—अथाह। अबाध—जिसे कोई रोक न सके। बाध—सताना, दुःख देना, बाधा डालना। बाधा—१. दुःख, पीड़ा, २. रुकावट, मुकाबला। सरब मान—सारे जीव जिसका आदर करते हैं। निधान—ख़ज़ाना। समसत—सारे (गुण तथा पदार्थ)।

अर्थ : (हे प्रभु!) तुम्हें नमस्कार है; तू अथाह है, तेरे रास्ते में कोई रुकावट नहीं डाल सकता। तू आनन्द स्वरूप है (भाव, आनन्द ही तेरा स्वरूप है, तू सदा ही प्रफुल्लत रहता है)। सब जीव तुम्हें नमस्कार करते हैं। तू सब (गुणों तथा पदार्थों) का ख़ज़ाना है।६४।

नमसत्वं त्रिनाथे ॥ नमसत्वं प्रमाथे ॥
नमसत्वं अगंजे ॥ नमसत्वं अभंजे ॥ ६५॥

पद अर्थ : नमसत्वं—नमस+त्वं, नमस+त्वां, तुम्हें नमस्कार है। त्रिनाथ—निर+नाथ, जिस का कोई अन्य स्वामी नहीं। प्रमाथ—सब का नाश करने वाला (देखें छंद नं. १४६)। अगंज—अजय। अभंज—अ+भंज, जो तोड़ा जा सके (देखें छंद नं. ४)।

अर्थ : (हे प्रभु!) तुम्हें नमस्कार है; तेरा कोई अन्य स्वामी नहीं। तू सब का नाश करने वाला है। तुम से कोई किसी क्षेत्र में आगे नहीं बढ़ सकता, न ही तुम्हें कोई तोड़-फोड़ सकता है।६५।

नमसत्वं अकाले ॥ नमसत्वं अपाले ॥
नमो सरब देसे ॥ नमो सरब भेसे ॥ ६६॥

पद अर्थ : अकाल—काल रहित। अपाल—अ+पाल, जिसको किसी द्वारा रक्षा की आवश्यकता नहीं।

अर्थ : (हे प्रभु!) तुम्हें हमारी नमस्कार है; तुम्हें मौत छू नहीं सकती, (इसलिये) तुम्हें किसी रक्षक की आवश्यकता नहीं। हे प्रभु! तुम्हें नमस्कार है, तू सब देशों में विद्यमान है। (जीवों के सारे वेश) सारे तेरे ही वेश हैं।६६।

नमो राज राजे ।। नमो साज साजे ।।
नमो शाह शाहे ।। नमो माह माहे ।।६७।।

पद अर्थ : साज—रचना, सृष्टि। साज-साज—रचना का रचने वाला। माह—चन्द्रमा।

अर्थ : (हे प्रभु!) तुम्हें नमस्कार है; तू नृपों का नृप है। सारी सृष्टि को पैदा करने वाला है। तू राजाओं का राजा है तथा चन्द्रमा का चन्द्रमा है (भाव, चन्द्रमा को कोमल चांदनी देने वाला तू ही है)।६७।

नमो गीत गीते ।। नमो प्रीत प्रीते ।।
नमो रोख रोखे ।। नमो सोख सोखे ।।६८।।

पद अर्थ : गीत गीते—गीत का गीत, महान सुन्दर गीत (देखें छंद न. ४७)। प्रीत-प्रीत—प्यार का प्यार, महान उच्च प्रेम। रोख—रोष, गुस्सा, क्रोध। रोख-रोख—रोष का रोष, भयानक क्रोध-रूप। सोख—शुष्क, सूखा। सोख-सोख—सूखे का भी सूखा, बड़ा सूखा।

अर्थ : (हे प्रभु!) तुम्हें हमारी नमस्कार है; तू एक महान सुन्दर गीत रूप है (जो सारे जीवों को मुग्ध कर रहा है), तू एक महान उच्च प्रेम स्वरूप है (जो सारे संसार को पाल रहा है) तू महान भयानक क्रोध

रूप (भी) है (कि सारी सृष्टि तुम्हारे भय-आधीन चल रही है), तू भयानक सूखा भी है (सारे जगत का नाश भी करता है) ।६८।

नमो सरब रोगे ।। नमो सरब भोगे ।।
नमो सरब जीतं ।। नमो सरब भीतं ।। ६९।।

पद अर्थ : सरब जीत—सब को जीतने वाला। सरब भीत—जिस से सारे डरते हैं। रोग—दुःख, मौत का कारण। सरब भोग—सब जीवों में व्यापक होकर सब पदार्थों का भोग करने वाला।

अर्थ : (हे प्रभु!) तुम्हें हमारी नमस्कार है; तू सब जीवों की मौत का कारण है, तू सब जीवों में बैठकर जगत के सारे पदार्थों का भोग कर रहा है। हे प्रभु! तुम्हें नमस्कार है; तू सब को जीतने वाला है, सब जीव तुमसे डरते हैं।६९।

नमो सरब गिआनं ।। नमो परम तानं ।।
नमो सरब मंत्रं ।। नमो सरब जंत्रं ।।७०।।

पद अर्थ : सरब गिआन—जिसको सब (जीवों के दिल का) ज्ञान है; जो सब के दिल की जानता है, सर्वज्ञ। तान—(expance, extension) विस्तार। परम तान—सब से बड़े विस्तार वाला। सरब मंत्र—सब को वश में करने वाला साधन (देखें छंद नं. ५०)।

अर्थ : (हे प्रभु!) तुम्हें नमस्कार है; तू सब जीवों के दिल की जानता है। तू (जगत-रूप) विस्तार वाला है। तू ही (भाव, तेरा ही नाम) सब को वश में करने वाला साधन है।७०।

नमो सरब द्रिसं ।। नमो सरब क्रिसं ।।
नमो सरब रंगे ।। त्रिभंगी अनंगे ।।७१।।

पद अर्थ : द्रिस—जब यह शब्द किसी 'समास' के अन्त में प्रयुक्त हो, तो इसका अर्थ होता है 'देखने वाला, ध्यान रखने वाला'। सरब द्रिस—(surveying all, superintending all) सब का ध्यान रखने वाला। क्रिस—(to drog towards oneself, to attract) अपनी ओर आकर्षित करना। सरब क्रिस—सब को अपनी तरफ खींचने वाला, आकृष्ट करने वाला। त्रिभंगी—तीन भवनों का नाश करने वाला (देखें छंद नं. १८८)। अनंग—अन+अंग, अंग रहित।

अर्थ : (हे प्रभु!) तुम्हें नमस्कार है; तू सब जीवों का ध्यान रखने वाला है। तू सब जीवों को अपनी ओर आकृष्ट करने वाला है। तू प्रत्येक रंग में मौजूद है। तीनों भवनों को नष्ट करने वाला है, (जीवों के शरीर जैसा) तेरा कोई शरीर नहीं है।७१।

नमो जीव जीवं॥ नमो बीज बीजे॥
अखिज्जे अभिज्जे॥ समसतं प्रसिज्जे॥७२॥

पद अर्थ : जीव—१. प्राणी २. प्राण, आत्मा। जीव जीव—जीवों का जीव; जीवों का प्राण। बीज बीज—बीज का वास्तविक मूल, मूल कारण। खिदि—(to afflict, strike, press down) दबाव डालना, दुःख देना। खिदय—जिस पर दबाव डाला जा सके। अखिज्ज—(सं: अखिदय) जिस पर दबाव न डाला जा सके, जिस को दुःख न दिया जा सके। भिद—तोड़ना, टुकड़े करना। भिदय—जिसे तोड़ा जा सके। अभिज्ज—(सं. अभिदय) जिसके टुकड़े न किये जा सकें। प्रसिज्जे—(सं. प्रसीदै) प्रसन्न करता है, सब पर कृपा करता है।

अर्थ : (हे प्रभु!) तुम्हें नमस्कार है; तू सब जीवों का प्राण है, तू सब का मूल कारण है। तुझे कोई दुःख नहीं दे सकता। तेरा कोई विभाजन नहीं कर सकता। तू सब जीवों पर कृपा करने वाला है।७२।

क्रिपालं सरूपे कुकरमं प्रणासी॥
सदा सरबदा रिधि सिधं निवासी॥७३॥

पद अर्थ : क्रिपाल—क्रिपा+आलय, कृपा का घर। सरूप—स्वरूप, हस्ती। कुकरम—मन्द कर्म। प्रणासी—नाश करने वाला। सरबदा—सदा। रिधि—(ऋद्धि) आत्मिक बल। सिधि—आठ आत्मिक बल, जो योगी समाधि द्वारा प्राप्त करते हैं।७३।

अर्थ : (हे प्रभु!) तेरा अस्तित्व ही ऐसा है कि तू कृपा का घर है, तू मन्द कर्मों (बुराईयों) का नाश करने वाला है। ऋद्धियाँ तथा सिद्धियाँ सदा ही तुझ में निवास करती हैं।७३।

चरपट छंद॥ त्व प्रसादि॥
अंम्रित करमे॥ अंब्रित धरमे॥
अखल्ल जोगे॥ अचल्ल भोगे॥७४॥

पद अर्थ : अंम्रित (immortal, imperishable) अटल, न नष्ट होने वाला। अंम्रित करम—वह जिस के किये हुये कर्म अटल हैं। अंब्रित—(unchecked) जिस में रुकावट न डाली जा सके। धरम— कानून, नियम। व्रित—(to ward off, keep away, check) रोकना। इसी 'धातु' के साथ पहले 'नि' लगाने से शब्द 'निवारन' बनता है। ब्रित—रोका हुआ। अंब्रित धरम—जिस के नियमों में कोई रुकावट न डाली जा सके। अखल्ल—(सं: अखिल—whole, entire) सारा, पूर्ण। जोग—मेल। अखल्ल जोग—जिस का मेल सारे जगत के साथ है। अचल्ल—सदा कायम रहने वाला। भुज—(to rule, govern) आज्ञा करनी। भोग—(Government) सरकार, राज्य, हकूमत। अचल्ल भोग—वह जिसका राज्य सदा (स्थिर) रहने वाला है।

अर्थ : (हे प्रभु!) तेरे कार्य सदा अटल हैं, तेरे कानून में कोई बाधा नहीं डाल सकता। तू सारे ही जगत के साथ मिला हुआ है, तेरा राज्य सदा स्थिर रहने वाला है।७४।

अचल्ल राजे॥ अटल्ल साजे॥
अखल्ल धरमं॥ अलक्ख करमं॥७५॥

पद अर्थ : साज—रचना। धरम—कानून, नियम। अखल्ल—सम्पूर्ण, जिस में कोई कमी नहीं। अलक्ख—(having no particular marks) विशेष चिन्हों से रहित।

अर्थ : (हे प्रभु!) तेरा राज्य तथा तेरी रचना अटल हैं। तेरे नियम पूर्ण हैं (भाव, तेरे नियमों में कोई कमी नहीं है), तेरे कार्य अथाह हैं।७५।

सरबं दाता॥ सरबं गिआता॥
सरबं भाने॥ सरब माने॥७६॥

पद अर्थ : भान—सूर्य, रौशनी देने वाला। मान—माननीय, आदर योग्य।

अर्थ : (हे प्रभु!) तू सब जीवों का दाता है; तू सब के दिलों की जानने वाला है, तू सब को प्रकाश देने वाला है। सब जीव तेरी पूजा करते हैं।७६।

सरबं प्राणं॥ सरबं त्राणं॥
सरबं भुगता॥ सरबं जुगता॥७७॥

पद अर्थ : त्राण—सहारा, आसरा, आश्रय। भुगता—आज्ञा देने वाला, राजा (देखें छंद नं. ७४ 'भोग')। जुगता—मिला हुआ।

अर्थ : (हे प्रभु!) तू सब जीवों का प्राण है और सब का सहारा है। सब जीवों पर तेरी आज्ञा चलती है, तू सब जीवों के साथ सदा रहने वाला है।७७।

सरबं देवं॥ सरबं भेवं॥
सरबं काले॥ सरबं पाले॥७८॥

पद अर्थ : देव—प्रकाश रूप, आदर योग्य। भेव—दिल का भेद। सरबं भेव—सब के दिल की जानने वाला।

अर्थ : (हे प्रभु!) तू सब जीवों के लिये पूजनीय है, तू सब के दिल का भेद जानता है। सब का नाश करने वाला है तथा सब की रक्षा भी करने वाला है।७८।

रूआल छंद॥ त्व प्रसादि॥

आदि रूप अनादि मूरति अजोनि पुरख अपार॥
सरब मान त्रिमान देव अभेव आदि उदार॥
सरब पालक सरब घालक सरब को पुनि काल॥
जत्र तत्र बिराजही अवधूत रूप रसाल॥७९॥

पद अर्थ : अनादि—अन+आदि, जिस का मूल खोजा न जा सके। मान—माननीय, आदर योग्य। सरब मान—सब जीवों के द्वारा आदर योग्य। त्रिमान—त्रि+मान। त्रि—तीन लोकों के जीव। देव—प्रकाश रूप। अभेव—जिस का भेद न पाया जा सके। उदार—खुले दिल वाला। घालक—नाश करने वाला। पुनि—फिर, दुबारा। काल—मौत। जत्र तत्र—जहाँ तहाँ, प्रत्येक स्थान पर। बिराजही—तू मौजूद है। अवधूत—जिसने माया के बन्धन छोड़

दिये हों, जो माया के बन्धनों से परे है। रसाल—रस+आलय, रसों का घर, रसों का उद्गम। पुरख—सब में व्यापक।

अर्थ : (हे प्रभु!) तेरा अस्तित्व सब से पहले का है। तेरे स्वरूप का आदि कोई नहीं बता सकता, तू योनियों में नहीं आता, सर्वव्यापक है तथा अनन्त है।

सब जीव तेरे सम्मुख झुकते हैं। तीनों लोकों के जीव तेरी पूजा करते हैं। तू प्रकाश स्वरूप है, तेरा किसी ने भेद नहीं जाना। तू सब का मूल है। तू विशाल हृदय वाला है।

सब जीवों का पालन करने वाला तथा नाश करने वाला तू ही है, तू ही सब का काल है।

(हे प्रभु!) तू प्रत्येक स्थान पर उपस्थित है, सब रसों का घर है पर तू स्वयं सब रसों के बन्धन से मुक्त है।७९।

नाम ठाम न जाति जाकर रूप रंग न रेख॥
आदि पुरख उदार मूरति अजोनि आदि असेख॥
देस और न भेस जाकर रूप रेख न राग॥
जत्र तत्र दिसा विसा होइ फैलिओ अनुराग॥८०॥

पद अर्थ : ठाम—स्थान। जाकर—जिस की। रेख—निशान, लकीर। पुरख—सब जीवों में व्यापक। असेख—अ+सेख। सेख—(anything omitted to be said) कोई बात जो बतानी रह गयी हो, कमी, अभाव। असेख—जिस में कोई कमी न हो, सम्पूर्ण। जत्र तत्र—प्रत्येक स्थान। दिसा विसा—दिशा, विदिशा। दिशा—तरफ़ (उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम)। विदिश—कोना। अनुराग—प्यार, स्नेह। फैलिओ—फैला हुआ है। होइ अनुराग—स्नेह रूप होकर। राग—मोह।

अर्थ : (हे प्रभु!) तू ऐसा है जिस का न कोई एक नाम है न कोई एक स्थान है; न रूप है, न रंग है, न निशान है। तू सब का मूल है, सब में उपस्थित है। उदारता तेरा स्वरूप है। तू जन्म के चक्र में नहीं पड़ता। तू आदि काल से है। तेरे स्वरूप में कोई कमी नहीं है। (हे प्रभु! तू ऐसा है) जिस का न कोई एक देश है, न कोई एक वेश है, न रूप है, न रेख है, न ही तुझे कोई मोह है। हे प्रभु! तू प्रत्येक स्थान पर, प्रत्येक कोने में स्नेह स्वरूप होकर फैला हुआ है (व्यापक है)।८०।

नाम काम बिहीन पेखत धाम हूं नहि जाहि॥
सरब मान, सरबत्र मान, सदैव मानत ताहि॥
एक मूरति अनेक-दरसन, कीन रूप अनेक॥
खेलु खेलि, अखेलु खेलनि, अंत को फिरि एकु॥८१॥

पद अर्थ : काम—इच्छा, वासना। बिहीन—बिना। पेखत—दिखते हैं। धाम—ठिकाना। हूँ—भी। जाहि—जिस का। सरबत्र—प्रत्येक स्थान पर। सदैव—सदा+एव, सदा ही। मानत—मानते हैं, सिर झुकाते हैं। ताहि—उस को। एक मूरति—एक स्वरूप वाला, एक ही। अनेक-दरसन—अनेक स्वरूपों वाला। खेलु—तमाशा, खेल। खेलि—खेलकर। अखेलु—अ+खेलु, खेल का नाश। खेलनि—(प्रभु जी) खेलते हैं। अंत को—आखिर में। फिरि—फिर।

अर्थ : (वह प्रभु ऐसा है) जिसका कोई एक नाम नहीं, जिसे कोई इच्छा, वासना दबा नहीं सकती, जिस का कोई एक विशेष ठिकाना भी दिखायी नहीं देता। (उस प्रभु को) सब जीव नमस्कार करते हैं; प्रत्येक स्थान पर उसकी पूजा होती है। जीव सदैव उस के सम्मुख शीश झुकाते हैं।

(वह प्रभु) स्वयं एक है पर अनेक मूर्तियों (शक्लों) में दिख रहा है, उसने अपने कई रूप बनाये हुये हैं।

(प्रभु जी) संसार की रचना का खेल खेलकर जगत की प्रलय का तमाशा भी रच देते हैं तथा अन्त में फिर एक (आप ही रह जाते हैं)।८१।

देव भेव न जानही जिह बेद अउर कतेब॥
रूप रंग न जाति पाति सु जानही किह जेब॥
तात मात न जाति जाकर जनम मरन बिहीन॥
चक्क्र बक्क्र फिरै चतुर चक मानही पुरि तीन॥८२॥

पद अर्थ : भेव—भेद। जानही—जानते। जिह—जिस (प्रभु) का। कतेब—सामी मतों की धार्मिक पुस्तकें (अंजील, तौरैत, जंबूर, कुरान)। पाति—कुल। किह—कैसी। जेब—(शक्ल) (कैसा लगता है, जचता है) रूप। तात—पिता। जाकर—जिस (प्रभु) का। बिहीन—बिना, रहित। बक्क्र—वक्र, टेढा, भयानक। चतुर—चार। चक्क्र—कूट। मानही—मानते हैं, सिर झुकाते हैं।

अर्थ : (वह प्रभु ऐसा है) जिस का भेद न देवता जानते हैं, न (हिन्दु मत की धार्मिक पुस्तकें) वेद, न सामी मत की धार्मिक पुस्तकें। कोई भी नहीं जानता कि उसका रूप कैसा है, रंग कैसा है, जाति तथा कुल कैसे हैं तथा आकृति कैसी है।

(वह प्रभु ऐसा है) जिस की न माता है, न पिता है तथा न कोई जाति है : वह जन्म मरन के चक्र में नहीं आता। उस प्रभु का (काल रूप) भयानक चक्र चारों धामों में विचरन कर रहा है। घूम रहा है; तीनों भवनों के जीव उस (प्रभु) के सम्मुख झुकते हैं।८२।

लोक चउदह कै बिखै जग जापही जह जापु॥
आदि देव अनादि मूरति थापिओ सबै जिह थाप॥
परम रूप पुनीत मूरति पूरन पुरख अपार॥
सरब बिश्व रचिओ सुयंभव गड़न भंजनहार॥८३॥

पद अर्थ : लोक चउदह—चौदह लोक; (पुरातन हिन्दु पुस्तकों के विभाजन के अनुसार १४ लोक हैं: ७ पृथ्वी से ऊपर हैं, एक दूसरे के ऊपर, ७ पृथ्वी के नीचे) भाव, सारी सृष्टि। कै बिखै—के बीच। जग—संसार, भाव जगत के जीव। जापही—जपते (हैं)। जिह—जिस प्रभु का। जिह सबै थाप थापिओ—जिस प्रभु ने सारी रचना रची है। परम रूप—सबसे ऊँची हस्ती। पुनीत—पवित्र। पुरख—सब में व्यापक। बिश्व—जगत, सृष्टि। सुयंभव—जो अपने आप से प्रक्ट हुआ है। (स्वयं—अपने आप; भू—जन्म, जिस का जन्म अपने आप से हुआ है)। देव—पूज्य हस्ती।

अर्थ : (वह प्रभु ऐसा है) जिस का जाप चौदह ही लोकों में संसार के सारे जीव कर रहे हैं, जो सबसे पहला पूज्य अस्तित्व (हस्ती) है। जिस के स्वरूप का मूल कोई खोज नहीं सका, तथा जिसने सारी सृष्टि की रचना की है। वह प्रभु सर्वोच्च अधिकार वाला है, पवित्र स्वरूप वाला है, पूर्ण है, सब में व्यापक है तथा अनन्त है।

सारा संसार उस प्रभु ने ही बनाया है, वह स्वयं अपने आप से प्रक्ट हुआ है, (पर जगत की) रचना करने वाला भी वही है, तथा नाश करने वाला भी वही है।८३।

काल-हीन कला-संजुगत अकाल पुरख अदेस॥
धरम-धाम सु भरम रहित अभूत अलख अभेस॥

अंग राग न रंग जाकहि जाति पाति न नाम॥
गरब-गंजन दुसट भंजन मुकति-दाइक काम॥८४॥

पद अर्थ : काल-हीन—मौत से रहित। कला—सामर्थ्य। संजुगत—साथ। अदेस—अ+देस, जिस का कोई एक देश नहीं। धाम—निवास, स्थान। अभूत—अ+भूत, तत्त्वों से रहित। अलख—(invisible) अदृष्ट। जाकहि—जिस (प्रभु) का। पाति—कुल। गरब—अहंकार। गंजन—तोड़ने वाला। मुकति-दाइक—मुक्ति देने वाला। काम— कामदायक, कामना पूर्ण करने वाला। अंग राग—शरीर का मोह। [अंग—शरीर। राग—मोह।]

अर्थ : प्रभु मौत रहित है, सम्पूर्ण सामर्थ्य वाला है, काल रहित है, सब में व्यापक है, तथा उसका कोई एक देश नहीं है।

प्रभु धर्म का घर है, भ्रमों से ऊपर है; न वह इन पाँच तत्त्वों से बना है, न वह दिखता है तथा न ही उसका कोई परिधान (वेश) है।

(वह प्रभु ऐसा है) जिस को शरीर का मोह नहीं, न ही उसका कोई रंग है, न कोई जाति तथा कुल, तथा न ही कोई एक नाम है।

वह प्रभु (अहंकारियों का) अहंकार तोड़ने वाला है। दुष्टों का नाश करने वाला है। मुक्ति देने वाला है तथा कामना पूरी करने वाला है।८४।

आप-रूप अमीक अन-उसतति एक पुरख अवधूत॥
गरब-गंजन सरब-भंजन आदि-रूप असूत॥
अंग-हीन अभंग अनातम एक पुरख अपार॥
सरब-लाइक सरब-घाइक सरब को प्रतिपार॥८५॥

पद अर्थ : आप—(सं: आत्म) संस्कृत शब्द 'आत्म' से प्राकृत रूप

'आप' है; संस्कृत शब्द 'आत्म-भू' का अर्थ है 'अपने आप से पैदा हुआ'; इसी तरह 'आप-रूप'—वह जिस का स्वरूप अपने आप से बना है। अमीक—गहरा। उसतति—बड़ाई, प्रशंसा, स्तुति। अन-उसतति—स्तुति से परे है। अवधूत—माया के बंधनों से रहित। असूत—अ+सूत। सूत—पैदा हुआ (सू—जन्म लेना)। असूत—अजन्मा। अनातम—अन+आतम। आतम—जीवात्मा। अनातम—वह जिसमें जीवात्मा का अलग अपना अस्तित्व नहीं है। लाइक—योग्य, स्मर्थ। घाइक—नाश करने वाला। प्रतिपार—पालक, पालने वाला।

अर्थ : प्रभु अपने आप से प्रगट हुआ है, गहन है (भाव उसका भेद कोई जीव जान नहीं सकता), वह प्रशंसा से परे है (भाव, कोई उसकी स्तुति करने में समर्थ नहीं है)। वह एक आप ही है, सब में व्यापक है तथा माया के बन्धनों से परे है।

प्रभु अहंकारियों का अहंकार खंडित करने वाला है। सब का नाश करने वाला है। आदि काल से विद्यमान है, तथा अजन्मा है।

शरीर रहित तथा अविनाशी है। उसमें जीवों के विभिन्न अस्तित्व नहीं हैं (क्योंकि वास्तव में) वह स्वयं एक ही है, सब जीवों में स्वयं विद्यमान है तथा अनन्त है।

प्रभु सब कुछ करने में स्मर्थ है, सब को नष्ट करने वाला है, तथा सब का पालन करने वाला भी है।८५।

सरब गंता सरब हंता सरब ते अनभेख॥
सरब सासत्र न जानही जिह रूप रंग अरु रेख॥
परम बेद पुरान जा कहि नेति भाखत नित॥
कोटि सिंम्रिति पुराण सासत्र न आवई वहु चिति॥८६॥

पद अर्थ : गंता—(धातु 'गम'—जाना) जाने वाला, पहुँचने वाला। सरब गंता—सब तक पहुँचने वाला। हंता—('हन'—मारना) मारने वाला। सरब ते—सबसे। अन—अन्य, निराला। जानही—जानते हैं। जिह—जिस (प्रभु) का। रेख—रेखा, निशान। जा कहि—जिस को। नेति—न+इति। इति—इस जैसा। नेति—इस जैसा नहीं, भाव, जिस जैसा अन्य कोई न हो। भाखत—कहते हैं। कोटि—करोड़ों। आवई—आता है। वहु—प्रभु। चिति—चित में, मन में, विचार में। न आवही वहु चिति—वह प्रभु चित में नहीं आता, भाव उस प्रभु का सम्पूर्ण स्वरूप समझ में नहीं आता।

अर्थ : प्रभु सब जीवों तक पहुँचने वाला है, सबको मारने वाला है, तथा उसका वेश सबसे निराला है।

(वह प्रभु ऐसा है) कि सारे ही शास्त्र उसका न रूप जानते हैं, न रंग और न ही निशान। वह ऐसा है जिसके सम्बन्ध में वेद तथा पुराण कहते हैं कि वह सदा सर्वोच्च है, तथा उसके समान कोई नहीं है।

करोड़ों स्मृतियों, पुराणों तथा शास्त्रों द्वारा भी उसका वास्तविक स्वरूप समझ में नहीं आ सकता।८६।

मधुभार छंद॥ त्व प्रसादि॥

गुण गण उदार॥ महिमा अपार॥
आसन अभंग॥ उपमा अनंग॥८७॥

पद अर्थ : गण—समूह। गुण गण—गुणों का समूह, असीम गुणों (का स्वामी)। उदार—विशाल हृदय वाला। महिमा—बड़ाई। अभंग—अ+भंग, अविनाशी, नष्ट न होने वाला। उपमा—गुणों का मुकाबला (किसी अन्य से)। अनंग—अन+अंग, अंग से रहित, शरीर के बिना।

अर्थ : (हे प्रभु!) तू अनन्त गुणों का स्वामी है, तथा खुले दिल

वाला है। तेरी महिमा असीम है, (भाव तू कितना बड़ा है, यह बात कही नहीं जा सकती)। तेरा आसन स्थिर है। तेरे गुणों की तुलना करने के लिये ऐसा कोई नहीं है (जिस के गुण बताये जा सकें)।८७।

अनुभव प्रकास॥ निस दिन अनास॥
आजान बाहु॥ शाहान शाहु॥८८॥

पद अर्थ : अनुभव—(knowledge derived from personal observation or experiment) अपने आप से प्राप्त हुआ ज्ञान। प्रकास—ज्ञान, रौशनी। निस—रात। आजान—(birth, generating cause) पैदा करने का कारण। बाहु—वाह, (bearing, carrying यह शब्द 'वाह' इस भाव में किसी 'समास' के अन्त में प्रयोग किया जाता है) ले जाने वाला, रखने वाला। आजान बाहु—वह जो जगत रचना के वसीलों को अपने वश में रखता है, जिस के अपने वश में जगत-रचना के साधन हैं।

अर्थ : (हे प्रभु!) तुम्हें अपने आप से ही ज्ञान प्राप्त है, तू रात दिन (प्रत्येक समय) मौजूद है, तथा अविनाशी है। हे प्रभु! जगत-रचना के सारे साधन तेरे अपने वश में हैं। तू शाहों का भी शाह है।८८।

राजान राज॥ भानान भानु॥
देवान देव॥ उपमा महान॥८९॥

पद अर्थ : भानु—सूर्य। भानान भानु—सूर्यों का सूर्य, सूर्य को भी प्रकाश देने वाला। देव—पूज्य।

अर्थ : (हे प्रभु!) तू राजाओं का भी राजा है। सूर्यों का भी सूर्य है, (भाव, सूर्य को भी प्रकाशित करने वाला तू ही है)। तू देवताओं का भी पूज्य है (भाव, देवता भी तुम्हें ही पूजते हैं), तेरी उपमा महान है।८९।

इंद्रान इंद्र॥ बालान बाल॥
रंकान रंक॥ कालान काल॥९०॥

पद अर्थ : इन्द्र—१. राजा, २. देवताओं का राजा। बाल—बाला, ऊँचा। रंक—कंगाल। काल—मौत।

अर्थ : (हे प्रभु! इन्द्र सब देवताओं का राजा कहा जाता है पर) तू इन्द्र का भी राजा है। ऊँचे से ऊँचा है। हे प्रभु! तू कंगालों से भी कंगाल है, (भाव, महा दरिद्र में भी तू आप ही है) तथा मौत की मौत है (भाव, मौत भी तेरी ही आज्ञा में है) तेरी ही बनायी हुयी है।९०।

अनभूत अंग॥ आभा अभंग॥
गति मिति अपार॥ गुण गण उदार॥९१॥

पद अर्थ : अनभूत—अन+भूत। भूत—पाँच तत्त्व जिन से यह सारी सृष्टि बनी है। अन-भूत—तत्त्वों से निराला। अंग—शरीर, अस्तित्व। आभा—चमक, प्रकाश। अभंग—नाश रहित। गति—अवस्था। मिति—माप। अपार—असीम, अनन्त।

अर्थ : (हे प्रभु!) तेरा अस्तित्व ऐसा है, जो इन (जगत रचना वाले) पाँच तत्त्वों से अलग है। तेरा प्रकाश कभी नष्ट न होने वाला है। (हे प्रभु!) तू कैसा है तथा कितना महान है, यह तथ्य अवर्णनीय है। तू अनन्त गुणों का स्वामी है। तू उदार है।९१।

मुनि गण प्रणाम॥ निरभै निकाम॥
अति दुति प्रचंड॥ मिति गति अखंड॥९२।

पद अर्थ : मुनि—तपस्वी, ऋषि। मुनि गण—तपस्वियों का समूह,

बहुत सारे तपस्वी। निरभै—डर रहित। निकाम—निष्काम, कामना रहित। दुति—प्रकाश, तेज। अति प्रचंड—बहुत ही तेज़ (असहनीय, जो सहा न जा सके)। अखंड—अटूट।

अर्थ : (हे प्रभु!) असंख्य तपस्वी तेरे ही सम्मुख झुकते हैं, तुझे न कोई डर है, न कोई कामना। हे प्रभु! तेरा तेज प्रताप किसी के द्वारा भी सहा नहीं जा सकता; (कोई सह नहीं सकता) तू जितना महान है, तथा जैसा है, उस अवस्था को कोई कम नहीं कर सकता।९२।

आलिस्य करम॥ आद्रिश्य धरम॥
सरबा भरणाढय॥ अनडंड बाढय॥९३॥

पद अर्थ : बाढय—(assuredly) सत्य में, वास्तविकता में। अनडंड—(अदंढ) अन+डंड। दंड—सज़ा, ताड़ना। अनडंड—सज़ा रहित। सरबा भरणाढय—सरबा+आभरण+आढय। आभरण—गहने, सजावट। आढय—(rich in abounding, in possessing abundantly, भरपूर। इस भाव में यह शब्द प्रायः किसी समास के अन्त में प्रयुक्त होता है) भरपूर। आलिस्य—(want of energy) किसी विशेष उद्यम का अभाव। आलिस्य करम—वह (प्रभु) जिसके कर्मों में किसी विशेष उद्यम का अभाव है। अद्रिश्य—(that which can be put forth as a Model) जो नमूने की तरह प्रस्तुत किया जा सके। आदर्श—(a pattern, model, type) नमूना, उदाहरण। धरम—फ़र्ज़, कर्त्तव्य (भाव, कर्त्तव्य को निभाना)।

अर्थ : (हे प्रभु!) तुझे अपने कार्यों में विशेष उद्यम करने की आवश्यकता नहीं है, (फिर भी) तेरा कर्मशील होना एक आदर्श है (भाव, दुनिया के लिये मिसाल है, उदाहरण है)। तू (सृष्टि की) सारी सजावटों, सारे गहनों से भरपूर है, (पर कोई तेरी तरफ़ दृष्टि लगा कर देख सके,

ऐसी किसी की हिम्मत नहीं) विश्वसनीय तौर पर तुम्हें कोई ताड़ना नहीं कर सकता।९३।

चाचरी छंद॥ त्व प्रसादि॥

गुबिंदे॥ मुकंदे॥ उदारे॥ अपारे॥९४॥
हरीअं॥ करीअं॥ त्रिनामे॥ अकामे॥९५॥

पद अर्थ : गोबिंद—गो १. गाय, २. पृथ्वी। विंद—जानने वाला। गोविंद—पृथ्वी (के जीवों के दिल) को जानने वाला। मुकंद—(सं: मुकुंद) मुकु—मुक्ति। मुकंद—मुक्ति देने वाला। हरीअं—(सब का) नाश करने वाला। करीअं—सब की रचना करने वाला। त्रिनाम—निर-नाम, जिसका कोई एक नाम न हो। अकामे—अ+कामे। काम—कामना। अकाम—कामना रहित।

अर्थ : (हे प्रभु!) तू पृथ्वी के जीवों के दिल को जानने वाला है। तू जीवों को मुक्ति देने वाला है। तू खुले दिल वाला है तथा अनन्त है।९४।

(हे प्रभु!) तू सब को नष्ट करने वाला (भी) है, तथा पैदा करने वाला (भी)। तेरा कोई एक नाम नहीं है, तथा कोई कामना तुझे प्रभावित कर नहीं सकती।९५।

भुजंग प्रयात छंद॥

चत्र चक्क्र करता॥ चत्र चक्क्र हरता॥
चत्र चक्क्र दाने॥ चत्र चक्क्र जाने॥९६॥

पद अर्थ : चत्र—चार। चक्क्र—दिशा, तरफ़। हरता—नाश करने वाला। दाने—दान करने वाला, दाता।

अर्थ : (हे प्रभु!) तू चारों दिशाओं के जीवों को पैदा करने वाला

है, तथा नाश करने वाला (भी) है। तू चारों दिशाओं के जीवों को देय पदार्थ देने वाला है, तथा उनके दिल की जानने वाला है।९६।

चत्त चक्क्र वरती॥ चत्त चक्क्र भरती॥
चत्त चक्क्र पाले॥ चत्त चक्क्र काले॥९७॥

पद अर्थ : वरती—मौजूद, वर्तमान, स्थित। भरती—पालने वाला। काल—मौत। पाले—रक्षा करने वाला।

अर्थ : (हे प्रभु!) तू चारों दिशाओं में मौजूद है, तथा सब जीवों का पालक है, रक्षक (भी) है, तथा नाश करने वाला (भी) है।९७।

चत्त चक्क्र पासे॥ चत्त चक्क्र वासे॥
चत्त चक्क्र मानयै॥ चत्त चक्क्र दानयै॥९८॥

पद अर्थ : पासे—ओर, तरफ़। मानयै—माना जाने वाला। दानयै—देने वाला, सब वस्तुएं देने वाला।

अर्थ : (हे प्रभु!) तू चारों दिशाओं में प्रत्येक स्थान पर है। प्रत्येक स्थान पर जीव तेरी ही पूजा कर रहे हैं, तथा तू ही सब को देय पदार्थ देने वाला है।९८।

चाचरी छंद॥

न सत्रै॥ न मित्रै॥ न भरमं॥ न भित्रै॥९९॥
न करमं॥ न काए॥ अजनमं॥ अजाए॥१००॥

पद अर्थ : सत्रै—शत्रु। भरम—भुलावा, भटकना, भ्रम। भित्रै—भित्ति, दीवार (भाव, दुविधा)। काए—काया, शरीर। अजाए—अ+जाए। जाए—स्त्री, जाया। अजाए—जो स्त्री से पैदा नहीं हुआ।

अर्थ : (हे प्रभु!) न तेरा कोई शत्रु है, न मित्र (क्योंकि तेरी समानता वाला कोई नहीं है); न तुझे कोई भ्रम है, न तेरे अन्दर दुविधा है।९९।

(हे प्रभु!) न ही तू कर्मों के अधीन है, न ही कर्मों के कारण तुझे शरीर धारण करना पड़ता है। हे प्रभु! तू जन्म के चक्र में नहीं पड़ता, तू स्त्री से पैदा नहीं हुआ॥१००॥

न चित्रै ॥ न मित्रै ॥ परे हैं ॥ पवित्रै ॥१०१॥
प्रिथीसै ॥ आदीसै ॥ अद्रिसै ॥ अक्रिसै ॥१०२॥

पद अर्थ : चित्रै—तस्वीर। परे—दूर। पवित्रै—शुद्ध, निर्मल। प्रिथीस—प्रिथी+ईस, पृथ्वी+ईश, पृथ्वी का स्वामी। आदीस—आदि+ईश्वर, आदि काल का स्वामी। अद्रिस—अ+द्रिस, न दिखायी देने वाला। अक्रिस—अ+क्रिस, कमज़ोर (कृश) न होने वाला। क्रिस—कृश, कमज़ोर।

अर्थ : (हे प्रभु!) तेरा कोई चित्र नहीं (बन सकता), तेरा कोई मित्र नहीं (क्योंकि तेरे बराबर का कोई नहीं), तू सब जीवों से परे है (भाव, निर्लेप है) तथा (शुद्ध) पवित्र-आत्मा है।१०१।

(हे प्रभु!) तू पृथ्वी का स्वामी है, आदि काल से स्वामी है, तू अदृश्य है, तथा कभी कमज़ोर न होने वाला है।१०२।

भगवती छंद ॥ त्व प्रसादि ॥

कि आछिज देसै ॥ कि आभिज भेसै ॥
कि आगंज करमै ॥ कि आभंज भरमै ॥१०३॥

पद अर्थ : आछिज—अछिज़, पुराना न होने वाला, नाश न होने वाला। आभिज—अभिज, अ+भिज, (देखें छंद नं. ७२); जिस को नष्ट न किया जा सके। आछिज देस—वह जिसका देश कभी नष्ट होने वाला

नहीं। आभिज भेस—वह जिसका परिधान कभी नष्ट होने वाला नहीं। आगंज—अगंज, अविजित। करम—धार्मिक रीतियाँ। आगंज करम—वह, जिसको धार्मिक रीतियाँ वश में नहीं कर सकतीं। आभंज—अभंज, अ+भंज, जो तोड़ा न जा सके। अभंज-भरम—वह जिसे कोई भ्रम तोड़ (भाव, डावांडोल) नहीं कर सकता।

अर्थ : (हे प्रभु!) न तेरा देश नष्ट होने वाला है न तेरा वेश नष्ट होने वाला है। कोई धार्मिक रीतियाँ तुझे वश में नहीं कर सकतीं तथा कोई वहम-भ्रम तुम्हें डावांडोल नहीं कर सकता।१०३।

कि आभिज्ज लोकै॥ कि आदित्त सोकै॥
कि अवधूत बरनै॥ कि बिभूति करनै॥१०४॥

पद अर्थ : आभिज्ज—अभिज, न टूटने वाला (देखें छंद न. ७२)। लोक—देश। आदित्त—(सं. आदित्य) सूर्य। सोकै—सुखाने वाला। बिभूति—ऐश्वर्य, प्रताप, तेज। करन—कारण, साधन। अवधूत (देखें छंद नं. ७९) जिस पर दुनिया का मोह प्रभाव नहीं डाल सकता। बरन—स्वरूप। अवधूत बरन—ऐसा अस्तित्व जिस को सांसारिक मोह प्रभावित न कर सके।

अर्थ : (हे प्रभु!) तेरा देश अविनाशी है, तू सूर्य (के तेज) को भी सुखाने (नष्ट करने) वाला है। तेरा अस्त्तिव ऐसा है, जिस को माया का मोह प्रभावित नहीं कर सकता। तू ऐश्वर्य का स्रोत है।१०४।

कि राजं प्रभा हैं॥ कि धरमं धुजा हैं॥
कि आसोक बरनै॥ कि सरबा अभरनै॥१०५॥

पद अर्थ : प्रभा—आभा, चमक, प्रकाश, तेज़। धुजा—(A distinguished person, the flag or ornament) कोई प्रसिद्ध व्यक्ति,

झंडा, गहना। नोट—'धुजा' का अर्थ 'गहना' तब लिया जाता है जब इस का प्रयोग किसी 'समास' के अंत में हुआ हो; जैसे 'कुल-धुजा'—कुल का गहना; इसी तरह 'धरम-धुजा'—(धर्म-ध्वज) धर्म का गहना, धर्म को सुशोभित करने वाला। आसोक—असोक, अ+सोक, चिंता रहित। बरन—स्वरूप। अभरनै—आभरन, गहना, सौन्दर्य को बढ़ाने वाला।

अर्थ : (हे प्रभु!) राजाओं में भी तेरा ही तेज दिखायी दे रहा है। तू धर्म को सुन्दर बनाने वाला है, तेरा स्वरूप चिन्ता से रहित है। तू सब (जीवों) का आभूषण है।१०५।

कि जगतं क्रिती हैं॥ कि छत्रं छत्री हैं॥
कि ब्रहमं सरूपै॥ कि अनभउ अनूपै॥१०६॥

पद अर्थ : क्रिती—पैदा करने वाला। छत्रं छत्री—वीरों का वीर, महान योद्धा। ब्रहम—(final beautitude) मूल-सुन्दरता। अनभउ—अनुभव, वह ज्ञान जो अपने आप से उत्पन्न हो। अनूप—उपमा रहित, बे-मिसाल।

अर्थ : (हे प्रभु!) तू जगत का कर्ता है। योद्धाओं का योद्धा है। तेरा स्वरूप सौन्दर्य का मूल है। तू उपमा रहित, आत्मज्ञानी है।१०६।

कि आदि अदेव हैं॥ कि आपि अभेव हैं॥
कि चित्रं बिहीनै॥ कि एकै अधीनै॥१०७॥

पद अर्थ : आदि—सब का मूल। अदेव—अ+देव, जिस से ऊपर अन्य कोई देवता नहीं। अभेव—जिस का भेद न जाना जा सके। चित्र—तस्वीर। बिहीन—बिना। एकै अधीन—एक अपने आप के वश में।

अर्थ : (हे प्रभु!) तू आदि से ही है। तुझसे बढ़कर अन्य कोई देवता नहीं है, (भाव, तू सर्वोच्च है)। तू अपने जैसा आप ही है, (इसी लिये)

कोई तेरा भेद नहीं जान सकता। तेरी कोई तस्वीर नहीं (बन सकती); तू एक अपने आप के ही आधीन है।१०७।

कि रोज़ी रज़ाकै॥ रहीमै रिहाकै॥
कि पाक बि-ऐब हैं॥ कि ग़ैबुल ग़ैब हैं॥१०८॥

पद अर्थ : रज़ाक—रोज़ी देने वाला। रहीम—रहम करने वाला। रिहाक—मुक्ति देने वाला। पाक—पवित्र। बि-ऐब—दुर्गुणों से रहित, कलंक रहित। ग़ैब—पर्दा। ग़ैबुल ग़ैब—पूर्ण रूप से गुप्त।

अर्थ : (हे प्रभु!) तू सब जीवों को जीविका देने वाला है। सब पर रहम (दया) करने वाला है, तथा सब को (दुःखों से) मुक्ति देने वाला है। तू पवित्र स्वरूप है, तुझ में कोई कलंक नहीं है, तथा तू पूर्णरूप से गुप्त है।१०८।

कि अफवुल गुनाह हैं॥ कि शाहान शाह हैं॥
कि कारन कुनिंद हैं॥ कि रोजी दिहंद हैं॥१०९॥

पद अर्थ : गुनाह—पाप। अफव—(फ़ारसी, उफ़व) क्षमा। कुनिंद—करने वाला। दिहंद—देने वाला।

अर्थ : (हे प्रभु!) तू जीवों के पापों को क्षमा (माफ़) करने वाला है। तू राजाओं का राजा है। तू सब कारणों का कर्त्ता है, (भाव, जीविका आदि के कारण, सब प्रकार के कारण (परस्थितियाँ) पैदा करने वाला तू आप ही है) तथा सब को जीविका देने वाला है।१०९।

कि राज़क रहीम हैं॥ कि करमं करीम हैं॥
कि सरबं कली हैं॥ कि सरबं दली हैं॥११०॥

पद अर्थ : राज़क—रोज़ी देने वाला। करम—कृपा। करीम—द्या करने वाला। दली—नाश करने वाला। कली—कलावान, शक्तियों का स्वामी।

अर्थ : तू सब को जीविका देने वाला है, सब पर दया करने वाला है। तू कृपा करने वाला कृपालु है। तू सारी शक्तियों का स्वामी है, तथा सब जीवों का संहार करने वाला है।११०।

कि सरबत्र मानियै॥ कि सरबत्र दानियै॥
कि सरबत्र गउनै॥ कि सरबत्र भउनै॥१११॥

पद अर्थ : मानिय—जिसका मान (आदर) किया जाये। सरबत्र—प्रत्येक स्थान पर। दानिय—दानी, दान देने वाला। गउन—गमन, पहुँच। भउन—भवन, लोक।

अर्थ : (हे प्रभु!) प्रत्येक स्थान पर तुम्हारी ही पूजा हो रही है। प्रत्येक स्थान पर (सब जीवों को) तू ही दान दे रहा है। तेरी प्रत्येक स्थान पर पहुँच है। तू प्रत्येक स्थान पर सब भवनों में मौजूद है।१११।

कि सरबत्र देसै॥ कि सरबत्र भेसै॥
कि सरबत्र राजै॥ कि सरबत्र साजै॥११२॥

पद अर्थ : राजै—प्रकाश कर रहा है। साज—रचना।

अर्थ : (हे प्रभु!) प्रत्येक देश में, प्रत्येक स्थान पर तू ही मौजूद है। प्रत्येक स्थान पर प्रत्येक परिधान में भी तू ही है। प्रत्येक स्थान पर तू ही अपना तेज दिखा रहा है। प्रत्येक स्थान पर तेरी ही रची हुयी रचना है।११२।

कि सरबत्र दीनै॥ कि सरबत्र लीनै॥
कि सरबत्र जाहो॥ कि सरबत्र भाहो॥११३॥

पद अर्थ : दीनै—दिया है, दे रहा है। लीनै—लीन, व्यापक, मौजूद। जाह—जलाल, तेज प्रताप। भाह—चमक, प्रकाश।

अर्थ : (हे प्रभु!) सब जगह तू ही (सब जीवों को) दान दे रहा है, सर्वत्र तू ही मौजूद है, प्रत्येक स्थान पर तेरा ही तेज प्रताप है। प्रत्येक स्थान पर तेरा ही प्रकाश है।११३।

कि सरबत्र देसै॥ कि सरबत्र भेसै॥
कि सरबत्र कालै॥ कि सरबत्र पालै॥११४॥

अर्थ : (हे प्रभु!) प्रत्येक देश में प्रत्येक स्थान पर तू उपस्थित है, प्रत्येक वेश में भी मौजूद है। प्रत्येक स्थान पर (सब जीवों को) तू मारने वाला है, प्रत्येक स्थान पर सब की रक्षा करने वाला भी तू ही है।११४।

कि सरबत्र हंता॥ कि सरबत्र गंता॥
कि सरबत्र भेखी॥ कि सरबत्र पेखी॥११५॥

पद अर्थ : हंता—मारने वाला। गंता—जाने वाला, पहुँच रखने वाला। भेखी—वेश वाला, भाव प्रत्येक वेश में। पेखी—देखने वाला, देखभाल करने वाला।

अर्थ : (हे प्रभु!) प्रत्येक स्थान पर (सब जीवों को) तू ही मारने वाला है, तू प्रत्येक स्थान पर पहुँचने वाला है। प्रत्येक स्थान पर प्रत्येक वेशभूषा में तू ही है, तथा प्रत्येक स्थान पर तू ही सब जीवों की देखभाल करता है।११५।

कि सरबत्र काजै॥ कि सरबत्र राजै॥
कि सरबत्र सोखै॥ कि सरबत्र पोखै॥११६॥

पद अर्थ : काजै—कार्य, काम। राजै—प्रकाश कर रहा है। सोखै—सुखा रहा है, नाश कर रहा है। पोखै—पाल रहा है।

अर्थ : (हे प्रभु!) सर्वत्र तेरे ही किये कार्य दिखायी देते हैं। प्रत्येक स्थान पर तू ही अपना प्रकाश कर रहा है। प्रत्येक स्थान पर तू ही (सब को) मारने वाला है, प्रत्येक स्थान पर तू ही सब को पालने वाला है।११६।

कि सरबत्र त्राणै॥ कि सरबत्र प्राणै॥
कि सरबत्र देसै॥ कि सरबत्र भेसै॥११७॥

पद अर्थ : त्राण—ताकत, ज़ोर। प्राण—जान।

अर्थ : (हे प्रभु!) प्रत्येक स्थान पर तेरी ताकत कार्य कर रही है। प्रत्येक स्थान पर तुम्हारे ही (दिये हुये) प्राण बस रहे हैं। प्रत्येक स्थान पर प्रत्येक देश में तू मौजूद है, तथा प्रत्येक स्थान पर प्रत्येक वेशभूषा में भी तू ही तू है।११७।

कि सरबत्र मानियै॥ सदैवं प्रधानियै॥
कि सरबत्र जापियै॥ कि सरबत्र थापियै॥११८॥

पद अर्थ : प्रधान—आगू। जापियै—जपा जा रहा है। थापियै—स्थित है। सदैवं—सदा+एव, सदा ही।

अर्थ : (हे प्रभु!) प्रत्येक स्थान पर (सब जीव) तेरी ही पूजा कर रहे हैं। सदा ही तू ही (सर्वत्र) प्रधान है। प्रत्येक स्थान पर तेरा ही जाप हो रहा है, तथा प्रत्येक स्थान पर तू ही तू स्थित है।११८।

कि सरबत्र भानै॥ कि सरबत्र मानै॥
कि सरबत्र इंद्रै॥ कि सरबत्र चंद्रै॥११९॥

पद अर्थ : भान—सूर्य, सूर्य के समान प्रकाश बिखेरने वाला। मानै—आदर प्राप्त करने वाला। इंद्र—राजा। चंद्र—चन्द्रमा, चन्द्रमा के समान कोमल चांदनी देने वाला।

अर्थ : (हे प्रभु!) प्रत्येक स्थान पर तू ही सूर्य के समान तेज बिखेर रहा है। प्रत्येक स्थान पर (जीव) तेरी पूजा कर रहे हैं। प्रत्येक स्थान पर तू ही (सब जीवों का) राजा है तथा प्रत्येक स्थान पर तू ही चन्द्रमा के समान कोमल प्रकाश कर रहा है।११९।

कि सरबं कलीमै॥ कि परमं फ़हीमै॥
कि आकल अलामै॥ कि साहिब कलामै॥१२०॥

पद अर्थ : कलीम—कलाम वाला, वाणी वाला, सुन्दर बोलने वाला। फ़हीम—समझ वाला (सूझ-बूझ वाला)। आकल—अक्ल वाला। अलामै—ज्ञान वाला, विद्वान। कलाम—वाणी, बोल। साहिब कलाम—वाणी का स्वामी।

अर्थ : (हे प्रभु!) सब जीवों में बैठक़र तू ही सुन्दर वाणी बोल रहा है। तू ऊँची सूझ-बूझ वाला है। तू अक्ल तथा ज्ञान का धनी है, तथा बोलने में भी निपुण है।१२०।

कि हुसनुल वजू हैं॥ तमामुल रुजू हैं॥
हमेसुल सलामै॥ सलीख़त मुदामै॥१२१॥

पद अर्थ : हुसन—यौवन, सुन्दरता। वजू—चेहरा, शक्ल। तमाम—सारे

जीव। रुजू—ध्यान, तवज्जो। सलाम—सलामत, कायम। सलीख़त—सलीकत, सलीक+त, तेरा सलीका। सलीका—तरतीब, सजावट, संसार के पदार्थों की सजावट। मुदाम—हमेशा।

अर्थ : (हे प्रभु!) तू सौन्दर्य की मूर्ति है, सब जीवों की तरफ़ तेरा ध्यान है। तू सदा स्थिर रहने वाला है। तेरी बनायी (रची) हुयी जगत की सजावट हमेशा के लिये है (भाव, इस सजावट में कोई जीव विघन नहीं डाल सकता)।

ग़नीमुल शिकसतै॥ ग़रीबुल परसतै॥
बिलंदुल मकानै॥ ज़िमीनुल ज़मानै॥१२२॥

पद अर्थ : ग़नीम—वैरी। शिकसत—हार। ग़नीमुल शिकसते—शत्रु को हराने वाला। ग़रीब—कंगाल। परसत—पालने वाला। ग़रीबुल परसत—ग़रीबों का पालन करने वाला। बिलंद—बुलंद, ऊँचा। मकान—घर, ठिकाना। ज़िमीन—धरती। ज़मान—ज़माना (देखें छंद न. १५८)।

अर्थ : (हे प्रभु!) तू शत्रुओं को हराने वाला है। ग़रीबों का पालन करने वाला है। हे प्रभु! तेरा ठिकाना सबसे ऊँचा है। तू (प्रत्येक स्थान पर) धरती पर तथा हर समय मौजूद है।१२२।

तमीज़ुल तमामै ।। रुजूअल निधानै ।।
हरीफुल अज़ीमै ।। रज़ाइक यकीनै ।।१२३।।

पद अर्थ : तमीज़—पहचान। तमाम—सारा। तमीज़ुल तमाम—तमीज का पुंज, पहचान का पुंज। रुजु—ध्यान, तवज्जो। निधान—ख़ज़ाना। रुजूअल निधान—धयान का ख़ज़ाना। हरीफ़—शत्रु, वैरी। अज़ीम—बड़ा। रज़ाइक—रोज़ी देने वाला। यकीनै—सत्य में, वास्तव में।

अर्थ : (हे प्रभु!) तू जीवों की सम्भाल का पुंज है। तू सब जीवों के ध्यान का ख़ज़ाना है, (भाव, तू सब जीवों की इतनी संभाल करता है, इतना ध्यान रखता है कि यह गुण तुम में कभी समाप्त नहीं होता, तू इस गुण का ख़ज़ाना है)।

हे प्रभु! (अहंकारियों का) तू बड़ा शत्रु है। तू वास्तव में सब जीवों को जीविका देने वाला है।१२३।

अनेकुल तरंग हैं॥ अभेद हैं अभंग हैं॥
अज़ीज़ुल निवाज़ हैं॥ ग़नीमुल ख़िराज हैं॥१२४॥

पद अर्थ : तरंग—लहरें (जीव-जन्तु आदि)। अभेद—जिस का भेद न पाया जा सके। अभंग—अविनाशी। अज़ीज़—प्यारा। निवाज़—बड़ाई देने वाला। ग़नीम—वैरी। ख़िराज—दण्ड (देखें छंद नं. १५३)।

अर्थ : (हे प्रभु!) (तू मानो एक बड़ा समुद्र है, जगत के सारे रूप रंग, सारे जीव-जन्तु) तेरी अनेक लहरें हैं। तेरा भेद नहीं पाया (जाना) जा सकता। तू नाश रहित है। हे प्रभु! जो तुम्हें प्यार करते हैं, तू उनको मान, बड़ाई देता है; पर (वैरियों) शत्रुओं को तू दण्ड लगाता है (भाव, जो तेरे आगे अकड़ते हैं, तू उनको दण्ड देता है)।१२४।

निरुकत सरूप हैं॥ त्रिमुकत बिभूति हैं॥
प्रभुगत प्रभा हैं॥ सुजुगत सुधा हैं॥१२५॥

पद अर्थ : निरुकत—निर+उक्त, जो ब्यान न हो सके, कथन से परे। सरूप—वजूद, अस्तित्व। बिभूति—तेज, प्रताप, ऐश्वर्य, आठ प्रकार की सिद्धियाँ जो योगी लोक समाधि लगाकर प्राप्त करते हैं। त्रि—माया के तीन गुण; रजो, तमो तथा सत्व। त्रिमुकत—तीनों गुणों से परे। मुक्त—आज़ाद।

त्रिमुकत बिभूति—वह जिसका प्रताप तीनों गुणों से ऊपर है। प्रभा—प्रकाश। भुगत—भोगा हुआ। प्रभुगत—अच्छी तरह भोगा हुआ। प्रभुगत प्रभा—वह जिस के प्रकाश को सारे जीव अच्छी तरह भोगते हैं। सुधा—अमृत, महान उत्तम रस। सुजुगत—अच्छी तरह मिला हुआ।

अर्थ : (हे प्रभु!) तेरा अस्तित्व ऐसा है जिस का ब्यान नहीं किया जा सकता। तेरा प्रताप ऐसा है जो माया के तीन गुणों से परे है (भाव, तेरे तेज प्रताप को माया लिप्त नहीं कर सकती)। (जगत के सारे) जीव तेरे ही प्रकाश को भोग रहे हैं। तू एक ऐसा महान उत्तम रस है जो सब जीवों के साथ मिला हुआ है (जिसका आनन्द प्रत्येक जीव ले सकता है)।१२५।

सदैवं सरूप हैं॥ अभेदी अनूप हैं॥
समसतो पराज हैं॥ सदा सरब साज हैं॥१२६॥

पद अर्थ : सदैवं—सदा+एव, सदा ही। सदैवं सरूप—वह जिसका वजूद सदा ही रहने वाला है। अभेदी—अ+भेद। भेद—(dualism) द्वैत, परमात्मा के अतिरिक्त किसी अन्य हस्ती की भी बराबरी तथा अस्तित्व का यकीन (विश्वास)। अभेद—वह जिस की तुलना में कोई अन्य हस्ती नहीं, अद्वैत। अनूप—जिस के समान अन्य कोई नहीं। समसत—सारे (जीव)। पराज—हार, शिकस्त। समसतो पराज—सब को हार देने वाला। साज—बनाने वाला।

अर्थ : (हे प्रभु!) तेरा वजूद सदा कायम रहने वाला है। तेरा कोई शरीक नहीं, तेरे समान और कोई नहीं (कोई तेरे आगे अकड़ नहीं सकता), तू सब को जीतने वाला है, तथा सब जीवों को पैदा करने वाला है।१२६।

समसतुल सलाम हैं॥ सदैवुल अकाम हैं॥
त्रिबाध सरुप हैं॥ अगाध हैं अनूप हैं॥१२७॥

पद अर्थ : सलाम—सलामत, सुखी। समसत—सारे जीव। समसतुल सलाम—वह जो सारे जीवों की सलामती का कारण है। त्रिबाध—निर+बाध, अबाध, (unchecked, unobstructed) जिस के राह में बाधा न डाली जा सके (देखें छन्द न. ६४)। अगाध—अगाह, अथाह।

अर्थ : (हे प्रभु!) तू सब जीवों की सलामती का मूल है। तू सदा ही कामना रहित है। हे प्रभु! तेरी हस्ती ऐसी है कि कोई जीव तेरी राह में बाधा नहीं डाल सकता। तेरी थाह नहीं पायी जा सकती (तू अथाह है), तेरे समान कोई नहीं है।१२७।

ओअं आदि रूपै॥ अनादि सरूपै॥
अनंगी अनामे॥ त्रिभंगी त्रिकामे॥१२८॥

पद अर्थ : ओअं—परम ब्रह्म, सारे जगत की आत्मा। त्रिभंगी—(त्रि—तीन लोक, आकाश, पाताल, मातृ) तीनों भवनों का नाश करने वाला। त्रिकाम—तीनों भवनों की कामना पूरी करने वाला।

अर्थ : (हे प्रभु!) तू सारे जगत की आत्मा है। तेरी ही हस्ती सबसे पहले की है, तेरी हस्ती का आरम्भ खोजा नहीं जा सकता। हे प्रभु! तेरा कोई विशेष अंग नहीं, तेरा कोई एक नाम नहीं। तू तीनों ही भवनों का नाश करने वाला है, तथा तीनों ही भवनों के जीवों की कामना भी पूरी करने वाला है।१२८।

त्रिबरग त्रिबाधे॥ अगंजे अगाधे॥
सुभं सरब भागे॥ सु सरबा अनुरागे॥१२९॥

पद अर्थ : त्रिबरग—(देखें छंद न. १४, ३२) वह जिस में जगत के तीनों ही पदार्थ (धर्म, अर्थ तथा काम) मौजूद हैं। बाधा—बाधा, रुकावट। त्रिबाध—वह जो तीनों ही भवनों के जीवों की राह में रुकावट डाल सकता है (भाव, जो त्रिभवनों के जीवों पर अपना नियन्त्रण रखता है)। अगंज—अविजित। भाग—(a part of any whole) अंग। सुभ—सुन्दर। सुभं सरब भाग—जिस के सारे ही अंग सुन्दर हैं। अनुराग—प्यार। सरब अनुराग—जिस का सबसे प्यार है, (क्योंकि 'होइ फैलिओ अनुराग')।

अर्थ : (हे प्रभु!) तेरे अन्दर जगत के तीनों ही पदार्थ मौजूद हैं। तूने तीनों भवनों के जीवों पर अपना नियन्त्रण रखा हुआ है। तू अविजित है तथा अथाह है। हे प्रभु! तेरे सारे ही अंग सुन्दर हैं। तू सब जीवों को प्यार करता है।१२९।

त्रिभुगत सरूप हैं॥ अछिज्ज हैं अछूत हैं॥
कि नरकं प्रणास हैं॥ प्रिथीउल प्रवासि हैं॥१३०॥

पद अर्थ : त्रि—तीन भवन, तीनों भवनों के जीव। भुगत—भोगा हुआ। त्रिभुगत—जिस को तीनों लोकों के जीव भोगते हैं। जिस से तीनों लोकों के जीव आनन्द लेते हैं। अछिज्ज—पुराना न होने वाला, न फटने वाला। अछूत—जिसे छुआ न जा सके। प्रिथी—पृथ्वी, धरती। (प्रवस—to travel) प्रवास—(a temporary sojourn) थोड़े समय का निवास। प्रवासि—प्रवासी, मुसाफ़िर, राही।

अर्थ : (हे प्रभु!) तेरी हस्ती ऐसी है, जिससे तीनों ही लोकों के जीव आनन्द लेते हैं। तेरा वजूद कभी पुराना नहीं होता। तुझे कोई छू नहीं सकता। हे प्रभु! तू नरकों का नाश करने वाला है। पृथ्वी पर तू आप ही (जीव रूप) मुसाफ़िर है।१३०।

निरुकत-प्रभा हैं॥ सदैवं सदा हैं॥
बिभुगत सरूप हैं॥ प्रजुगत अनूप हैं॥१३१॥

पद अर्थ : निरुकत—निर+उकत, जिस का ब्यान न हो सके। प्रभा—चमक, तेज़। सदैवं—सदा+एव, सदा ही। भुगत—भोगा हुआ। बिभुगत—आनन्द लिया हुआ। बिभुगत सरूप—वह जिसके अस्तित्व से (जीव) आनन्द लेते हैं। प्रजुगत—मिला हुआ।

अर्थ : (हे प्रभु!) तेरा तेज ऐसा है, जिसका ठीक ब्यान नहीं हो सकता। तू सदैव मौजूद है। हे प्रभु! तेरी हस्ती से सारे जीव सुख लेते हैं। तू सब जीवों में मिला हुआ है, (पर) तेरे समान अन्य कोई नहीं है।१३१।

निरुकत सदा हैं॥ बिभुगत प्रभा हैं॥
अनउकत सरूप हैं॥ प्रजुगत अनूप हैं॥१३२॥

पद अर्थ : अनउकत—ब्यान से बाहर।

अर्थ : (हे प्रभु!) तेरी हस्ती सदा ही कथन से परे है। सब जीव तेरे प्रकाश से आनन्दित होते हैं। तेरा स्वरूप ऐसा है जिस को ठीक तरह ब्यान नहीं किया जा सकता। तू सब जीवों में मिला हुआ है, (पर) तेरे समान कोई नहीं है।१३२।

चाचरी छंद॥

अभंग हैं॥ अनंग हैं॥ अभेख हैं॥ अलेख हैं॥१३३॥
अभरम हैं॥ अकरम हैं॥ अनादि हैं॥ जुगादि हैं॥१३४॥

पद अर्थ : अभंग—अ+भंग, नाश रहित। अनंग—अन+अंग, अंग रहित। अभेख—अ+भेख, भेख रहित। अलेख—अ+लेख। लेख—(किसी का) चित्र बनाना, तस्वीर खींचनी। अलेख—जिस का कोई चित्र न बनाया

जा सके। (जब किसी शब्द के शुरु का अक्षर व्यंजन (consonant) हो तो उसके 'विपरीत' अर्थ बनाने के लिये उससे पहले 'अ' लगाया जाता है पर यदि शब्द के आरम्भ में स्वर-अक्षर हो तो 'अ' के स्थान पर 'अन' प्रयोग होता है।) अनादि—अन+आदि, जिस का आदि न हो।

अर्थ : (हे प्रभु!) तू नाश रहित है (क्योंकि) तेरे कोई ऐसे अंग ही नहीं (जो नष्ट हो सकें)। तेरा कोई भेष (लिबास) ही नहीं है, (इसलिये) तेरी कोई तस्वीर नहीं खींची का सकती।१३३।

(हे प्रभु!) कोई भ्रम, भ्रान्ति तुम्हें प्रभावित नहीं कर सकती, तथा न ही तुझे धार्मिक रस्मों की ज़रूरत है। तू कब से है, यह बात बतायी नहीं जा सकती। तू युगों के आदि से है (भाव, समय के लेखे जोखे से तू ऊपर है)।१३४।

अजै हैं ॥ अबै हैं ॥ अभूत हैं ॥ अधूत हैं ॥१३५॥

पद अर्थ : अजै—अ+जै (अ+जय)। जै—जय, जीत। अजै—जो जीता न जा सके। अबै—अ+बै। बै—नाश। अबै—नाश रहित। अभूत—अ+भूत। भूत—तत्त्व। जिनके संयोग से सारी सृष्टि-रचना हुयी है; ये तत्त्व पांच हैं—पृथ्वी, जल, तेज, हवा तथा आकाश। अधूत—अ+धूत। धू—हिला देना, कम्पा देना। धूत—कांपा हुआ। अधूत—अचल।

अर्थ : (हे प्रभु!) तुम्हें न कोई जीत सकता है, न नष्ट कर सकता है। तेरा अस्तित्व (हस्ती) पाँच तत्त्वों से ऊपर है, (इस लिये) तुझे कोई हिला नहीं सकता।१३५।

अनास हैं ॥ उदास हैं ॥ अधंध हैं ॥ अबंध हैं ॥१३६॥

पद अर्थ : अनास—नाश रहित। उदास—उपराम, चिंता रहित। अधंध—झंझटों से अलग। अबंध—बंधनों से आज़ाद।

अर्थ : (संसार तो हर समय नष्ट होता दिखाई दे रहा है। पर हे प्रभु!) तू (संसार को बनाने वाला स्वयं) नाश रहित है। (इसके पालन आदि की) तुझे कोई भी चिन्ता नहीं। (जगत के) कोई झमेले तथा बंधन (भी) तुम्हें बांधते नहीं।१३६।

अभगत हैं ॥ बिरकत हैं ॥ अनास हैं ॥ प्रकास हैं ॥१३७॥

पद अर्थ : अभगत—(not connected with, detached) निर्मोह। बिरकत—(free from worldly attachment) विरक्त, सांसारिक पदार्थों के आकर्षण से ऊपर। प्रकास—प्रकाश।

अर्थ : (इतने अनन्त जगत का कर्त्ता होता हुआ भी हे प्रभु!) तू (आप) निर्मोही है, क्योंकि ये सांसारिक पदार्थ तुझे आकर्षित नहीं कर सकते। तू नाश रहित है तथा प्रकाश रूप है (भाव, किसी मोह भ्रम आदि के अज्ञान का अंधकार तुम पर असर नहीं कर सकता)।१३७।

निचिंत हैं ॥ सुनिंत हैं ॥ अलिख हैं ॥ अदिख हैं ॥१३८॥

पद अर्थ : निचिंत—(सं: निश्चिन्त free from anxiety) चिंता रहित। चिंता—फ़िक्र। सुनिंत—सुनित्त, सदा कायम रहने वाला (सु नित्य)। अलिख—जिस का कोई चित्र न बनाया जा सके। (देखें छंद न. १३३)। अदिख—अ+दिख, जो देखा न जा सके।

अर्थ : (इतने अनन्त जगत-रूप परिवार वाला होता हुआ भी इनकी जीविका, पालन आदि की) तुझे कोई चिंता नहीं, (क्योंकि) तू (आप) सदा (इनके सिर पर) कायम है। (हे प्रभु!) न कोई तुम्हारी तस्वीर खींच सकता है, तथा न ही तू (इन आंखों से) देखा जा सकता है।१३८।

अलेख हैं ॥ अभेख हैं ॥ अढाह हैं ॥ अगाह हैं ॥१३९॥

पद अर्थ : (शब्द 'अलेख' तथा 'अभेख' के लिये देखें छंद नं. १३३)। अढाह—अ+ढाह, ढाहु—गिराना। अगाह—अ+गाह (सं: गाध, not very deep)। अगाह—बहुत गहरा, अथाह।

अर्थ : (हे प्रभु!) कोई तेरा चित्र नहीं बना सकता। तेरा कोई एक पहरावा (परिधान) नहीं है। तुझे कोई गिरा नहीं सकता। तू बहुत अथाह (समुद्र) है।१३९।

असंभ हैं ॥ अगंभ हैं ॥ अनील हैं ॥ अनादि हैं ॥१४०॥

पद अर्थ : असंभ—असम्भव्य (incomprehensible), जो विचार की सीमा में न आ सके। संभावना—विचार, ख़्याल। अगंभ—अगम्य (inaccessible, inconceivable), जो विचार की पहुँच से परे है। अनील—अनिल, हवा, जिस के सहारे प्राणी जिन्दा रहता है, भाव सब जीवों के प्राणों का सहारा। अनादि—अन+आदि, जिस का प्रारम्भ न पता लग सके।

अर्थ : (हे प्रभु!) तू जीवों की विचार शक्ति तथा पहुँच से ऊपर है, (पर) है तू सब जीवों का प्राण-रूप तथा तेरा आदि कोई नहीं जान सका।१४०।

अनित्त हैं ॥ सुनित्त हैं ॥ अजात हैं ॥ अजादि हैं ॥१४१॥

पद अर्थ :अनित्त—(extraordinary) असाधारण, जो नित्य दिखायी देने वाले पदार्थों जैसा नहीं है। सुनित्त—सदा कायम। अजात—अ+जात, जो जन्म में नहीं आया। जात—जन्म लिया हुआ। अजादि—अज+आदि। अज—अजन्मा, जन्म से रहित। आदि—आरम्भ, सब जीवों का मूल।

अर्थ : (हे प्रभु!) तू नित्य दिखायी देने वाले साधारण पदार्थों जैसा नहीं है, पर तू सदा मौजूद है। हे प्रभु! तू जन्म में नहीं आया, (स्वयं) अजन्मा है, (पर) सब जीवों का मूल है।१४१।

चरपट छंद ॥ त्व प्रसादि ॥

सरबं हंता ॥ सरबं गंता ।
सरबं खिआता ॥ सरबं गिआता ॥१४२॥

पद अर्थ : हंता—मारने वाला। गंता—(गम-जाना) जाने वाला, पहुँचने वाला। खिआता—प्रसिद्ध, मशहूर। गिआता—ज्ञाता, जानने वाला।

अर्थ : (हे प्रभु!) तू सब जीवों को मारने वाला है, (क्योंकि) सब जीवों तक तेरी पहुँच है। सब जीवों में तू प्रसिद्ध है, तथा सब (के दिलों को) जानने वाला है।१४२।

सरबं हरता ॥ सरबं करता ॥ सरबं प्राणं ॥ सरबं त्राणं ॥१४३॥

पद अर्थ : हरता—नाश करने वाला, ले जाने वाला। करता—पैदा करने वाला। प्राण—जान। त्राण—ताकत।

अर्थ : (हे प्रभु!) सब (के प्राणों को) ले जाने वाला (भी) तू है, (तथा) सब को पैदा करने वाला (भी) तू है। तू ही सब का प्राण-आधार है। तू ही सब की ताकत है।१४३।

सरबं करमं ॥ सरबं धरमं ॥
सरबं जुगता ॥ सरबं मुकता ॥१४४॥

पद अर्थ : करम—कर्म। धरम—धर्म, फ़र्ज़, कर्त्तव्य। जुगता—मिला हुआ, सब जीवों में मौजूद। मुकत—मुक्त, आज़ाद, निर्लेप।

अर्थ : (हे प्रभु!) सब जीवों में व्यापक होकर तू स्वयं ही सब कार्य करता है, तथा फ़र्ज़ निभाता है। (ऐसा करते हुए भी) तू सबसे निर्लिप्त है।१४४।

रसावल छंद॥ त्व प्रसादि॥

नमो नरक नासे॥ सदैवं प्रकासे॥
अनंगं सरूपे॥ अभंगं बिभूते॥१४५॥

पद अर्थ : नमो—(सं: नमः) नमस्कार। नरक—नर्क, दोज़ख, वह स्थान जहां पापियों को मौत के बाद कई तरह की सज़ा दी जाती है, ऐसा माना जाता है। (*नोट*—परन्तु सिक्ख धर्म के अनुसार परमात्मा को भूलना ही वास्तविक नरक है)। सदैवं—सदा+एव, सदा ही। प्रकासे—प्रकाश। अनंग—अन+अंग, अंगों से रहित। अभंग—अ+भंग, नाश रहित। बिभूति—एश्वर्य, प्रताप, तेज।

अर्थ : (हे प्रभु!) तुझे (हमारी) नमस्कार है, तू (जीवों के) नरक का नाश करने वाला है, तू सदा ही प्रकाश स्वरूप है। हे अंगों से रहित स्वरूप वाले! (तुझे नमस्कार है), तेरा प्रताप कभी नष्ट नहीं होता।१४५।

प्रमाथं प्रमाथे॥ सदा सरब साथे॥
अगाध सरूपे॥ न्रिबाध बिभूते॥१४६॥

पद अर्थ : मथ—मथना। प्रमथ—तंग करना, दुःख देना, कष्ट देना। प्रमाथ—(सं: प्रमाथि) जो दूसरों को दुखी करे। अगाध—अथाह। सरूप—हस्ती। न्रिबाध—निर+बाध। निर—बिना। न्रिबाध—जिस में कोई रुकावट न डाली जा सके (देखें छंद नं. ६४, १२७)। बिभूति—प्रताप।

अर्थ : (हे प्रभु!) तुझे नमस्कार है, तू उनका (भी) नाश करने वाला

है, जो (दूसरों को) दुखी करते हैं, क्योंकि हे प्रभु! तू सभी का (दुर्बलों का भी) सहायक है। तेरी हस्ती अथाह है (तथा) तेरा प्रताप निर्बाध्य है (तेरे प्रताप को कोई रोक नहीं सकता)।१४६।

अनंगी अनामे ॥ त्रिभंगी त्रिकामे ॥
त्रिभंगी सरूपे ॥ सरबंगी अनूपे ॥१४७॥

पद अर्थ : अनंगी अनामे—(देखें छंद न. ४९)। त्रिभंगी—नाश रहित। सरबंगी—सरब+अंगी। सरब—सम्पूर्ण। अंग—शरीर। अनूप—बे-मिसाल, जिस के समान अन्य कोई नहीं।

अर्थ : (हे प्रभु!) (तुझे नमस्कार है; तेरी बनायी सृष्टि के समान) तेरे अंग नहीं हैं। तेरा कोई एक नाम नहीं है। तू तीनों ही भवनों का नाश करने वाला है, तथा तीनों ही भवनों के जीवों की कामना भी पूर्ण करने वाला है। (हे प्रभु!) तेरा स्वरूप नाश रहित है, (क्योंकि) तेरी हस्ती सम्पूर्ण है (तथा) कोई तेरे समान नहीं है।१४७।

न पोत्रै न पुत्रै ॥ न सत्रै न मित्रै ॥
न तातै न मातै ॥ न जातै न पातै ॥१४८॥

पद अर्थ : सत्रै—शत्रु, वैरी। तात—पिता। पाति—कुल।

अर्थ : (हे प्रभु!) जगत के जीवों की 'मेर तेर' तथा 'अपनत्व' के समान न तेरा कोई पुत्र है, न कोई पौत्र; न तेरा कोई शत्रु है, न मित्र; न तेरा कोई पिता है, न तेरी कोई माता है; न तेरी कोई जाति है न तेरी कोई कुल है।१४८।

त्रिसाकं सरीक हैं ।। अमितो अमीक हैं ।।
सदैवं प्रभा हैं ।। अजै हैं अजा हैं ।।१४९।।

पद अर्थ : त्रिसाक—निर-साक। सरीक—शरीक, (भाव, निर शरीक)। अमितो—अमित, अ+मित। मित—मापा हुआ, जो मापा जा सके। अमित—जो मापा न जा सके, अनन्त। अमीक—(अरबी शब्द) गहरा। प्रभा—प्रकाश, रौशनी। सदैव—सदा+एव, सदा ही। अजै—अ+जै, अविजित। अजा—अ+जा, जन्म रहित।

अर्थ : (हे प्रभु!) दुनिया के मनुष्यों के समान न तेरा कोई सम्बन्धी है, न तेरा कोई शरीक है। तू एक ऐसी अगाध (गहरी) हस्ती है, जिस की गहराई जानी नहीं जा सकती। (हे प्रभु!) तू सदा ही प्रकाश-स्वरूप है। न तुझे कोई जीत सकता है, तथा न तू जन्म में आता है।१४९।

भगवती छंद ।। त्व प्रसादि ।।

कि ज़ाहर ज़हूर हैं ।। कि हाज़र हजूर हैं ।।
हमेसुल सलाम हैं ।। समसतुल कलाम हैं ।।१५०।।

पद अर्थ : ज़हूर—प्रकाश। ज़ाहर ज़हूर—जिसका प्रकाश प्रत्यक्ष है। सलाम—सलामत, स्थिर रहने वाला। समसत—समस्त, सारे। कलाम—बोली। समसतुल कलाम—जो सबकी बोली (का विष्य) है, भाव, जिसका ज़िक्र सभी जीव करते हैं।

अर्थ : (हे प्रभु!) तेरा प्रकाश प्रत्यक्ष दिखायी देता है, (क्योंकि) तू (प्रत्येक स्थान पर) मौजूद है तथा (प्रत्येक के) अंग-संग है। (हे प्रभु!) तू सदा स्थिर रहने वाला है, सारे जीव तेरे ही गुणों का ज़िक्र करते हैं।१५०।

कि साहिब दिमाग़ हैं ।। कि हुसनुल चराग़ हैं ।।
कि कामल करीम हैं ।। कि राज़क रहीम हैं ।।१५१।।

पद अर्थ : साहिब—स्वामी। दिमाग़—समझ, बुद्धि। हुसनुल—हुस्न का, सुन्दरता का। चराग़—दीपक। कामल—सम्पूर्ण। करीम—कृपा करने वाला। राज़क—जीविका देने वाला। रहीम—रहम करने वाला।

अर्थ : (हे प्रभु!) तू (ऊँची) बुद्धि का स्वामी है, तथा सुन्दरता का पुन्ज है (जैसे दीपक प्रकाश देने वाला है)। (हे प्रभु!) तू (सब जीवों पर) पूर्ण कृपा करने वाला है। तू सब को जीविका देने वाला है, तथा सब पर रहम करने वाला है।१५१।

कि रोज़ी दिहिंद हैं।। कि राज़क रहिंद हैं।।
करीमुल कमाल हैं ।। कि हुसनुल जमाल हैं ।।१५२।।

पद अर्थ : दिहिंद—देने वाला। रहिंद—रिहाई देने वाला, मुक्ति-दाता। कमाल—पूर्णता, सर्वोच्च सीमा। जमाल—कोमल सुन्दरता (जैसे चन्द्रमा की है)। हुसन—सुन्दरता।

अर्थ : (हे प्रभु!) तू (सब को) जीविका देने वाला है, तू रिज़क देने वाला व मुक्तिदाता भी है। तू पूर्ण (भाव, सब जीवों पर) कृपा करने वाला है और कोमल सुन्दरता वाला है।१५२।

ग़नीमुल ख़िराज हैं।। ग़रीबुल निवाज हैं।।
हरीफ़ुल शिकंन हैं ।। हिरासुल फ़िकंन हैं ।।१५३।।

पद अर्थ : ग़नीम—वैरी। ख़िराज—दण्ड (देखें छंद न. १२४)। निवाज—बड़ाई देने वाला। हरीफ़—शत्रु। शिकंन—तोड़ने वाला। हिरास—डर। फ़िकंन—दूर फेंकने वाला।

अर्थ : (हे प्रभु!) तू शत्रुओं को दण्ड देने वाला है, तथा ग़रीबों को बड़ाई देने वाला है, (भाव, जो तेरे आगे अकड़ते हैं वे आख़िर लज्जित होते हैं, पर जो तेरी शरण में आते हैं, तू उनको मान देता है)। (हे प्रभु!) तू शत्रुओं के (सिर) तोड़ने वाला है, कोई डर तेरे पास नहीं आ सकता।१५३।

कलंकं प्रणास हैं ॥ समसतुल निवास हैं ॥
अगंजुल ग़नीम हैं ॥ रज़ाइक रहीम हैं ॥१५४॥

पद अर्थ : कलंक—धब्बा, दाग, बदनामी। अगंज—अ+गंज। गंजन—(putting to shame, surpassing, defeating) हरा देना, (किसी से) आगे बढ़ जाना। अगंज—अविजित। ग़नीम—वैरी। रज़ाइक—रोज़ी देने वाला।

अर्थ : (हे प्रभु!) तू (अपने भक्तों के) कलंक दूर करने वाला है, सब जीवों में मौजूद है। शत्रु तुझे जीत नहीं सकते, तू सबको रोज़ी देने वाला है तथा सब पर रहम करने वाला है।१५४।

समसतुल ज़बां हैं ॥ कि साहिब किरां हैं ॥
कि नरकं प्रणास हैं ॥ बहिशतुल निवास हैं ॥१५५॥

पद अर्थ : ज़बां—जुबान। समसत—सारे (जीव)। किरां—एश्वर्य प्रताप।

अर्थ : (हे प्रभु!) तू सारे जीवों की जुबान है, (भाव, सब जीवों के अन्दर तू आप ही बोल रहा है), तू बड़े प्रताप वाला है। तू नरकों का नाश करने वाला है तथा तू स्वयं स्वर्ग में रहता है, (भाव, हे प्रभु! जहाँ तू है वहाँ नरक का दु:ख नज़दीक नहीं आ सकता, वहाँ सदा स्वर्ग का सुख है)।१५५।

कि सरबुल गवंन हैं ।। हमेशुल रवंन हैं ।।
तमामुल तमीज़ हैं ।। समसतुल अज़ीज़ हैं ।।१५६।।

पद अर्थ : गवंन—गमन, पहुँच। रवंन—रमण, खुशी, आनंद। हमेश—सदा। तमाम—सारे जीव। तमीज़—पहचान। अज़ीज़—प्यारा।

अर्थ : (हे प्रभु!) सब जीवों में तेरी पहुँच है, (भाव, तू सब जीवों में मौजूद है), तथा तू सदा ही आनन्द (स्वरूप) है। (हे प्रभु!) तू सब जीवों की पहचान (सम्भाल) करता है, तथा सब जीवों का प्यारा है।१५६।

परं परम ईस हैं ।। समसतुल अदीस हैं ।।
अदेसुल अलेख हैं ।। हमेशुल अभेख हैं ।।१५७।।

पद अर्थ : परं—सब से बड़ा। परम—सब से बड़ा। ईस—ईश्वर, स्वामी। अदीस—आदि+ईस, प्रारम्भ से ही स्वामी। अदेस—अ+देस, देश रहित। अलेख—अ+लेख, चित्र रहित।

अर्थ : (हे प्रभु!) तू सब से बड़ा स्वामी है, (जगत के) प्रारम्भ से ही सब का ईश्वर है। तेरा कोई ख़ास ठिकाना नहीं बताया जा सकता, न ही तेरा कोई चित्र बनाया जा सकता है तथा कभी भी तेरा कोई ख़ास लिबास नहीं हुआ।१५७।

ज़मीनुल ज़मां हैं ।। अमीकुल इमा हैं ।।
करीमुल कमाल हैं ।। कि जुरअति जमाल हैं ।।१५८।।

पद अर्थ : ज़मीन—धरती। ज़मां—ज़माना, समय (देखें छंद नं. १२२)। अमीक—गहरा। इमा—इशारा, रमज़। करीम—कृपा करने वाला। जुरअति—दिलेरी, वीरता। जमाल—सुन्दरता, खूबसूरती।

अर्थ : (हे प्रभु!) तू धरती पर (भाव, हर स्थान पर), तथा हर समय मौजूद है; तेरी रमज़ बड़ी गहरी है, (भाव, तेरा भेद कोई पा नहीं सकता)। तू पूर्ण कृपालु है, तथा तेरी वीरता तेरी सुन्दरता है, (भाव, तू बांका वीर है)।१५८।

कि अचलं प्रकाश हैं ॥ कि अमितो सुबास हैं ॥
कि अजब सरूप हैं ॥ कि अमितो बिभूति हैं ॥१५९॥

पद अर्थ : अचल—अ+चल, अटल। अमितो—अमित, अ+मित, जिसे मापा नहीं जा सकता, अमाप्य। सुबास—सुगंधी। अजब—अजीब, आश्चर्ययुक्त। बिभूति—ऐश्वर्य, प्रताप।

अर्थ : (हे प्रभु!) तेरी ज्योति (प्रकाश) अचल है। तू अमाप्य (अनन्त) सुगन्ध वाला है। आश्चर्ययुक्त तेरा रूप है, तथा अनन्त तेरा प्रताप है।१५९।

कि अमितो पसा हैं ॥ कि आतम प्रभा हैं ॥
कि अचलं अनंग हैं ॥ कि अमितो अभंग हैं ॥१६०॥

पद अर्थ : अमितो—अमाप्य। पसा—पसारा, प्रसार। अमितो पसा—अनन्त प्रसार वाला। प्रभा—प्रकाश, रौशनी। आतम—आत्म। आतम प्रभा—जिसका आत्मस्वरूप प्रकाश ही प्रकाश है। अचल—अडोल, अटल। अनंग—अन+अंग, शरीर-रहित। अभंग—अ+भंग, नाश रहित।

अर्थ : (हे प्रभु!) तू (जगत रूप) अनन्त प्रसार (फैलाव) का स्वामी है, (फिर भी) तेरा आत्मस्वरूप केवल प्रकाश ही प्रकाश है। तू कभी डोलता नहीं है। (जीवों की तरह) तेरा कोई शरीर नहीं है, तू अनन्त है, तथा कभी नष्ट होने वाला नहीं है।१६०।

मधुभार छंद ।। त्व प्रसादि ।।

मुनि मनि प्रणाम ।। गुण गण मुदाम ।।

अरि बर अगंज ।। हरि नर प्रभंज ।।१६१।।

पद अर्थ : मुनि—ऋषि, तपस्वी। मनि—मन में। गण—समूह। गुण गण—गुणों के समूह (का स्वामी), जिस में सारे ही गुण हैं। (देखें छंद न. ८७)। मुदाम—सदा। अरि—शत्रु। अरि बर—अरि वर, बड़े बड़े शत्रु। अगंज—(conquering, defeating) अविजित, जो जीता न जाये। प्रभंज—(to break down, frustrate, to conquer) नाश करने वाला। हरि नर—नर हरि, नरसिंह, नरों का राजा, सारे जीवों का स्वामी।

अर्थ : (हे प्रभु!) तपस्वी लोक तुझे अपने मन में नमस्कार करते हैं। तू सदा अनन्त गुणों का स्वामी है। (हे प्रभु!) तू बड़े बड़े शत्रुओं द्वारा भी अविजित है। तू सब मनुष्यों का स्वामी है, तथा सब का नाश करने वाला है।१६१।

अनगण प्रणाम ।। मुनि मनि सलाम ।।

हरि नर अखंड ।। बर नर अमंड ।।१६२।।

पद अर्थ : अनगण—अनगिणत। सलाम—प्रणाम, नमस्कार। हरि नर—नर हरि, नरसिंह, नरों में सिंह। अखंड—सम्पूर्ण। बर नर—मनुष्यों में श्रेष्ठ। अमंड—जिसको किसी सजावट की आवश्यकता नहीं।

अर्थ : (हे प्रभु!) अनगिणत जीव तुम्हें प्रणाम करते हैं, तपस्वी लोग अपने मन में तेरी ही वन्दना करते हैं। (सारे विश्व की सरदार) मनुष्य (जाति) में तू शेर (रूप) है, तथा सम्पूर्ण (गुणों वाला) है। मनुष्यों से श्रेष्ठ है, तथा तुम्हें किसी (सजावट) श्रृंगार की आवश्यकता नहीं।१६२।

अनुभव अनास ॥ मुनि मनि प्रकास ॥
गुण गण प्रणाम ॥ जलि थलि मुदाम ॥१६३॥

पद अर्थ : अनास—हे नाश रहित! अनुभव—अपने आप से प्राप्त हुआ ज्ञान। प्रकास—रौशनी, प्रकाश। जलि—जल में। थलि—थल में, धरती पर। मुदाम—सदा। गुण गण—समूह गुणों वाला।

अर्थ : हे अविनाशी प्रभु! तू आप ज्ञान-रूप है (ज्ञान के लिये तू किसी पर निर्भर नहीं, बल्कि) तपस्वी लोगों के मन में तू ही प्रकाश (करने वाला) है। हे सर्वगुण प्रभु! तुम्हें नमस्कार है; जल में, धरती पर (हर स्थान पर, तू ही) सदा मौजूद है।१६३।

अनछिज अंग ॥ आसण अभंग ॥
उपमा अपार ॥ गति मिति उदार ॥१६४॥

पद अर्थ : अनछिज—पुराना न होने वाला। अंग—शरीर, स्वरूप। आसण—तख्त। अभंग—भंग न होने वाला, न टूटने वाला, अडोल। उपमा—(equality) बराबरी। अपार—पहुँच से परे। गति—अवस्था, हालत। मिति—माप, अंदाज़ा। उदार—(large, grand, extensive) बहुत बड़ी।

अर्थ : तेरा स्वरूप कभी पुराना होने वाला नहीं है, तेरा आसन भी अडोल है। तेरे बराबर की कोई हस्ती ढूँढनी जीव की पहुँच से परे है, तू कैसा है तथा कितना बड़ा है, यह बताना (तेरे पैदा किये जीवों के लिये) बहुत बड़ी बात है।१६४।

जलि थलि अमंड ॥ दिस विस अभंड ॥
जलि थलि महंत ॥ दिस विस बिअंत ॥१६५॥

पद अर्थ : अमंड—जिस को किसी सजावट की आवश्यकता न पड़े। दिस विस—(सं: दिश, विदिश)। दिस—तरफ़, दिशा (चार दिशायें हैं—उत्तर दक्षिण, पूर्व, पश्चिम)। विस—विदिस, दो दिशाओं की बीच की जगह। अभंड—[(अ+भंड) भंड—स्त्री (देखें आसा की वार सटीक)] जो स्त्री से पैदा नहीं हुआ। महंत—महांत, सबसे बड़ा।

अर्थ : (हे प्रभु!) तू जल में, धरती पर (प्रत्येक स्थान पर) है, तुझे किसी सजावट की आवश्यकता नहीं। तू हर दिशा तथा उप-दिशा में मौजूद है। तू स्त्री से पैदा नहीं हुआ। (हे प्रभु!) तू जल में, धरती पर (हर स्थान पर) है। तू सबसे बड़ा है। हर तरफ़, हर कोने में तू मैजूद है, तथा तेरा अन्त नहीं पाया जा सकता।१६५।

अनुभव अनास ॥ ध्रिति धर धुरास ॥
आजान बाह ॥ एकै सदाहु ॥१६६॥

पद अर्थ : अनुभव—(देखें छंद न. १६३) अपने आप से प्राप्त हुआ ज्ञान। ध्रिति—धरती। धर धुरास—(सं: धुरन्धर, chief, head, pre-eminent) सरदार, धुरन्धर। आजान (देखें छंद नं. ८८) पैदा करने का वसीला, जगत रचना का मूल। बाह—वाह, ले जाने वाला, रखने वाला। आजान बाह—वह जो जगत रचना के वसीलों को अपने वश में रखता है।

अर्थ : (हे अविनाशी प्रभु!) तुझे ज्ञान के लिये किसी पर निर्भर नहीं होना पड़ता। तू आप ज्ञान रूप है, तथा धरती का सरदार है, जगत रचना के सारे वसीले तेरे अपने वश में है। तू सदा एक आप ही आप हैं।१६६।

ओअंकार आदि ॥ कथनी अनादि ॥
खल खंड खिआल ॥ गुर बर अकाल ॥१६७॥

पद अर्थ : ओअं—परमात्मा (देखें छंद न. १२८)। ओअंकार—प्रत्येक स्थान पर एक रस व्यापक प्रभु। कार—(सं: कार) संस्कृत का एक 'प्रत्यय' है। साधारणत्या यह 'संज्ञा' (noun) के अन्त में प्रयुक्त होता है। इस का अर्थ है : एक-रस, जिस में परिवर्तन न आये। (इस को अधिक समझने के लिये देखें आरम्भ में 'जपु जी सटीक' पन्ना ११ से १३)। कथनी—कथनी से, ब्यान करने का यत्न करने से। खल—दुष्ट। खंड—नाश। खिआल—विचार। गुर बर—सबसे बड़ा (शब्द 'वर' जब किसी समास के अन्त में प्रयुक्त हो तो इसका अर्थ होता है : 'श्रेष्ठ, अच्छा')। बर—वर।

अर्थ : (हे प्रभु!) तू प्रत्येक स्थान पर एक-रस व्यापक है। (सारे जगत का) मूल है। ब्यान करने का यत्न करने पर भी तेरा 'आदि' नहीं ढूंढा जा सकता। (हे प्रभु!) तू एक विचार में (ख्याल में) दुष्टों का नाश कर सकता है, तू सबसे बड़ा है, तथा मौत रहित है।१६७।

घरि घरि प्रणाम ॥ चिति चरन नामु ॥
आछिज गात ॥ आजिज़ न बात ॥१६८॥

पद अर्थ : चिति—चित्त में। आछिज—(देखें छंद न. १०३) पुराना न होने वाला। गात—शरीर। आजिज़—मोहताज, निर्भर। न बात—न किसी बात में।

अर्थ : (हे प्रभु!) घर घर में जीव तुझे नमस्कार करते हैं। जीवों के चित्त में तेरे चरण तथा तेरा नाम बस रहा है। (हे प्रभु!) तेरा शरीर कभी पुराना होने वाला नहीं है, तथा तू किसी बात में किसी पर निर्भर नहीं।१६८।

अनझंज गात ॥ अनरंज बात ॥
अनटुट भंडार ॥ अनठट अपार ॥१६९॥

पद अर्थ : झंज—झगड़ा, बखेड़ा। गात—शरीर, हस्ती, स्वरूप। अनरंज—रंज-रहित। बात—बातें। अनटुट—अटूट, न समाप्त होने वाले। अनठट—स्थापना से रहित।

अर्थ : (हे प्रभु!) तेरा स्वरूप झगड़ों-बखेड़ों से ऊपर है, तू (जीवों की) किसी बात पर क्रुद्ध नहीं होता, (तभी जीवों के लिये) तेरे कभी न समाप्त होने वाले भंडार खुले पड़े हैं। तुझे कोई मूर्ति के समान (मन्दिरों में) स्थापित नहीं कर सकता, तू अनन्त है।१६९।

आडीठ धरम ॥ अति ढीठ करम ॥
अणब्रण अनंत ॥ दाता महंत ॥१७०॥

पद अर्थ : आडीठ—अदृश्य (सं: अदृश्य, unforeseen, not observed or thought of) जो कहीं देखने में नहीं आया। धरम—(देखें छंद न. ९३) कर्त्तव्य-बोध। ढीठ—(bold, courageous, confident) दिलेर, साहसी। ब्रण—ज़ख़्म, चोट। अण-ब्रण—जो ज़ख़्मी न किया जा सके, जिस पर चोट न की जा सके। महंत—महांत, सबसे बड़ा।

अर्थ : (हे प्रभु!) तेरा कर्त्तव्य-बोध किसी अन्य स्थान पर दिखायी नहीं देता। तेरे सारे कार्य बड़े साहस-पूर्ण हैं, (भाव, तू जगत मर्यादा को चलाने का कर्त्तव्य इतने ध्यान से पूरा कर रहा है कि इस की उदाहरण नहीं मिलती, तथा यह सारा कार्य करता भी साहस, उत्साह से है, मजबूरी में नहीं)। (हे प्रभु!) तेरे ऊपर कोई चोट नहीं कर सकता, तू अनन्त है, (सब को देय पदार्थ) देने वाला है, तथा सबसे बड़ा है।१७०।

हरिबोलमना छंद ॥ त्व प्रसादि ॥

करुणालय हैं ॥ अरि घालय हैं ॥
खलखंडन हैं ॥ महि मंडन हैं ॥१७१॥

पद अर्थ : करुणा—दया। आलय—घर। अरि—शत्रु। घालय—नाश करने वाला। खल—दुष्ट। खंडन—नाश करने वाला। महि—धरती। मंडन—सजावट। मंड—सजाना।

अर्थ : (हे प्रभु!) तू दया का घर है। शत्रुओं को नष्ट करने वाला है। तू दुष्टों का नाश करने वाला है (तथा) धरती को सजाने वाला है।१७१।

जगतेस्वर हैं ॥ परमेस्वर हैं ॥
कलि कारन हैं ॥ सरब उबारन हैं ॥१७२॥

पद अर्थ : जगतेस्वर—जगत+ईश्वर, जगत का स्वामी। परमेस्वर—परम+ईश्वर, सबसे बड़ा स्वामी। कलि—जंग, युद्ध। सरब—सारे। कारन—मूल, रचने वाला।

अर्थ : (हे प्रभु!) तू जगत का स्वामी है, (तथा) सबसे बड़ा स्वामी है। तू युद्ध की रचना करने वाला (भी आप) है, तथा युद्धों में सबको बचाने वाला (भी आप) है।१७२।

ध्रित के धरन हैं ॥ जग के करन हैं ॥
मनि मानिय हैं ॥ जगि जानिय हैं ॥१७३॥

पद अर्थ : ध्रित—धरती। धरन—आसरा। मनि—मन में। मानिय—मानने योग्य। जगि—जगत में। जानिय—जानने योग्य।

अर्थ : (हे प्रभु!) तू धरती का सहारा है, (तथा) जगत को बनाने

वाला है। (तू ही जीवों के) मन में मानने योग्य है, (तथा) जगत में तू ही (सब के) जानने योग्य है (भाव, जगत के जीव अपने मनों में तुझे ही नमस्कार करते हैं, तथा तुझे ही जानने का यत्न करते हैं)।१७३।

सरबं भर हैं ॥ सरबं कर हैं ॥
सरब पासिय हैं ॥ सरब नासिय हैं ॥१७४॥

पद अर्थ : भर—पालने वाला। कर—पैदा करने वाला। पासिय—पास, नज़दीक। नासिय—नाश करने वाला।

अर्थ : (हे प्रभु!) तू सब को पालने वाला, तथा पैदा करने वाला है। तू सब जीवों के नज़दीक (बस रहा) है, (तथा) सब का नाश करने वाला है।१७४।

करुणाकर हैं ॥ बिस्वंभर हैं ॥
सरबेस्वर हैं ॥ जगतेस्वर हैं ॥१७५॥

पद अर्थ : करुणाकर—करुणा+आकर। आकर—खान, स्रोत। बिस्वं—सारे जगत को। सरबेस्वर—सरब+ईश्वर।

अर्थ : (हे प्रभु!) तू दया की खान है, सारे जगत को पालने वाला है। सब का स्वामी है, सारे जगत का ईश्वर है।१७५।

ब्रहमंडस हैं ॥ खल खंडस हैं ॥
पर ते पर हैं ॥ करुणाकर हैं ॥१७६॥

पद अर्थ : ब्रहमंडस—ब्रहमाण्ड का स्वामी। खल—दुष्ट। खंडस—टुकड़े (करने वाला)। करुणाकर—करुणा+आकर, करुणा का घर। पर—बड़ा, ऊँचा (highest)।

अर्थ : (हे प्रभु!) तू सारे संसार का स्वामी है, तथा दुष्टों के टुकड़े करने वाला है। (हे प्रभु!) तू ऊँचे से ऊँचा है, तथा करुणा का घर है।१७६।

अजपाजप हैं ॥ अथपाथप हैं ॥
अक्रिताक्रिति हैं ॥ अम्रिताम्रित हैं ॥१७७॥

पद अर्थ : अजपाजप—अजप+अजप। जप—धीमें सुर में धार्मिक पुस्तकों के मन्त्रों का उच्चारण करना। अजप—अ+जप, जपों की पहुँच से परे, जो 'जपों' से वश में न आ सके। अथपाथप—अथप+अथप। थप—स्थापना, मूर्ति को मन्दिर में पूजा के लिये टिकाना। अथप—अ+थप जो मूर्ति के समान मन्दिर में टिकाया न जा सके। अक्रिताक्रित—अक्रित+आक्रिति। क्रित—कृत, किया हुआ, बनाया हुआ। अक्रित—न रचा हुआ। आक्रिति—स्वरूप, शक्ल, मूर्ति। अक्रिताक्रिति—जिसकी मूर्ति बनायी न जा सके। अम्रिताम्रित—अम्रित+अम्रित। अम्रित—न मरने वाला।

अर्थ : (हे प्रभु!) (लोग, मन्त्रों के बल से देवताओं को वश में करते हैं पर) तू मन्त्रों की पहुँच से परे है, तथा न ही तुझे (देवताओं की मूर्तियों के समान किसी मन्दिर में) टिकाया जा सकता है; क्योंकि तेरी मूर्ति (ऐसी है जो) घड़ी नहीं जा सकती, (तथा) तू सदा अमर है।१७७।

अम्रिताम्रित हैं ॥ करुणाक्रिति हैं ॥
अक्रिताक्रिति हैं ॥ धरणी ध्रिति हैं ॥१७८॥

पद अर्थ : अम्रिताम्रित—अम्रित+अम्रित, सदा अमर। करुणाक्रिति—करुण+आक्रिति, दया की मूर्ति। अक्रिताक्रिति—अक्रित+आक्रिति। धरणी—धरती। ध्रिति—आसरा।

अर्थ : (हे प्रभु!) तू सदा अमर है, (तथा) दया की मूर्ति है। (हे प्रभु!) (कोई मनुष्य) तेरी मूर्ति घड़ नहीं सका, तू पृथ्वी का आसरा है।१७८।

अमितेस्वर हैं ॥ परमेस्वर हैं ॥
अक्रिताक्रिति हैं ॥ अम्रिताम्रिति हैं ॥१७९॥

पद अर्थ : अमितेस्वर—अमित+ईश्वर। मिति—मापा हुआ। अमित—जो मापा न जा सके (मा—मापना)।

अर्थ : (हे प्रभु!) तू (ऐसा) स्वामी है (कि तेरी ताकत को) मापा नहीं जा सकता; तू सब से बड़ा स्वामी है। (हे प्रभु!) कोई तेरी मूर्ति घड़ नहीं सकता, तू सदा ही अमर है।१७९।

अजबाक्रिति हैं ॥ अम्रिताम्रित हैं ॥
नर नाइक हैं ॥ खल घाइक हैं ॥१८०॥

पद अर्थ : अजबाक्रिति—अजब+आक्रिति। अजब—आश्चर्ययुक्त। आक्रिति—स्वरूप, मूर्ति, आकृति। नाइक—नायक, सरदार, प्रेरक। नर—मनुष्य। खल—दुष्ट। घाइक—नाश करने वाला।

अर्थ : (हे प्रभु!) तेरा स्वरूप आश्चर्ययुक्त है, तू सदा ही अमर है। तू मनुष्यों का स्वामी है, तथा दुष्टों का नाश करने वाला है।१८०।

बिस्वंभर हैं ॥ करुणालय हैं ॥
न्रिप नाइक हैं ॥ सरब पाइक हैं ॥१८१॥

पद अर्थ : बिस्व—जगत। भर—पालने वाला। करुणालय—करुणा+आलय, दया का घर। न्रिप—राजा। नाइक—स्वामी। पाइक—रक्षा करने वाला (पा—रक्षा करना)।

अर्थ : (हे प्रभु!) तू सारे जगत का पालन करने वाला है, (तथा) करुणा का घर है। तू राजाओं का (भी) स्वामी है, सब की रक्षा करने वाला है।१८१।

भव भंजन हैं ।। अरि गंजन हैं ।।
रिपु तापन हैं ।। जप जापन हैं ।।१८२।।

पद अर्थ : भव—जन्म, सांसारिक जीवन। भंजन—नाश करना। अरि—वैरी। गंजन—जीतना, हरा देना। रिपु—शत्रु। जापन—जपाने वाला।

अर्थ : (हे प्रभु!) तू जन्मों (के चक्कर) से बचाने वाला है, तथा वैरियों को जीतने वाला है। तू शत्रुओं को तपाने वाला है, तथा अपना जाप आप जपवाता है।१८२।

अकलंकित हैं ।। सरबाक्रिति हैं ।।
करता कर हैं ।। हरता हर हैं ।।१८३।।

पद अर्थ : अकलंकित—अ+कलंकित, जो कलंकित नहीं है। कलंक—दाग, दोष, धब्बा। कलंकित—दाग़ी, दोषी। सरबाक्रिति—सरब+आक्रिति। सरब—सम्पूर्ण। अक्रिति—आकृति, स्वरूप, मूर्ति। करता—पैदा करने वाला, ब्रहमा (कई मनुष्यों का मत है कि सृष्टि की रचना ब्रहमा ने की)। हरता—नाश करने वाला, शिव (शिव को जगत का नाश करने वाला देवता समझा जाता है)। हर—नाश करने वाला।

अर्थ : (हे प्रभु!) तेरे स्वरूप में कोई कलंक नहीं ढूँढ सकता, (क्योंकि) तेरा स्वरूप सम्पूर्ण है। तू ब्रहमा (आदि) को भी पैदा करने वाला है, (तथा) शिव (आदि) का भी नाश करने वाला है।१८३।

परमातम हैं ॥ सरबातम हैं ॥
आतम बसि हैं ॥ जस के जस हैं ॥१८४॥

पद अर्थ : परम—सबसे ऊँचा। सरबातम—सरब+आतम, सब की आत्मा। आतम—आपा, अपना आप। बसि—वश में, आधीन। जस—जैसा।

अर्थ : तू सर्वोच्च आत्मा वाला है, सब जीवों की आत्मा तू स्वयं ही है। तू अपने आप के वश में है, (क्योंकि) जैसा तू है, वैसा सिर्फ तू आप ही है।१८४।

भुजंग प्रयात छंद ॥
नमो सूरज सूरजे नमो चंद्र चंद्रे ॥
नमो राज राजे नमो इंद्र इंद्रे ॥
नमो अंधकारे नमो तेज तेजे ॥
नमो ब्रिंद ब्रिंदे नमो बीज बीजे ॥१८५॥

पद अर्थ : सूरज सूरजे—सूर्यों का सूर्य, सूर्य को तेज (प्रकाश) देने वाला। चंद्र चंद्रे—चन्द्रमा को शीतल चांदनी देने वाला। इंद्र—राजा, देवताओं का राजा। अंधकार—घना अन्धेरा। तेज तेज—महान चमक वाला तेज। तेज—प्रकाश। ब्रिंद—समूह, लोगों का मेला। ब्रिंद ब्रिंद—अनन्त जीवों का समूह। बीज—मूल। बीज बीज—बीज का बीज, सूक्ष्म।

अर्थ : (हे प्रभु!) तुझे नमस्कार है; तू सूर्य को जलाल (तेज-मय प्रकाश) देने वाला है, तथा चन्द्रमा को शीतल चांदनी देने वाला है (भाव, तू जलाल तथा जमाल दोनों का स्वामी है)। तू राजाओं का राजा है, तू देवताओं के राजा का भी राजा है।

(हे प्रभु!) तुम्हें नमस्कार है; अन्धकार भी तू ही है, तथा अत्यन्त चमक वाला प्रकाश भी तू ही है।

तुझे नमस्कार है; जीवों का अनन्त समूह भी तू ही है, तथा सूक्ष्म से सूक्ष्म रूप भी तू स्वयं ही है (भाव, यह दिखायी देने वाला अनन्त जगत तेरा ही रूप है, तथा इस जगत का अदृश्य सूक्ष्म मूल भी तू ही है।१८५।

नमो राजसं तामसं सांत रूपे ॥
नमो परम तत्तं अतत्तं सरूपे ॥
नमो जोग जोगे नमो गिआन गिआने ॥
नमो मंत्र मंत्रे नमो धिआन धिआने ॥१८६॥

पद अर्थ : राजस रूप—रजोगुण का रूप, 'रजस' का रूप। रजस—परमात्मा की रची हुयी माया के तीन गुण माने गये हैं, ये सारा जगत इन तीनों गुणों से बना है। ये गुण हैं : 'सत्व', 'रजस' तथा 'तमस'। 'रजस' वह गुण है जिसकी प्रेरणा से जगत के सारे जीव 'उद्यम' में लगे हुये हैं। यह गुण मानव-जाति में प्रधान है। तामस—'तमस' का। तमस—'सांख्य' शास्त्र के अनुसार जगत की रचना के जो तीन 'गुण' मूल कारण हैं, उन में से एक है 'तमस', इसका अर्थ है 'अन्धकार', 'मन का अन्धकार'। सत्व—'सांख्य' के अनुसार यह जगत माया का तीसरा गुण है, तथा तीनों में से ऊँचा है, इस का अर्थ है 'भलाई', 'पवित्रता'। तत्त—(सं. तत्त्व) परम आत्मा, माया के तीन गुण—रंजस, तमस तथा सत्व। अतत्त—अ+तत्त, जो माया के तीनों गुणों से परे है। जोग जोग—योग का योग, सब से कठिन योग। गिआन गिआन—सर्वोच्च ज्ञान। मंत्र मंत्र—महां मन्त्र। धिआन धिआन—सब से गहरी समाधि।

अर्थ : (हे प्रभु!) तुझे नमस्कार है; (जगत रचना के तीन गुण) रजस, तमस तथा सत्व तुझसे ही बने हैं; (पर) तू परम आत्मा है, तथा तेरा स्वरूप (संसार रचना के इन तीन) तत्त्वों (गुणों) से नहीं बना।

तुम्हें नमस्कार है; सब से कठिन योग, सर्वोच्च ज्ञान तू ही है। तू ही महां मन्त्र है, तथा तू ही सब से गहरी समाधि है (भाव, तेरा 'नाम' ही हमारे लिये कठिन तप, ज्ञान, मन्त्र तथा समाधि है)।१८६।

नमो जुध्ध जुध्धे नमो गिआन गिआने ॥
नमो भोज भोजे नमो पान पाने ॥
नमो कलह करता नमो सांति रूपे ॥
नमो इंद्र इंदरे अनादं बिभूते ॥१८७॥

पद अर्थ : जुध्ध—युद्ध, लड़ाई। जुध्ध—(to conquer in fight) लड़ाई में जीतना। जुध्ध—लड़ाई में जीता हुआ। जुध्ध जुध्ध—जो लड़ाई में (शत्रुओं को) जीत लेता है। भोज—भोज्य, खुराक, जीवों की रोज़ी। पान—पाणि, हाथ। भोज पान—भोज्य पाणि, जिस के हाथ में जीवों का आहार है। भोज भोज, पान पान—भोज पान, भोज पान (देखें छंद न. ४८)। कलह—झगड़ा। करता—करने वाला। सांति—शान्ति। अनादि—अन+आदि, जिसका आरम्भ न खोजा जा सके। बिभूति—तेज प्रताप।

अर्थ : (हे प्रभु!) तुम्हें नमस्कार है; तू ही (शत्रुओं को) युद्धों में जीतने वाला है। तू ही (भाव, तेरा नाम ही जीवों के लिये) सब से श्रेष्ठ ज्ञान है। सब जीवों का आहार सदा तेरे ही हाथ में है, सदा तेरे ही आधीन है।

तू (जगत में) झगड़े पैदा करने वाला (भी) है, तथा शान्ति स्वरूप भी है (भाव, ठण्डक देने वाला भी है)। तू देवताओं के राजा का भी राजा है, तेरे तेज प्रताप का आदि (आरम्भ) नहीं ढूँढा जा सकता।१८७।

कलंकारि रूपे अलंकार अलंके ॥
नमो आस आसे नमो बांक बंके ॥

अभंगी सरूपे अनंगी अनामे ॥
त्रिभंगी त्रिकाले अनंगी अकामे ॥१८८॥

पद अर्थ : कलंकारि—कलंक+अरि, कलंकों का शत्रु, जिस में कोई दुर्गुण नहीं है। अलंकार—गहने। अलंक—गहने। अलंकार अलंक—गहनों का गहना, सुन्दर व्यक्तियों को सुन्दरता देने वाला। आस आस—आशाओं का आश्रय। बांक बंके—बांकों का बांका, सब से सुन्दर। त्रिभंगी—तीनों भवनों को नष्ट करने वाला (देखें छंद न. ७१)। त्रिकाल—तीनों ही कालों (भूत, वर्तमान तथा भविष्य) में मौजूद।

अर्थ : (हे प्रभु!) तुम्हें हमारी नमस्कार है; तेरा स्वरूप ऐसा है जिस में कोई ऐब (दोष) नहीं है। सुन्दर व्यक्तियों को सुन्दरता देने वाला तू ही है। (जीवों की) आशाओं का आश्रय तू ही है, तू सब से सुन्दर है।

(हे प्रभु!) तेरा वजूद नाश रहित है, तू अंग रहित है, तेरा कोई एक नाम नहीं है। तू तीनों भवनों का नाश करने वाला है, तीनों ही कालों में तू स्थिर रहने वाला है। तेरा कोई अंग नहीं है, तुझे कोई कामना प्रभावित नहीं कर सकती।१८८।

एक अछरी छंद ॥

अजै ॥ अलै ॥ अभै ॥ अबै ॥१८९॥
अभू ॥ अजू ॥ अनास ॥ अकास ॥१९०॥

पद अर्थ : अलै—अ+लै। लै—नाश, (जैसे 'प्रलय')। अबै—अ+बै। बै—नाश, मौत। अभू—अ+भू। भू—जन्म। अजू—अ+जू। जू—(to hurry on, move on quickly) चलना। अकास—आकाश (की तरह सर्वव्यापक)।

अर्थ : (हे प्रभु!) तुम्हें कोई जीत नहीं सकता, तू अविनाशी है।

तुम्हें किसी से डर नहीं, (क्योंकि) तुम्हें मौत नहीं व्याप सकती।१८९।

(हे प्रभु!) तू अजन्मा तथा अचल है, तू नाश रहित है, तथा आकाश की तरह हर स्थान पर मौजूद है।१९०।

अगंज ॥ अभंज ॥ अलक्ख ॥ अभक्ख ॥१९१॥
अकाल ॥ दिआल ॥ अलेख ॥ अभेख ॥१९२॥

पद अर्थ : अलक्ख—(invisible) अदृश्य। अभक्ख—(not eating anything) जिस को किसी खुराक की जरुरत न पड़े।

अर्थ : (हे प्रभु!) तुम्हें कोई जीत नहीं सकता। तुम्हें कोई तोड़ नहीं सकता। तू अदृश्य है। तुम्हें किसी खुराक की आवश्यकता नहीं है।१९१।

(हे प्रभु!) तू मौत से परे है, तथा दया का घर है। तेरा कोई चित्र नहीं बनाया जा सकता, (क्योंकि) तेरा कोई विशेष परिधान नहीं है।१९२।

अनाम ॥ अकाम ॥ अढाह ॥ अगाह ॥१९३॥
अनाथे ॥ प्रमाथे ॥ अजोनी ॥ अमोनी ॥१९४॥

पद अर्थ : अनाम—अ+नाम, विशेष नाम रहित। अकाम—कामना रहित। अढाह—जो गिराया न जा सके। अगाह—अथाह। अनाथ—अ+नाथ, जिस का कोई नाथ नहीं। प्रमाथ—(सब का) नाश करने वाला। अमोनी—अ+मोनी। मोनी—(सं: मौनी—observing a vow of silence) चुप चाप।

अर्थ : (हे प्रभु!) तेरा कोई एक नाम नहीं। तुम्हें कोई कामना व्याप नहीं सकती। तू अगाध है। न ही तुझे कोई गिरा सकता है।१९३।

(हे प्रभु!) तेरे ऊपर कोई नाथ नहीं है, तू सब का नाश करने वाला है। (हे प्रभु!) न तू जन्मों में आता है तथा न ही तू मौन धारण करके बैठा है।१९४।

न रागे ॥ न रंगे ॥ न रूपे ॥ न रेखे ॥१९५॥

अकरमं ॥ अभरमं ॥ अगंजे ॥ अलेखे ॥१९६॥

पद अर्थ : राग—मोह। रेख—चिन्ह।

अर्थ : (हे प्रभु!) तुम्हें मोह व्याप नहीं सकता (क्योंकि माया युक्त जीवों की तरह तेरा कोई स्वरूप नहीं है), तेरा न कोई रंग है, न रूप है, तथा न कोई चिन्ह है।१९५।

(हे प्रभु!) कोई भ्रम, भुलावा तुझे नहीं व्याप सकता, (तथा) न ही तुम्हें किन्हीं धार्मिक रस्मों की आवश्यकता है। तुम्हें कोई जीत नहीं सकता, तथा तेरा कोई चित्र नहीं बनाया का सकता।१९६।

भुजंग प्रयात छंद ॥

नमसतुल प्रणामे समसतुल प्रणासे ॥
अगंजुल अनामे समसतुल निवासे ॥
त्रिकामं बिभूते समसतुल सरूपे ॥
कुकरमं प्रणासी सुधरमं बिभूते ॥१९७॥

पद अर्थ : समस्त—(all, whole, entire) सारे। अनाम—अ+नाम, जिस का कोई एक नाम नहीं। समसतुल निवासे—जिस का सब (जीवों) में ठिकाना है। त्रिकामं—कामना रहित। बिभूति—ऐश्वर्य, प्रताप। त्रिकामं बिभूते—(उस प्रभु को) जिस का ऐसा प्रताप है कि कोई कामना उस पर प्रभाव नहीं डाल सकती। समसतुल सरूपे—(जगत के ये) सारे (जीव जन्तु) जिस का स्वरूप हैं। प्रणासी—नाश करने वाला। सुधरमं बिभूते—उस को कि 'सुधरम' जिस की सम्पदा है (सम्पत्ति है)। प्रणाम—वन्दनायोग्य। सुधरम—(attentive to duties) कर्त्तव्य पारायण, फ़र्ज़ को निभाने वाला।

अर्थ : उस वन्दनीय (प्रभु) को मेरा नमस्कार है जो सब (जीवों) का नाश करने वाला है, जो अजय है, जिस का कोई एक नाम नहीं तथा जो सब जीवों में टिका हुआ है।

(मेरी नमस्कार उस प्रभु को है) निष्काम होना जिसका प्रताप है, जगत के सारे जीव जन्तु जिस का स्वरूप हैं। जो बुराईयों का नाश करने वाला है तथा कर्त्तव्यों का अच्छी तरह पालन करना जिसका ऐश्वर्य है, (भाव, जिस के प्रताप के लक्ष्ण ये हैं कि कोई कामना उस को प्रभावित नहीं कर सकती, तथा जगत की रचना, पालन करना आदि सारे कर्त्तव्य ठीक तरह निभा रहा है)।१९७।

सदा सच्चिदानंद सत्तं प्रणासी ।।
करीमुल कुनिंदा समसतुल निवासी ।।
अजाइब बिभूते ग़ज़ाइब ग़नीमे ।।
हरीअं करीअं करीमुल रहीमे ।।१९८।।

पद अर्थ : सच्चिदानंद—सत+चित+अनंद। सत—हस्ती वाला, सत्य में मौजूद। चित—समझ, ज्ञानरूप। अनंद—खुशी, प्रफुल्लता। सत्र—वैरी, शत्रु। करीम—(करम) कृपा करने वाला। कुनिंदा—पैदा करने वाला। ग़नीम—वैरी। ग़ज़ाइब—ग़ज़ब करने वाला, कहर करने वाला। हरीअं—हर लेने वाला, नाश करने वाला। करीअं—पैदा करने वाला। रहीम—रहम करने वाला।

अर्थ : (हे प्रभु!) तुझे नमस्कार है; जो तू सत्य में अस्तित्व वाला है; चेतन है, तथा आनन्द स्वरूप है (तू सत चित आनन्द है) तू शत्रुओं का नाश करने वाला है; सब पर कृपा करने वाला है, सब को पैदा करने वाला है तथा सब जीवों में तू बसता है (तेरा निवास है)। (हे प्रभु!)

तेरा प्रताप आश्चर्ययुक्त है, (जीवों के) शत्रुओं पर तू ही मुसीबतें लाने वाला है। तू आप ही नाश करने वाला है; स्वयं ही पैदा करने वाला है। तू कृपा करने वाला है, तथा दया (रहम) करने वाला है।१९८।

चत्र चक्क्र वरती चत्र चक्क्र भुगते ।।
सुयंभव सुभं सरबदा सरब जुगते ।।
दुकालं प्रणासी दइआलं सरूपे ।।
सदा अंग संगे अभंगं बिभूते ।।१९९।।

पद अर्थ : चत्र—चतुर, चार। चक्क्र—(a realm, range) दिशा। वरती—मौजूद। भुगता—हुक्म देने वाला, राजा (देखें छंद न. ७७)। सुयंभव—(self existent) स्वयं प्रकाश, अपने आप से प्रकट होने वाला। सुभ—शुभ, सुन्दर। सरबदा—सदा, हमेशा। सरब जुगत—सब जीवों के साथ मिला हुआ। दुकाल—दो काल, दो समय, जन्म तथा मरण। अभंगं बिभूते—जिस का प्रताप नाश रहित है। बिभूति—प्रताप।

अर्थ : (हे प्रभु!) तुझे नमस्कार है; तू चारों दिशाओं में (भाव, सारे जगत में) मौजूद है। चारों दिशाओं में तेरा ही हुक्म चल रहा है। तू अपने आप से प्रकट हुआ है, सुन्दर है, तथा हर समय सब जीवों के साथ मिला हुआ है।

(हे प्रभु!) तू जीवों के जन्म मरण के (दुःख) नाश करने वाला है, तथा दया का रूप है, तू सदा सब जीवों के साथ है। तेरा प्रताप कभी नष्ट होने वाला नहीं है।

नोट : छंद न. १८३ में 'अकलंकित' का दूसरा पाठ अकलंक्रित भी किया जाता है।

१ओं सतिगुरप्रसादि ॥

त्व प्रसादि सवय्ये ॥

पातिसाही १० ॥

१०—दसवीं। पातिसाही १०—दसवें गुरु जी की (उच्चरित बाणी)।

त्व प्रसादि ॥

त्व—तव, तेरी। प्रसादि—कृपा के साथ।

त्व प्रसादि—तेरी कृपा से (इस बाणी का उच्चारण करता हूँ)।

स्रावग सुद्ध समूह सिधान के देखि फिरिओ घर जोगि जती के ॥
सूर सुरारदन सुद्ध सुधादिक संत समूह अनेक मती के ॥
सारे ही देस को देखि रहिओ मत कोऊ न देखीअत प्रानपती के ॥
स्री भगवान की भाइ क्रिपा हू ते एक रती बिनु एक रती के ॥१॥२१॥

पद अर्थ : स्रावग—(सं. श्रावक) बौद्ध भिक्षु। सुद्ध—पुण्यात्मा। समूह—झुण्ड। सिध—पहुँचे हुये योगी। घर—मठ, डेरे। जती—ब्रह्मचारी। सूर—सूरमे। सुरारदन—(सुर+आरदन) देवताओं को मारने वाले, दैत्य, मलेच्छ। सुद्ध—पवित्र। सुधादिक—(सुधा+आदिक) अमृत पीने वाले देवता। अनेक मती के—अन्य कई मतों के। संत समूह—संतों के समूह।

सारे ही देस को मत—सारे ही देशों के धर्म। प्रानपती—प्राणों का स्वामी, परमात्मा। भाइ—श्रद्धा। रती—प्यार, प्रेम। रती—रत्ती भर

(थोड़ा-सा)। रती के—थोड़े से मूल्य के, रत्ती भर के।

अर्थ : (मैं) पुण्यात्मा बौद्ध भिक्षु, पहुँचे हुये योगियों के समूह, योगियों तथा ब्रह्मचारियों के डेरे देख चुका हूँ;

सूरमे, दैत्य, पवित्र अमृतपान करने वाले (देवता) तथा अन्य कई मतों के संतों के समूह भी देख आया हूँ;

सारे ही देशों के मत-मतान्तर देख चुका हूँ, पर कोई मत ऐसा नहीं देखा जो इन प्राणों के स्वामी प्रभु का (बनने की विधि सिखाये);

अगर परमात्मा में श्रद्धा नहीं बनी, अगर प्रभु की कृपा-दृष्टि नहीं हुयी, यदि प्रभु के प्रेम से वन्चित रहें तो इन सारे ही मत मतान्तरों का मूल्य एक रत्ती भर समझो।१।२१।

माते मतंग जरे जर संगि, अनूप उतंग सुरंग सवारे।।
कोटि तुरंग कुरंग से कूदत, पउन के गउन को जात निवारे।।
भारी भुजान के भूप भली बिधि, निआवत सीस न जात बिचारे।।
एते भए तउ कहा भए भूपति, अंत कउ नांगे ही पाइ पधारे।।२।।२२।।

पद अर्थ : माते—मस्त हुये। मतंग—हाथी। जरे—जड़े हुये, सजाये हुये। ज़र—सोना। ज़र संगि—सोने (के आभूषणों) के साथ। अनूप—बे-मिसाल। उतंग—(सं: उत्तुग) ऊँचे कद वाले। सुरंग—सुन्दर रंगों के साथ।

कोटि—करोड़ों। तुरंग—घोड़े। कुरंग—हिरन। से—समान। पउन—हवा। गउन—चाल, वेग, गति। जात निवारे—मात कर दें।

भुज—भुजा, बाजू। भूप—राजा (भू—धरती। पा—पालक)। भली बिधि—अच्छी प्रकार। सीस—सिर। न जात बिचारे—अनुमान न लगाया जा सके।

एते—इतने बड़े। भए—हुये। तउ—तब भी। कहा भए—क्या हुआ। भूपति—राजा, धरती के स्वामी। पाइ—पैर।

अर्थ : (यदि) सोने के (आभूषणों के) साथ सजाये हुये, बे-मिसाल ऊँचे कद वाले तथा सुन्दर रंगों से सँवारे हुये मस्त हाथी हों;

(यदि) करोड़ों (ही) घोड़े हों, जो हिरनों के समान उछलते हों, तथा (इतने तेज़ चलते हों कि) हवा की गति को भी मात करते जाएं;

(यदि) बलवान भुजाओं वाले राजा, जिनकी गिनती का अनुमान न लगाया जा सके, आ कर अच्छी तरह सलाम करते हों;

—इतने बड़े प्रताप वाले राजा भी हों, तो क्या हुआ ? अन्त समय तो (संसार से) नंगे पैर ही चले जाते हैं।२।२२।

जीत फिरै सभ देस दिसान कउ, बाजत ढोल म्रिदंग नगारे ॥
गुंजत गूढ़ गजान के सुंदर, हंसत ही हय राज हजारे ॥
भूत भविक्ख भवान के भूपति, कउनु गनै नही जात बिचारे ॥
स्रीपति स्री भगवान भजे बिनु, अंत कउ अंत के धाम सिधारे ॥३॥२३॥

पद अर्थ : दिसान कउ—देसान कउ, देस+अन्न+कउ, अन्य अन्य देशों को। म्रिदंग—खाल से मढ़ा हुआ मिट्टी का एक साज़। नगारा—धौंसा।

गुंजत—गूँज रहे हों। गूढ़—टोले, समूह। गज—हाथी। हंसत—हिनहिनाते हों। हय—घोड़े। हय राज—अच्छे घोड़े, घोड़ों के बादशाह।

भूत—बीता हुआ समय। भविक्ख—आगे आने वाला समय। भवान—वर्तमान के समय के। भूपति—राजा। कउनु गनै—कौन गिन सके, कोई गिन न सके। बिचारे जात—गिने जा सकें, विचार की जा सके।

अंत कउ—अन्त को। अंत—मौत। धाम—घर। सिधारे—चले जाते हैं। स्रीपति—माया का पति, परमात्मा।

अर्थ : यदि कई देश देशान्तरों को जीतते रहें, (दरवाजे पर) ढोल, मृदंग तथा नगारे भी बजते हों;

(तबेलों में) सुन्दर हाथियों के समूहों के समूह गुन्जार कर रहे हों, तथा हज़ारों सुन्दर घोड़े हिनहिना रहे हों;

(ऐसे प्रताप वाले नृप) भूतकाल में भी (इतने हो चुके हों कि) कोई उनकी गिनती न कर सके, अन्दाज़ा भी न लगा सके, वर्तमान काल में भी ऐसे प्रताप वाले अनन्त राजा हों, भविष्य काल में भी हो जायें;

(फिर भी क्या हुआ ?) (इस सारी) माया के स्वामी परमात्मा का सिमरन किये बिना आख़िर (ये राजे भी) यमपुरी को जाते हैं (भाव, मौत के वश होते हैं, तथा ये ऐश्वर्य और प्रताप के सामान यहाँ ही धरे रह जाते हैं) ।३।२३।

तीरथ नान दइआ दम दान, सु संजम नेम अनेक बिसेखै ।।
बेद पुरान कतेब कुरान, ज़मीन ज़मान सबान के पेखै ।।
पउन अहार जती जतिधारि, सभै सु बिचारि हजार क देखै ।।
स्री भगवान भजे बिनु भूपति, एक रती बिनु एकु न लेखै ।।४।।२४।।

पद अर्थ : तीरथ नान—तीर्थों के स्नान। दइआ—दया, तरस, रहम। दम—मन को विकारों की तरफ़ से रोकना। संजम—विकारों पर काबू पाने के साधन, मन की एकाग्रता, योग-मत के अनुसार 'योग' के अन्तिम तीन साधनों का सम्पूर्ण नाम 'संजम' है; धारना, ध्यान तथा समाधि का इक्टठा नाम (संयम)। बिसेखै—विशेष। नेम—साधन।

कतेब कुरान—कुरान आदि चारों पश्चिमी मतों की धार्मिक पुस्तकें। ज़मान—ज़माना, समय। पेखै—देखे, पढ़े।

पउन—हवा। अहार—ख़ुराक। अहारि—खाने वाला। पउन अहारि—हवा खाने वाला, सिर्फ हवा के सहारे जीने वाला। जती—ब्रह्मचारी। हजार क—कई हज़ार। बिचारि देखै—विचार कर देखे, विचारता रहे।

भूपति—राजा, स्वामी। रती—प्यार। एकु—एक (साधन) भी। न लेखै—लेखे में नहीं, कबूल नहीं, किसी काम का नहीं।

अर्थ : (यदि कोई मनुष्य) तीर्थों के स्नान, (जीवों पर) दया, मन को विकारों की तरफ़ से रोकने के उद्यम, दान पुण्य, मन की एकाग्रता के साधन तथा अन्य अनेकों विशेष साधन करता रहे;

(यदि कोई मनुष्य) वेद, पुराण, कुराण आदि चारों पुस्तकों तथा सारी पृथ्वी के सारे ही धर्म ग्रन्थों को पढ़े;

केवल हवा के सहारे जीवित रहे, ब्रह्मचारियों वाला जीवन व्यतीत करे, तथा अन्य अनेकों ऐसे साधन सोचता रहे;

(तब भी) सारी सृष्टि के स्वामी परमात्मा का सिमरन किये बिना, प्रभु के प्यार के बिना, उसका एक साधन भी किसी काम का नहीं है।४।२४।

सुध सिपाह दुरंत दुबाह सु, साजि सनाह दुरजान दलैंगे॥
भारी गुमान भरे मन मै, करि परबत पंख हले न हलैंगे॥
तोरि अरीन मरोरि मवासन, माते मतंगन मानु मलैंगे॥
स्री पति स्री भगवान क्रिपा बिनु, तिआगि जहानु निदानि चलैंगे॥५॥२५॥

पद अर्थ : सुध—पवित्र, बढ़िया, अज़माये हुये (भाव, जिन की बहादुरी रण में अज़माई जा चुकी हो) बहादुर। सिपाह—सिपाही, योद्धा। दुरंत—दुर+अंत, (insurmountable) अजय। दुबाह—(सं: दर+वह) जिनका प्रकाश (तेज) सहा न जा सके। साजि—सजा कर, पहन कर। सनाह—लोहे की पोशाकें। दुरजान—दुर्जनों को, शत्रुओं को।

पंख—पंख। करि पंख—पंख लगाकर।

अरीन—शत्रुओं को। मवासन—विद्रोहियों को। मतंग—हाथी। मतंगन मानु—हाथियों का अहंकार। मलैंगे—तोड़ देते हैं।

स्री पति—माया का स्वामी, परमात्मा। तिआगि—छोड़कर। निदानि—अंत को [*नोट*: कई टीकाकार इस शब्द का अर्थ करते हैं 'नादान'। शब्द 'निदान' तथा 'नादान' का अन्तर साफ, प्रत्यक्ष दिखायी देता है, कोई शक की गुंजायश नहीं है। 'नादान' शब्द फ़ारसी का है, इस का अर्थ है: 'मूर्ख'। 'निदान' शब्द संस्कृत का है, इस का अर्थ है: 'समाप्ति' (end, termination)]।

अर्थ : बहादुर यौद्धा (भी), जो जीते न जा सकें, जिन की वीरता असाध्य हो (भाव, जिनकी चलायी हुयी तलवार का वार सहा न जा सके), जो कवच पहन कर (रणभूमि में खंडा चलाकर) शत्रुओं का नाश कर देते हैं।

जिन के मन में यह अभिमान है कि चाहे पर्वत भी पंख लगाकर (अपने स्थान से) हिल जायें, परन्तु हम (रणभूमि में अपने स्थान से) नहीं हिलेंगे।

जो (अपने) शत्रुओं को तोड़कर विद्रोहियों (के सिर) को मरोड़ कर, मदमस्त हाथियों का (भी) मान तोड़ सकते हैं। (ऐसे बहादुर यौद्धा भी) माया के स्वामी अकाल पुरख की कृपा (-दृष्टि के पात्र बनने) के बिना दुनिया छोड़ कर अंत में (खाली हाथ ही) जाते हैं।५।२५।

बीर अपार बडे बरिआर, अबिचारहि सार की धार भछय्या ॥
तोरत देस मलिंद मवासन, माते गजान के मान मलय्या ॥
गाढ़े गढ़ान के तोड़नहार सु, बातन ही चक चारि लवय्या ॥
साहिबु स्री सभ के सिरि नाइकु, जाचक अनेकु सु एकु दिवय्या ॥६॥२६॥

पद अर्थ : बीर—सूरमे, यौद्धा। अपार—अनन्त, बड़े। बरिआर—(बल+ आलय) बल वाले, बली। अबिचारहि—विचार के बिना, लापरवाही के साथ। सार—लोहा, शस्त्र। भछय्या—खाने वाले, सहने वाले।

तोरत—तोड़ने वाले, जीतने वाले। मलिंद—मलने वाले। मवासी—विद्रोही मनुष्य। मवासन मलिंद—विद्रोहियों को मसलने वाले। माते—मस्त हुये। मलय्या—तोड़ने वाले।

गाढ़े—मजबूत। गढ़—किला। बातन ही—बातों से ही। चारि चक—सारी धरती। लवय्या—कब्ज़ा कर लेने वाले, अधिकार कर लेने वाले।

स्री साहिबु—लक्ष्मी का पति, परमात्मा। स्री—लक्ष्मी, माया। नाइकु—(सं: नायक) स्वामी, मालिक। सिरि—सिर पर। जाचक—याचक, भिखारी। अनेकु—(इन ऊपर बताये यौद्धाओं जैसे) अनन्त। दिवय्या—दानी, दाता, देने वाला।

अर्थ : बहुत बलशाली यौद्धा शूरवीर जो लापरवाही के साथ शस्त्रों की धार (भाव, चोट) सह सकें। जो (कई) देशों को जीत लें, विद्रोहियों को मसल दें, तथा मदमस्त हाथियों का मान तोड़ दें; जो मजबूत किलों को तोड़ दें, तथा बातों ही बातों में सारी धरती पर अधिकार कर सकें, (भाव, सारी धरती पर कब्ज़ा कर लेंना जिन के लिये कोई बड़ी बात न हो), ऐसे अनेक लोग (उस परमात्मा के दर पर) भिखारी हैं, (इनको) वह एक परमात्मा ही देने वाला है, जो माया का स्वामी है, तथा सब जीवों के सिर पर स्वामी है (नायक है)।६।२६।

दानव देव फनिंद निसाचर, भूत भविक्खं भवान जपैगे॥
जीव जिते जल मै थल मै, पल ही पल मै सभ थाप थपैगे॥

पुंन प्रतापन बाढ जैत धुनि, पापन को बहु पुंज खपैगे ।।
साध समूह प्रसंन फिरै जगि, सत्र सभै अवलोकि चपैगे ।।७।।२७।।

पद अर्थ : दानव—दैत्य, राक्षस। फनिंद—फण वालों का राजा (फणि+इन्द्र), साँपों का राजा, शेषनाग; पुराना ख्याल चला आ रहा है कि शेषनाग के एक हज़ार सिर हैं, विष्णु ने अपनी सेज इसके सिर पर बनायी हुयी है। सारी सृष्टि को इसने अपने सिर पर उठाया हुआ है। निसाचर—(निसा—निशा, रात, रात को चलने फिरने वाले) भूत-प्रेत। भूत—बीते हुये समय में। भविक्ख—आगे आने वाले समय में। भवान—वर्तमान समय में। जपैगे—जपते हैं।

जिते—जितने भी, भाव, सारे जीव। मै—में। पल ही पल मै—पल में ही। थाप—बनावट। थाप थपैगे—बनाता है, रचता है।

पुंन—पुण्य। प्रताप—तेज़। बाढ—वृद्धि। जैत धुनि—जै जैकार की आवाज़। पुंज—ढेर। खपैगे—नष्ट हो जाते हैं।

साध समूह—सारे अच्छे मनुष्य। जगि—जगत में। सत्र—वैरी, शत्रु, मन्दकर्मी मनुष्य। अवलोकि—देख कर। चपैगे—दब जाते हैं।

अर्थ : जो परमात्मा जल के तथा धरती के, (भाव, सारी सृष्टि के) सारे ही जीवों को पल भर में ही रचने की सामर्थ्य रखता है। उसको जो जीव भूतकाल में जपते रहे हैं, वर्तमान में जपते हैं, अथवा भविष्य में जपेंगें, (चाहे वे) दैत्य (हैं, चाहे वे) देवता (हैं, चाहे) शेषनाग (है, तथा चाहे) भूत, प्रेत (हैं)। उन सब के पुण्य कर्मों के तेज (प्रताप) तथा वृद्धि की जै जैकार की धुनि बढ़ती है, तथा उनके (पीछे किये हुये) मन्द कर्मों के पुंज नष्ट हो जाते हैं।

परमात्मा की भक्ति करने वाले मनुष्य संसार में प्रसन्न चित्त फिरते हैं, तथा विकारग्रस्त मनुष्य उनको देखकर शर्मिन्दा हो जाते हैं।७।२७।

मानव इंद्र गजिंद्र नराधिप, जौन त्रिलोक को राजु करैगे॥
कोटि इसनान गजादिक दान, अनेक सुअंबर साजि बरैगे॥
ब्रहम महेसुर बिसन सचीपति, अंति फसे जमफास परैगे॥
जे नर स्रीपति के प्रसि है पग, ते नर फेरि न देह धरैगे॥८॥२८॥

पद अर्थ : मानव—मनुष्य। इंद्र—राजा। मानव इंद्र—मनुष्यों का राजा। गजिंद्र—गज+इन्द्र, हाथियों के राजा, बड़े बड़े हाथी। नराधिप—(नर+ अधिप) मनुष्यों के रक्षक, राजा। त्रिलोक को राजु—तीनों लोकों (धरती, आकाश, पाताल) का राज्य, सारी सृष्टि का राज्य। करैगे—भाव, करते हैं। जौन—जो।

कोटि इसनान—करोड़ों (तीर्थों के) स्नान। गजादिक—हाथी आदि। सुअंबर—(स्वयंवर) अपना वर स्वयं ढूंढने की प्रथा। साजि—रचकर। बरैगे—भाव, वरण करते हैं, विवाह करते हैं। महेसुर—शिव। सचीपति—सची का पति, इन्द्र (सची, इन्द्र देवता की पत्नी का नाम है)। अंति—अन्त को। जमफास—मौत का फन्दा, मौत के वश। जे नर—जो मनुष्य। स्रीपति—श्री का पति, लक्ष्मी का पति, परमात्मा। प्रसि है—छूते हैं, स्पर्श करते हैं। पग—पैर। प्रसि है पग—पैर छूते हैं। फेरि—फिर। देह न धरैगे—शरीर धारण नहीं करते, जन्म मरण के चक्र में नहीं पड़ते।

अर्थ : जो मनुष्य बड़े बड़े हाथियों के स्वामी होकर चक्रवर्ती राजा बनते हैं तथा सारी सृष्टि पर राज्य करते है;

जो मनुष्य करोड़ों तीर्थों पर (भी) स्नान करके हाथी आदि दान करते हैं, तथा कई स्वयंवर करके विवाह करते हैं;

(ये सारे बड़े बड़े लोग तो कहीं रहे) ब्रह्मा, शिव, विष्णु तथा इन्द्र (जैसे भी) आख़िर मौत के वश में आ जाते हैं। (केवल) वे मनुष्य

फिर जन्म मरण के चक्र में नहीं पड़ते, जो परमात्मा के चरण छूते हैं, (भाव, जो प्रभु की बन्दगी करते हैं)।८।२८।

कहा भयो जो दोऊ लोचन मूंदि कै, बैठ रहिओ बक धिआनु लगाइओ ॥
नात फिरिओ लीए सात समुंद्रन, लोक गइओ परलोकु गवाइओ ॥
बास कीओ बिखिआन सो बैठि कै, ऐसे ही ऐसे सो बैस बिताइओ ॥
साचु कहउ सुनि लेहु सभै, जिनि प्रेमु कीओ तिन ही प्रभु पाइओ ॥९॥२९॥

पद अर्थ : कहा भयो—क्या हुआ ? भाव इस बात का कोई लाभ नहीं। जो—यदि। लोचन—आंखें। मूंदि कै—बन्द करके। बक धिआनु—बगुले वाली समाधि। फिरिओ—घूमा। लीए—तक। बास—निवास। कीओ—किया। बिखिआन सो—विषयों के साथ। ऐसे ही ऐसे—वैसे ही, व्यर्थ ही। बैस—(वयस)आयु। कहउ—मैं कहता हूँ। सभै—सारे लोग। जिनि—जिस मनुष्य ने। साचु कहउं—मैं सच कहता हूँ, वास्तविक बात यह है। बैठि कै—बैठकर, अन्य सब कुछ छोड़ छाड़कर।

अर्थ : यदि (कोई मनुष्य) दोनों आँखें मूँद कर बैठा रहता है, तथा (वह) बगुले वाली समाधि लगाता है, तो इस का कोई लाभ नहीं हो सकता। यदि (कोई मनुष्य) सात समुद्र पर्यन्त (सारे तीर्थों पर) स्नान करता रहे, तो उसने यह लोक (भाव, वर्तमान जीवन का सुख) गँवा लिया, तथा परलोक भी गवा लिया (क्योंकि प्रभु का सिमरन नहीं किया)।

पर जिस मनुष्य ने (समाधि तथा तीर्थ स्नान आदि कर्म छोड़कर) विषई पुरुषों के साथ बैठकर विषयों में निवास किया, उसने भी (सारी) आयु व्यर्थ ही गँवा ली।

(हे भाई) सारे ध्यान से सुन लें, सत्य बात यह है (कि न तो

बगुले वाली स्माधियों तथा तीर्थ स्नानों से परमात्मा मिलता है, तथा न ही विषय-विकारों में ग्रस्त रहना जीवन-मनोरथ है)। उसी मनुष्य ने परमात्मा को पाया है, जिस ने (ख़ालक तथा ख़लकत, रचना तथा रचयता के साथ) प्रेम किया है।९।२९।

काहू लै पाहनु, पूजि धरयो सिरि, काहू लै लिंगु गरे लटकाइओ ॥
काहू लखिओ हरि अवाची दिसा महि, काहू पछाह को सीस निवाइओ ॥
कोऊ बुतान को पूजत है पसु, कोऊ म्रितान कउ पूजन धाइओ ॥
कूर क्रिआ उरझिओ सभ ही जगु, स्री भगवान को भेदु न पाइओ ॥१०॥३०॥

पद अर्थ : काहू—किसी (मनुष्य) ने। पाहनु—पत्थर। पूजि—पूज कर। सिरि—सिर पर। गरे—गले में। लखिओ—देखा, समझा। अवाची—दक्षिण। दिसा—दिशा। पछाह को—पश्चिम की तरफ़। *नोट :* टीकाकार पछाह शब्द की समानता में शब्द 'अवाची' का अर्थ 'चढ़ता', सूर्य चढ़ने वाली दिशा करते हैं, यह ग़लत है। चारों दिशाओं के लिये संस्कृत में निम्नलिखित शब्द हैं :

उदीची—उत्तर दिशा अवाची—दक्षिण दिशा।
प्राची—पूर्व दिशा प्रतीची—पश्चिम दिशा।

अवाची दिसा—दक्षिण दिशा, जिधर द्वारिका मन्दिर है (कृष्ण जी का निवास स्थान)। पसु—पशु, मूर्ख। म्रित—मुर्दा, मृत (भाव, कब्र, जहाँ मुर्दा दबा पड़ा है)। कूर—झूठ। क्रिया—कर्म, रस्म। उरझिओ—उलझा हुआ है, लगा हुआ है। स्री भगवान—परमात्मा।

अर्थ : किसी मनुष्य ने पत्थर (भाव, सालिगराम) लेकर, पूजा करके उसको सिर पर रखा है, (भाव, सालिगराम को सिर झुकाया है, माथा टेका

है), किसी ने शिव-लिंग लेकर गले में लटकाया हुआ है, (भाव, पूजा के लिये साथ लिये फिरता है)।

किसी मनुष्य ने परमात्मा को दक्षिण दिशा में (द्वारिका में) ही (बसता) समझा है। किसी ने (पश्चिम दिशा में, सिर्फ काबे को खुदा का घर समझ कर) पश्चिम दिशा की तरफ़ सिर झुकाया है।

कोई मनुष्य बुतों को (परमात्मा समझ कर) पूज रहा है, तथा कोई कब्रों को पूजने के लिये दौड़ा फिरता है।

(इस तरह) सारा संसार ही झूठी रस्मों में उलझा हुआ है, तथा परमात्मा का भेद (इनमें से) किसी ने नहीं पाया।१०।३०।

१ओं वाहिगुरु जी की फ़तह ॥

श्री मुखवाक पातिशाही १० ॥

त्व प्रसादि ॥

पद अर्थ : त्व—तव, तेरी। प्रसादि—प्रसाद द्वारा, कृपा से।
अर्थ : (हे प्रभु!) तेरी कृपा से (मैं यह बाणी उच्चारता हूँ)।

चौपई ॥

चौपई—चौ+पई—चार पदों वाली, वह बाणी जिस के हर बंद में चार चार पद हैं।

प्रणवौ आदि एकंकारा ॥ जलि थलि महीअलि कीओ पसारा ॥
आदि पुरखु अबगतु अबिनासी ॥ लोक चतुरदस जोति प्रकासी ॥१॥

पद अर्थ : प्रणवौ—मैं प्रणाम करता हूँ, मैं सिर झुकाता हूँ। आदि—मूल, प्रारम्भ, जो सारी सृष्टि का मूल है, जिस से सारी सृष्टि बनी है। एकंकारा—एक ओंकार, एक परमात्मा जो एक रस व्यापक है। थलि—धरती के अन्दर। महीअलि—मही तलि, धरती के ऊपर (भाव, आकाश में)। पसारा—प्रसार। पुरखु—(पुरि शेते इति पुरुषः) जो प्रत्येक जीव में मौजूद है। अबगतु—(अव्यक्त) अदृष्ट, जो इन आंखों से दिखायी नहीं देता। चतुरदस—चार और दस, चौदह। चतुरदस लोक—चौदह भवनों में, सात आकाश तथा सात पातालों में, सारी सृष्टि में। प्रकासी—प्रकाश किया हुआ है।

अर्थ : मैं उस एक-रस परमात्मा के सम्मुख शीश झुकाता हूँ, जिस से सारी सृष्टि बनी है, जिस ने जल में, धरती के अन्दर, धरती के ऊपर आकाश में अपना आप प्रकट किया हुआ है। (मैं उस परमात्मा को नमस्कार करता हूँ) जो सारी सृष्टि का मूल है, जो सब जीवों में मौजूद है। जो (इन आंखों से हमें) दिखायी नहीं देता। जो कभी नष्ट होने वाला नहीं है, तथा जिस ने चौदह ही भवनों में अपने नूर से प्रकाश किया हुआ है।१।

हसति कीट के बीच समाना ।। राव रंक जिह इक-सर जाना ।।
अद्वै अलखु पुरखु अबिगामी ।। सभ घट घट के अंतरजामी ।।२।।

पद अर्थ : हसति—हाथी (*नोट :* शब्द 'हसत' तथा 'हसति' के अन्तर का ध्यान रखना। हसत—हाथ, सूँड। हसति—हाथ वाला, सूँड वाला हाथी)। कीट—कीड़ा (संस्कृत का अक्षर 'ट' प्राकृत तथा पंजाबी में 'ड़' बन गया है, जैसे संस्कृत 'कटक' से पंजाबी अक्षर 'कड़ा' है, जैसे संस्कृत 'निकटि' से पंजाबी शब्द 'नेड़े' है)। राव—अमीर, राजा। रंक—कंगाल। जिह—जिस परमात्मा ने। इक-सर—बराबर, एक जैसे। जाना—जाना है, प्यार किया है। अद्वै—जिस के समान कोई दूसरा नहीं है। अलखु—अ+लख, जिस के सारे गुण ब्यान नहीं किये जा सकते। अबिगामी—(सं: अविगम—unseparated, unremoved) जो अलग नहीं किया जा सकता। अंतरजामी—(जा—या, जाना, पहुँचना) अन्दर पहुँच जाने वाला। घट घट के—प्रत्येक हृदय के।

अर्थ : (मैं उस परमात्मा के आगे सिर झुकाता हूँ) जो हाथी से (लेकर) कीड़े (तक प्रत्येक जीव) में समाया हुआ है। जिस ने गरीब तथा अमीर प्रत्येक के साथ एक-सा नाता रखा हुआ है, जिस के समान कोई अन्य दूसरा नहीं है, जिसके सारे गुणों का वर्णन नहीं किया जा

सकता, जो सब जीवों में मौजूद है, जिसको (जीवों से) अलग नहीं किया जा सकता, तथा जो सब जीवों के हृदयों के अन्दर तक पहुँचने वाला है।२।

अलख-रूपु अछै अन-भेखा ।। राग रंग जिह रूप न रेखा ।।
बरन चिहन सभ हूँ ते निआरा ।। आदि पुरख अद्वै अबिकारा ।।३।।

पद अर्थ : अलख—ब्यान से परे। अलख रूपु—जिसका स्वरूप पूरी तरह ब्यान नहीं किया जा सकता। अछै—अ+छ-अ+क्षय-नाश-रहित, जो नाश नहीं हो सकता। भेख—धार्मिक लिबास। अन-भेखा—जिसका कोई खास धार्मिक लिबास नहीं। जिह—जिसका, जिसको। राग रंग—मोह की रंगत। रेखा—लकीर, चिन्ह, निशान। रूप रेखा—स्वरूप के विशेष चिन्ह। बरन—रंग, ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि वर्ण। निआरा—निराला, अलग। अबिकारा—अ-बिकार, (बिकार—परिवर्तन) changeless, जिसमें कोई परिवर्तन नहीं होता, जिसके स्वभाव में कोई अन्तर नहीं आता।

अर्थ : (मैं उस परमात्मा के आगे अपना सिर झुकाता हूँ) जिसका सही स्वरूप पूरी तरह ब्यान नहीं किया जा सकता, जो कभी नष्ट नहीं होता। जो किसी विशेष धार्मिक लिबास पर मुग्ध नहीं होता। जिस पर मोह की रंगत नहीं है, तथा जिसके स्वरूप के कोई खास चिन्ह नहीं बताये जा सकते।

(मैं उस प्रभु को नमस्कार करता हूँ), जो ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि वर्णों के चिन्हों से निराला है। जो सारी ही सृष्टि को बनाने वाला है, जो सब जीवों में मौजूद है। जिस के समान, कोई दूसरा नहीं है, तथा जिस के स्वभाव में कभी कोई अन्तर नहीं आता।३।

बरन चिहन जिह जाति न पाता ।। शत्र मित्र जिह तात न माता ।।
सभ ते दूरि, सभन ते नेरा ।। जलि थलि महीअलि जाहि बसेरा ।।४।।

पद अर्थ : चिहन—निशान, चिन्ह। जिह—जिस का। पाता—पाति, कुल। शत्र—शत्रु। तात—पिता। जाहि—जिस (परमात्मा) का। बसेरा—वास, ठिकाना। महीअलि—मही तलि, (मही—धरती) धरती के तल पर, धरती के ऊपर आकाश में।

अर्थ : (मैं उस परमात्मा के आगे सिर झुकाता हूँ) जिस का ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि किसी वर्ण का कोई चिन्ह नहीं है; जिस की कोई विशेष जाति नहीं है, जिस की कोई विशेष कुल नहीं है। जिसका कोई शत्रु नहीं, कोई मित्र नहीं, जिस की कोई माँ नहीं, कोई पिता नहीं।

(मैं उस प्रभु को नमस्कार करता हूँ) जो सब जीवों से दूर (अलग भी) है, तथा जो सब जीवों के पास (अंग संग भी) रहता है, जिसका निवास जल में है, धरती के अन्दर है, तथा धरती के ऊपर आकाश में भी है।४।

अनहद-रूपु अनाहद-बानी ।। चरन सरन जिह बसत भवानी ।।
ब्रहमा बिसन अंत नही पाइओ ।। नेति नेति मुखचार बताइओ ।।५।।

पद अर्थ : अनहद—(all-pervading) सर्वव्यापक, एक-रस। अनहद रूपु—वह प्रभु जिसका स्वरूप प्रत्येक स्थान पर एक-रस है। जिसका अस्तित्व सर्वव्यापक है। बानी—जीवन-रौ। अनाहद-बानी—वह परमात्मा, जिसकी जीवन-रौ प्रत्येक स्थान पर एक-रस मौजूद है। जिह चरन सरन—जिस के चरणों के आश्रय में। भवानी—देवी, दुर्गा। नेति—न-इति, ऐसा नहीं। नेति नेति—ऐसा नहीं है, ऐसा नहीं है, (भाव,) संसार में कोई

भी उस परमात्मा जैसा नहीं है। मुख चारि—चार मुखों वाले ने, ब्रह्मा ने। बताइओ—बताया, कहा।

अर्थ : (मैं उस परमात्मा के आगे अपना सिर झुकाता हूँ) जिसकी हस्ती (सारे ही संसार में) सर्वव्यापक है। जिसकी जीवन-रौ प्रत्येक स्थान पर एक-रस स्थित है। दुर्गा भी जिसके चरणों का आश्रय ले रही है।

(मैं उस प्रभु को नमस्कार करता हूँ) ब्रह्मा तथा विष्णु भी जिसके गुणों का अन्त नहीं पा सके, जिसके लिये ब्रह्मा ने कहा है कि उस जैसा अन्य कोई नहीं है, उस जैसा अन्य कोई नहीं है।५॥

कोटि इंद्र उपइंद्र बनाए॥ ब्रहमा रुद्र उपाइ खपाइ॥
लोक चतुरदस खेलु रचाइओ॥ बहुरि आप ही बीच मिलाइओ॥६॥

पद अर्थ : कोटि—करोड़। उपइंद्र—विष्णु का पाँचवां अवतार, जिसको वामन अवतार कहते हैं, यह इन्द्र का छोटा भाई था। रुद्र—शिव। उपाइ—पैदा करके। खेलु—तमाशा। बहुरि—फिर। आप ही बीच—अपने में ही।

अर्थ : (मैं उस परमात्मा के आगे सिर झुकाता हूँ) जिसने (एक नहीं) करोड़ों ही इन्द्र देवता तथा वामन अवतार पैदा किये हैं, जो करोड़ों ही ब्रह्मा तथा शिव पैदा करके नाश कर देता है।

(मैं उस प्रभु को नमस्कार करता हूँ) जिसने यह चौदह लोकों का तमाशा बनाया हुआ है, तथा (जब वह चाहता है इसको) फिर अपने में ही लीन कर लेता है।६।

दानव देव फनिंद अपारा॥ गंध्रब जच्छ रचे सुभचारा॥
भूत भविख भवान कहानी॥ घट घट के पट पट की जानी॥७॥

पद अर्थ : दानव—दैत्य, राक्षस। फनिंद—(फण—साँप की कलगी। फणी—कलगी वाला साँप। फणि इन्द्र—कलगी वाले साँपों का राजा, सर्पों का राजा) शेषनाग। अपार—अ+पार, जिसकी गिनती का अन्तिम अंक न मिल सके, बेअंत, अनगिणत। गंध्रब—गन्धर्व, देवताओं के संगीतज्ञ। जच्छ—यक्ष, वे देवता जो धन के देवता कुबेर के सेवक माने जाते हैं, तथा जो कुबेर के ख़ज़ानों तथा बागों की रक्षा करते हैं। सुभचारा—शुभ-आचार, पवित्र आचरण वाले। रचे—पैदा किये। भूत—बीत चुके समय की। भविख—आने वाले समय की। भवान—वर्तमान समय की। कहानी—घटना, कथा। पट—परदा।

अर्थ : (मैं उस परमात्मा के आगे अपना सिर झुकाता हूँ) जिस ने अनगिणत राक्षस, देवता तथा शेषनाग पैदा किये हैं। जिसने अनेक ही गन्धर्व, यक्ष तथा पवित्रात्मा वाले जीव बनाये हैं।

(मैं उस प्रभु को नमस्कार करता हूँ) जिसने भूतकाल की कहानियाँ चला दी हैं, जो अब वर्तमान समय में घटित घटनाओं की कहानियाँ चला रहा है, जो भविष्यकाल की घटनाओं की कहानियाँ चलाने वाला है तथा जो प्रत्येक जीव के दिल की जानता है, जो प्रत्येक के अन्दर के परदे की जानता है।७।

भाव, वह प्रभु, एक शेषनाग नहीं अनेक शेषनाग पैदा करने वाला है। जो कुछ जगत में अब तक हुआ है, अब हो रहा है, आगे होगा, वह सब कुछ उस प्रभु का ही किया कराया हो रहा है।

तात मात जिह जाति न पाता ।। एक रंग काहू नही राता ।।
सरब जोति के बीच समाना ।। सबहूं सरब ठौर पहिचाना ।।८।।

पद अर्थ : तात—पिता। जिह—जिस परमात्मा का। पात—कुल।

एक रंग काहू नही—किसी एक जाति या कुल के प्यार में नहीं। राता—मस्त, लीन। जोति—जीव। सबहूं—सभी में। सरब ठौर—सभी स्थानों पर। पहिचाना—पहचाना है, मैंने पहचान लिया है, मैंने देख लिया है।

अर्थ : (मैं उस परमात्मा के आगे अपना सिर झुकाता हूँ) जिस की कोई माँ नहीं, जिसका कोई पिता नहीं, जिसकी कोई ख़ास जाति नहीं, जिसकी कोई विशेष कुल नहीं, जो किसी एक जाति या किसी एक कुल के प्यार में मस्त नहीं है।

(मैं उस प्रभु को नमस्कार करता हूँ) जो सब जीवों में मौजूद है, जिसको मैंने सब में तथा सब स्थानों पर बसते देखा है।८।

काल-रहित अनकाल-सरूपा ॥ अलख पुरखु अबिगतु अवधूता ॥
जाति पाति जिह चिह्न न बरना ॥ अबिगत-देव अछै अन-भरमा ॥९॥

पद अर्थ : काल—मौत, समय। काल-रहित—जिस पर मौत का ज़ोर नहीं चल सकता, जिस पर समय का प्रभाव नहीं पड़ता (भाव, जो वृद्ध होकर मौत के वश में नहीं पड़ता)। अनकाल—काल रहित। सरूपा—स्व+रूप, अपना रूप, अपना वजूद। अनकाल-सरूप—जिस का अपना अस्तित्व मौत-रहित है। अलख—जिसके गुण गिने नहीं जा सकते। अबिगतु—अदृष्ट। अवधूत—जिस ने माया का मोह, माया का बन्धन समाप्त कर दिया है। अछै—अ+छै, अ+क्षय, अविनाशी। अन-भरम—जो भटकना से परे है। अबिगतु—शरीर रहित, अदृष्ट।

अर्थ : (मैं उस परमात्मा के सम्मुख अपना सिर झुकाता हूँ)। जो मौत-रहित है, जिस का अपना वजूद समय के प्रभाव से परे है। जिस के गुण गिने नहीं जा सकते, जो सब जीवों में व्यापक है, जो इन आंखों से दिखायी नहीं देता तथा जो माया के बन्धनों से मुक्त है।

(मैं उस प्रभु को नमस्कार करता हूँ) जिस की कोई विशेष जाति नहीं है, जिसकी कोई विशेष कुल नहीं है, जिसका कोई विशेष स्वरूप बताया नहीं जा सकता, जिसका कोई विशेष वर्ण नहीं। जो किसी शरीर वाला (ब्रहमा, शिव आदि) देवता नहीं है, जिसको कभी मौत नहीं आ सकती, जो माया के चक्कर से ऊपर है।९।

सभ को कालु सभन को करता ॥ रोग सोग दोखन को हरता ॥
एक चित्त जिह इक छिन धिआयो ॥ काल फास के बीच न आयो ॥१०॥

पद अर्थ : सभ को—सब का, सब जीवों का। कालु—मौत, नाश करने वाला। को—का। करता—पैदा करने वाला। सोग—चिंता। दोख—ऐब, विकार, पाप। हरता—दूर करने वाला, नष्ट करने वाला। एक-चित्त—एकाग्र मन होकर, मन को उस प्रभु के साथ एक-रूप करके। जिह—जिस मनुष्य ने। इक छिन—थोड़े से समय के लिये भी। फास—फांसी। काल फास के बीच—मौत के फंदे में, मौत के सदा के सहम में।

अर्थ : (मैं उस परमात्मा के सम्मुख अपना सिर झुकाता हूँ) जो सब जीवों को पैदा करने वाला है, तथा सब जीवों का नाश करने वाला भी है। जो सब जीवों के रोग, चिन्ता तथा पापों को दूर करने में समर्थ है।

जिस भी मनुष्य ने उस परमात्मा को एकाग्र मन से क्षण भर भी याद किया है, वह मनुष्य मौत के सहम में से निकल जाता है (उसका मौत का डर, सहम दूर हो जाता है)।१०।

१ओं सतिगुरप्रसादि ॥

रामकली महला ३ अनंदु

अनंदु भइआ मेरी माए, सतिगुरू मै पाइआ ॥
सतिगुरु त पाइआ सहज सेती, मनि वजीआ वाधाईआ ॥
राग रतन परवार परीआ, सबद गावण आईआ ॥
सबदो त गावहु हरी केरा, मनि जिनी वसाइआ ॥
कहै नानकु अनंदु होआ, सतिगुरू मै पाइआ ॥१॥

पद अर्थ : अनंदु—पूर्ण आनन्द, पूर्ण प्रसन्नता। पाइआ—प्राप्त कर लिया है। सहज—अडोल अवस्था। सहज सेती—अडोल अवस्था के साथ। मनि—मन में। वाधाई—चड़्दी कला, उत्साह पैदा करने वाला गीत। परीआ—रागिनियां। राग रतन—सुन्दर राग। केरा—का।

अर्थ : हे (भाई) माँ! (मेरे अन्दर) पूर्ण आनन्द पैदा हो गया है, (क्योंकि) मुझे गुरु मिल गया है। मुझे गुरु मिला है, तथा साथ ही अडोल अवस्था भी प्राप्त हो गयी है, (भाव, गुरु के मिलने से मेरे मन ने डोलना छोड़ दिया है); मेरे मन में (मानों) खुशी के बाजे बज गये हैं, सुन्दर राग अपने परिवार तथा रागिनियों सहित (मेरे मन में, मानों) प्रभु की सिफति-सालाह (कीर्ति) के गीत गाने आ गये हैं।

(हे भाई! तुम भी) प्रभु की प्रशंसा के गीत गाओ, जिन्होंने भी गुण-कीर्तन का शब्द मन में बसाया है (उनके अन्दर पूर्ण आनन्द पैदा हो जाता है)।

नानक कहता है (मेरे अन्दर भी) आनन्द बन गया है, (क्योंकि) मुझे सतिगुरु मिल गया है।१।

भाव : गुरु से परमात्मा के गुण-कीर्तन की दाति मिलती है, तथा सिफति-सालाह (गुण-कीर्तन) की बरकत से मनुष्य के मन में पूर्ण आनन्द पैदा हो जाता है।

ए मन मेरिआ, तू सदा रहु हरि नाले ॥
हरि नालि रहु तू मंन मेरे, दूख सभि विसारणा ॥
अंगीकारु ओहु करे तेरा, कारज सभि सवारणा ॥
सभना गला समरथु सुआमी, सो किउ मनहु विसारे ॥
कहै नानकु मंन मेरे, सदा रहु हरि नाले ॥२॥

पद अर्थ : मंन मेरे—हे मेरे मन! सभि—सारे। विसारणा—दूर करने वाला। अंगीकारु—पक्ष, सहायता। समरथु—करने योग्य। मनहु—मन से। विसारे—भुलाता है।

अर्थ : हे मेरे मन! तू सदा प्रभु के साथ (जुड़ा) रह। हे मेरे मन! तू सदा प्रभु को याद रख। वह प्रभु सारे दुःख दूर करने वाला है। वह सदा तेरी सहायता करने वाला है, तेरे सारे कार्य सम्पूर्ण करने में समर्थ है।

(हे भाई!) उस स्वामी को क्यों (अपने) मन से भुलाता है, जो सारे कार्य करने में समर्थ है।

नानक कहता है—हे मेरे मन! तू सदा प्रभु के चरणों में जुड़ा रह।२।

भाव : जो मनुष्य परमात्मा की याद में जुड़ा रहता है, परमात्मा उस के सारे दुःख दूर कर देता है, उस के सारे कार्य सँवारता है। वह स्वामी सारे कार्य करने में समर्थ है।

साचे साहिबा, किआ नाही घरि तेरै ॥
घरि त तेरै सभु किछु है, जिसु देहि सु पावए ॥
सदा सिफति सलाह तेरी, नामु मनि वसावए ॥
नामु जिन कै मनि वसिआ, वाजे सबद घनेरे ॥
कहै नानकु सचे साहिब, किआ नाही घरि तेरै ॥३॥

पद अर्थ : घरि तेरै—तेरे घर में। त—तो। सभु किछु—प्रत्येक वस्तु। देहि—तू देता है। सु—वह मनुष्य। पावए—प्राप्त कर लेता है। सिफति सलाह—प्रशंसा, बड़ाई। मनि—मन में। वसावए—बसाता है। जिन कै मनि—जिन के मन में। वाजे—बजते हैं। सबद—साज़ों की आवाज़, रागों की सुर। घनेरे—अनन्त। सचे—हे सदा कायम रहने वाले!

अर्थ : हे सदा कायम रहने वाले स्वामी (प्रभु)! (मैं तेरे दर से मन का आनन्द मांगता हूँ, पर) तेरे घर में कौन-सी वस्तु नहीं है ? तेरे घर में तो प्रत्येक वस्तु मौजूद है। वही मनुष्य प्राप्त करता है जिस को तू आप देता है, (फिर वह मनुष्य) तेरा नाम तथा तेरी प्रशंसा (अपने) मन में बसाता है (जिस की बरकत से उसके अन्दर आनन्द पैदा हो जाता है)। जिन लोगों के मन में (तेरा) नाम बसता है (उनके अन्दर मानों) अनन्त साज़ों की (मिली जुली) सुरें बजने लगती हैं (भाव, उनके मन में वही खुशी तथा चाव पैदा होता है, जो कई साज़ों का मिला जुला राग सुनकर पैदा होता है)।

नानक कहता है—हे सदा कायम रहने वाले स्वामी! तेरे घर में किसी वस्तु की कमी नहीं है। (तथा, मैं तेरे दर से आनन्द का दान मांगता हूँ) ।३।

भाव : जिस मनुष्य पर परमात्मा कृपा की दृष्टि रखता है, वह मनुष्य परमात्मा की प्रशंसा, परमात्मा का नाम अपने मन में बसाता है। नाम की

बरकत से मनुष्य के अन्दर आत्मिक आनन्द (पैदा हुआ रहता है) बना रहता है।

साचा नामु मेरा आधारो ।।
साचु नामु अधारु मेरा, जिनि भुखा सभि गवाईआ ।।
करि सांति सुख मनि आइ वसिआ, जिनि इछा सभि पुजाईआ ।।
सदा कुरबाणु कीता गुरू विटहु, जिस दीआ एहि वडिआईआ ।।
कहै नानकु सुणहु संतहु, सबदि धरहु पिआरो ।।
साचा नामु मेरा आधारो ।।४।।

पद अर्थ : आधारो—आसरा। जिनि—जिस (नाम) ने। भुख—लालच। करि—(पैदा) करके। मनि—मन में। इछा—मन की कामनायें। सभि—सारी। कुरबाणु—कुरबान। विटहु—से, पर।

अर्थ : (प्रभु की कृपा से उसका) सदा कायम रहने वाला नाम मेरे जीवन का आसरा (बन गया) है। जिस (हरि नाम) ने मेरे सारे लालच दूर कर दिये हैं, जिस (हरि नाम) ने मेरे मन की सारी कामनायें पूरी कर दी हैं। जो हरि नाम (मेरे अन्दर) शांति तथा सुख पैदा करके, मेरे मन में आकर बस गया है, वह सदा कायम रहने वाला नाम मेरे जीवन का सहारा (बन गया) है।

मैं (अपने आप को) अपने गुरु पर कुरबान करता हूँ, क्योंकि ये सारी बरकतें (कृपा) गुरु की हैं।

नानक कहता है—हे संत जनों! (गुरु का शब्द) सुनो, गुरु के शब्द में प्यार बनाओ। (सतिगुरु की कृपा से ही प्रभु का) सदा कायम रहने वाला नाम मेरे जीवन का सहारा (बन गया) है।४।

भाव : गुरु की कृपा से परमात्मा का नाम मिलता है। जिस मनुष्य को नाम प्राप्त हो जाता है, उसके अन्दर से माया के लालच दूर हो जाते हैं, तथा उसके अन्दर शान्ति पैदा हो जाती है, आत्मिक आनन्द पैदा हो जाता है।

वाजे पंच सबद तितु घरि सभागै ॥
घरि सभागै सबद वाजे, कला जितु घरि धारीआ ॥
पंच दूत तुधु वसि कीते, कालु कंटकु मारिआ ॥
धुरि करमि पाइआ तुधु जिन कउ, सि नामि हरि कै लागे ॥
कहै नानकु तह सुखु होआ, तितु घरि अनहद वाजे ॥५॥

पद अर्थ : वाजे—बजते हैं, बजे हैं। पंच सबद—पाँच तरह के साज़ों की मिली जुली सुरें। तितु—उस में। तितु घरि—उस हृदय-घर में। सभागै—भाग्य वाले में। तितु सभागै घरि—उस किस्मत वाले (हृदय) घर में। कला—शक्ति। जितु घरि—जिस घर में। धारीआ—तूने डाली है। पंच दूत—कामादिक पाँच शत्रु। कंटकु—कांटा। कंटकु कालु—भयानक काल मौत का डर। धुरि—आदि से। करमि—कृपा से। सि—से, वह मनुष्य। नामि—नाम में। अनहद—अन-हद, बिना बजाये बजने वाले, एक-रस लगातार।

अर्थ : जिस (हृदय) घर में (हे प्रभु! तूने) शक्ति दी है, उस किस्मत वाले (हृदय) घर में (मानो) पाँच तरह के साज़ों की मिली जुली सुरें बज पड़ती हैं (भाव, उस हृदय-घर में पूर्ण आनन्द पैदा हो जाता है), (हे प्रभु!) उसके पाँचों कामादिक शत्रु तू वश में कर देता है, तथा भयानक काल (भाव, मौत का डर) दूर कर देता है। पर केवल वही मनुष्य

हरि-नाम में जुड़ते हैं, जिन के भाग्य में तूने आदि से ही अपनी कृपा द्वारा (सिमरन का लेख लिखकर) रख दिया है।

नानक कहता है—उस हृदय-घर में सुख पैदा होता है, उस हृदय में (मानो) एक-रस (बाजे) बजते हैं।५।

भाव : परमात्मा ऊपर से ही (दरगाह से) जिन मनुष्यों के भाग्य में नाम सिमरन का लेख लिख देता है, वे मनुष्य नाम में जुड़ते हैं। नाम की बरकत से कामादिक पाँच शत्रु उन पर अपना दबाव नहीं डाल सकते। इस प्रकार उनके अन्दर आत्मिक आनन्द बना रहता है।

साची लिवै बिनु देह निमाणी ।।
देह निमाणी लिवै बाझहु, किआ करे वेचारीआ ।।
तुधु बाझु समरथ कोइ नाही, क्रिपा करि बनवारीआ ।।
एस नउ होरु थाउ नाही, सबदि लागि सवारीआ ।।
कहै नानकु लिवै बाझहु, किआ करे वेचारीआ ।।६।।

पद अर्थ : साची लिव—सच्ची लगन, सदा कायम रहने वाले प्रभु से प्रीति। देह—शरीर। निमाणी—बे-सहारा। किआ करे—क्या करती है ? जो कुछ करती है बेकार काम ही करती है। बनवारी—हे जगत के स्वामी! सवारीआ—अच्छी ओर लगायी जा सकती है। वेचारीआ—पराधीन, बेचारी, माया के प्रभाव (के नीचे) आधीन।

अर्थ : सदा कायम रहने वाले प्रभु के चरणों की लग्न (के आनन्द) के बिना यह (मानव) शरीर बे-सहारा सा ही रहता है। प्रभु के चरणों की प्रीति के बिना बे-सहारा हुआ यह शरीर जो कुछ भी क़रता है, बेकार कार्य ही करता है।

हे संसार के स्वामी! तेरे बिना कोई अन्य स्थान नहीं, जहाँ यह शरीर अच्छी ओर लग सके; कोई अन्य इस को अच्छी तरफ़ लगाने में समर्थ ही नहीं है। तू ही कृपा कर, ताकि यह गुरु के शब्द में लग कर सुधर जाये।

नानक कहता है—प्रभु-चरणों की प्रीति के बिना यह शरीर पराधीन (भाव, माया के आधीन) है, तथा जो कुछ करता है, बेकार काम ही करता है।६।

भाव : यदि मनुष्य के मन में परमात्मा के चरणों का प्यार न बने, तो यह सदा माया के प्रभाव में दुखी सा ही रहता है। मनुष्य की सारी ज्ञान-इन्द्रियाँ माया की दौड़-भाग में ही लगी रहती हैं। परमात्मा स्वयं कृपा करे, तो गुरु के शब्द में लग कर यह सुधर जाता है।

आनंदु आनंदु सभु को कहै, आनंदु गुरू ते जाणिआ ॥
जाणिआ आनंदु सदा गुर ते, क्रिपा करे पिआरिआ ॥
करि किरपा किलविख कटे, गिआन अंजनु सारिआ ॥
अंदरहु जिन का मोहु तुटा, तिन का सबदु सचै सवारिआ ॥
कहै नानकु एहु अनंदु है, आनंदु गुर ते जाणिआ ॥७॥

पद अर्थ : सभु को—प्रत्येक जीव। पिआरिआ—हे प्यारे भाई! क्रिपा करे—जब गुरु कृपा करता है। किलविख—पाप। अंजनु—काजल। सारिआ (आँखों में) डालता है। अंदरहु—मन में से। सचै—परमात्मा ने। सबदु—बोली। सबदु सवारिआ—बोली सँवार दी (भाव, कठोर शब्द, निंदा आदि के शब्द नहीं बोलता)। एहु अनंदु है—वास्तविक आत्मिक आनंद यह है (कि मनुष्य का कठोर तथा निन्दा आदि वाला स्वभाव ही नहीं रहता)।

अर्थ : कहने को तो प्रत्येक जीव कह देता है कि मुझे आनन्द प्राप्त हो गया है, पर (वास्तविक) आनन्द की समझ गुरु से ही मिलती है।

हे प्यारे भाई! (वास्तविक) आनन्द की सूझ सदा गुरु से ही प्राप्त होती है (वह मनुष्य वास्तविक आनन्द अनुभव करता है, जिस पर गुरु) कृपा करता है। गुरु कृपा करके उसके (अन्दर से) पाप दूर कर देता है, तथा (उसके ज्ञान नेत्रों में) आत्मिक जीवन की समझ का अंजन (काजल) डालता है।

जिन मनुष्यों के मन से माया का मोह समाप्त हो जाता है, अकाल पुरख (परमात्मा) उनकी बाणी ही मीठी तथा सुन्दर कर देता है।

नानक कहता है—वास्तविक आनन्द यही है, तथा यह आनन्द गुरु से ही समझा जा सकता है।७।

भाव : जिस मनुष्य को असल आत्मिक आनन्द प्राप्त होता है, उस का जीवन इतना प्यारा बन जाता है कि वह सदा मधुर-भाषी रहता है। यह आत्मिक आनन्द गुरु से मिलता है। गुरु उस मनुष्य के अन्दर से सारे विकार दूर कर देता है, तथा उसको आत्मिक जीवन की समझ देता है।

बाबा, जिसु तू देहि, सोई जनु पावै ।।
पावै त सो जनु, देहि जिस नो, होरि किआ करहि वेचारिआ ।।
इकि भरमि भूले फिरहि दहदिसि इकि नामि लागि सवारिआ ।।
गुर परसादी मनु भइआ निरमलु, जिना भाणा भावए ।।
कहै नानकु जिसु देहि पिआरे, सोई जनु पावए ।।८।।

पद अर्थ : बाबा—हे हरि! देहि—(आनन्द की दाति) देता है। होरि वेचारिआ—अन्य बेचारे जीव। किआ करहि—क्या कर सकते हैं ? माया

के आगे उनका वश नहीं चलता। इकि—कई जीव। भरमि—(माया की) भटकना में। दहदिसि—दसों तरफ़, (दसों दिशाओं में)। भाणा—रज़ा।

अर्थ : हे प्रभु! जिस मनुष्य को तू (आत्मिक आनन्द की दाति) देता है, वही प्राप्त करता है। वही मनुष्य (इस दाति का) आनन्द लेता है जिसको तू देता है, अन्य बेचारों का (माया के प्रकोप के आगे) वश नहीं चलता। कई मनुष्य माया के भटकाव में (असल मार्ग से) भूले हुये (भटके हुये) दसों दिशाओं में दौड़ते फिरते हैं, कई मनुष्यों (किस्मत वालों) को तू अपने नाम में जोड़कर (उनका) जन्म सँवार देता है। (इस तरह तेरी कृपा से) जिनको तेरी रज़ा प्यारी लगने लग जाती है, गुरु की कृपा से उनका मन पवित्र हो जाता है (तथा वे आत्मिक आनन्द का अनुभव करते हैं, पर)

नानक कहता है—(हे प्रभु!) जिसको तू आत्मिक आनन्द (की दाति) देता है, वही इसको अनुभव कर सकता है।८।

भाव : अपने उद्यम से कोई प्राणी आत्मिक आनन्द नहीं प्राप्त कर सकता, क्योंकि माया के सम्मुख किसी का वश नहीं चलता। जिन पर परमात्मा कृपा करता है, उनको गुरु से मिलाता है। गुरु के बताये मार्ग पर चलकर वे विकारों से बचते हैं, तथा हरि-नाम में जुड़ते हैं। उनके अन्दर सदा शांति तथा शीतलता बनी रहती है।

आवहु संत पिआरिहो, अकथ की करह कहाणी ॥
करह कहाणी अकथ केरी, कितु दुआरै पाईऐ ॥
तनु मनु धनु सभु सउपि गुर कउ, हुकमि मंनिऐ पाईऐ ॥
हुकमु मंनिहु गुरू केरा, गावहु सची बाणी ॥
कहै नानकु सुणहु संतहु, कथिहु अकथ कहाणी ॥९॥

पद अर्थ : अकथ—जिसके सारे गुणों का वर्णन न किया जा सके। करह—हम करें। कितु दुआरै—किस साधन से ? सउपि—सौंप दे। हुकमि मंनीऐ—यदि (प्रभु का) हुक्म मान लिया जाये। केरा—का। केरी—की।

अर्थ : हे प्यारे संत जनों! आओ हम (मिलकर) अनन्त गुणों वाले परमात्मा की (प्रशंसा) गुण-कीर्तन की बातें करें, उस प्रभु की कहानियाँ सुनें सुनायें, जिसके गुण ब्यान से परे हैं। (पर अगर तुम पूछो कि) वह प्रभु किस तरीके से मिलता है (तो उत्तर यह है कि अपने आपको माया के हवाले करने के स्थान पर) अपना तन, मन, धन सब कुछ गुरु के हवाले करें, (इस तरह) यदि गुरु का हुक्म मीठा लगने लगे, तो परमात्मा मिल जाता है।

(इस लिये संत जनों!) गुरु के हुक्म पर चलो तथा सदा कायम रहने वाले प्रभु की सिफति-सालाह की बाणी गाया करो। नानक कहता है—हे संत जनों! सुनो (उसको मिलने का तथा आत्मिक आनन्द अनुभव करने का सही रास्ता यही है कि) उस अकथनीय प्रभु की कहानियाँ किया करो।९।

भाव : आत्मिक आनन्द के दाता परमात्मा के मिलाप का एक ही रास्ता है, वह यह है कि मनुष्य अपना आप गुरु के हवाले कर दे। बस! गुरु के बताये रास्ते पर चले तथा परमात्मा की सिफति-सालाह के गीत गाता रहे। अन्दर आनन्द ही आनन्द बना रहेगा।

ए मन चंचला, चतुराई किनै न पाइआ ॥
चतुराई न पाइआ किनै, तू सुणि मंन मेरिआ ॥
एह माइआ मोहणी, जिनि एतु भरमि भुलाइआ ॥
माइआ त मोहणी तिनै कीती, जिनि ठगउली पाईआ ॥
कुरबाणु कीता तिसै विटहु, जिनि मोहु मीठा लाइआ ॥
कहै नानकु मन चंचल, चतुराई किनै न पाइआ ॥१०॥

पद अर्थ : किनै—किसी मनुष्य ने भी। मंन मेरिआ—हे मेरे मन! (शब्द 'मंन' का अनुस्वर एक मात्रा बढ़ाने के लिये ही है, असल शब्द 'मन' ही है)। जिनि—जिस (माया) ने। एतु भरमि—इस भ्रम में कि मोह एक मधुर वस्तु है। भुलाइआ—कुमार्ग पर डाल दिया। तिनै—उसी (प्रभु) ने। जिनि—जिस (प्रभु) ने। ठगउली—ठग बूटी। कुरबाणु—कुरबान। विटहु—से।

अर्थ : हे चंचल मन! चालाकियों से किसी ने भी (आत्मिक आनन्द) प्राप्त नहीं किया। हे मेरे मन! तू (ध्यान से) सुन ले कि किसी जीव ने चतुराई से (परमात्मा से मिलाप का आनन्द) प्राप्त नहीं किया, (अन्दर से मोहिनी माया में भी फसा रहे, तथा बाहर से सिर्फ बातों से आत्मिक आनन्द चाहे, यह नहीं हो सकता)।

यह माया जीवों को अपने मोह में फंसाने के लिये बड़ी मोहिनी है। इसने इस भ्रम में डाला हुआ है कि मोह मीठी चीज़ है, इस तरह कुमार्ग पर ले जाती है।

(पर जीव का भी क्या वश ?) जिस प्रभु ने माया के मोह की ठग-बूटी में (जीवों को) लिप्त किया है, उसने यह मोहिनी माया पैदा की है।

(इस लिये, हे मेरे मन! अपने आपको माया पर कुरबान करने के स्थान पर) उस प्रभु पर कुरबान कर, जिसने मीठा मोह लगाया है (तब ही यह मीठा मोह समाप्त होता है)।

नानक कहता है—हे (मेरे) चंचल मन! चतुराई से किसी ने (परमात्मा के मिलाप का आत्मिक आनन्द) नहीं प्राप्त किया।१०।

भाव : यदि मनुष्य अन्दर से माया के मोह में फंसा रहे, तथा बाहर सिर्फ चतुराई की बातों से आत्मिक आनन्द की प्राप्ति चाहे, यह नहीं हो सकता।

ए मन पिआरिआ, तू सदा सचु समाले ॥
एहु कुटंबु तू जि देखदा, चलै नाही तेरै नाले ॥
साथि तेरै चलै नाही, तिसु नालि किउ चितु लाईऐ ॥
ऐसा कंमु मूले न कीचै, जितु अंति पछोताईऐ ॥
सतिगुरू का उपदेसु सुणि तू, होवै तेरै नाले ॥
कहै नानकु मन पिआरे, तू सदा सचु समाले ॥११॥

पद अर्थ : समाले—सम्भाल, याद रख। जि—जो। मूले न—बिल्कुल नहीं। कीचै—करना चाहिये। जितु—जिस से। अंति—अंत में, अन्त समय।

अर्थ : हे प्यारे मन! (यदि तू सदा आत्मिक आनन्द प्राप्त करना चाहता है तो) सदा सच्चे प्रभु को (अपने अन्दर) सम्भाल कर रख। यह जो परिवार तू देखता है, इसने तेरे साथ नहीं चलना।

(हे भाई!) इस परिवार के मोह में क्यों फँसता है ? इस ने तेरा अन्त तक सदा साथ नहीं देना। जिस काम के करने से अन्त में पछताना पड़े, वह कार्य कभी भी नहीं करना चाहिये।

(हे भाई!) सतिगुरु की शिक्षा (ध्यान से) सुन, यह गुरु का उपदेश सदा याद रखना चाहिये।

नानक कहता है—हे प्यारे मन! (यदि तू आनन्द चाहता है) तो सदा कायम रहने वाले परमात्मा को हर समय (अपने अन्दर) सम्भाल कर रख।११।

नोट : अगली पउड़ी न. १२ को इस पउड़ी के साथ मिलाकर पढ़ना है, तथा अर्थ इस प्रकार करना है—तू सदा प्रभु को अपने अन्दर सम्भाल कर रख तथा कह—हे अगम आगोचर!

भाव : स्थायी आत्मिक आनन्द की प्राप्ति का एक ही तरीका है कि मनुष्य सांसारिक मोह में फंसे रहने के स्थान पर अपने मन में परमात्मा की याद बसाये रखे। बस, यही है गुरु की शिक्षा, जिसे कभी भुलाना नहीं चाहिये।

अगम अगोचरा, तेरा अंतु न पाइआ ।।
अंतो न पाइआ किनै तेरा, आपणा आपु तू जाणहे ।।
जीअ जंत सभि खेलु तेरा, किआ को आखि वखाणए ।।
आखहि त वेखहि सभु तू है, जिनि जगतु उपाइआ ।।
कहै नानकु तू सदा अगंमु है, तेरा अंतु न पाइआ ।।१२।।

पद अर्थ : अगम—हे अपहुँच प्रभु! अगोचरा—हे अगोचर हरि! अगोचर—अ+गो+चर, जिस तक ज्ञान इन्द्रियों की पहुँच न हो सके। किनै—किसी ने भी। आपु—अपने स्वरूप को। जाणहे—तू जानता है। सभि—सारे। आखि—कह कर। वखाणए—वखाणै, ब्यान करे। को—कोई जीव। आखहि—तू कहता है, तू बोलता है। वेखहि—तू सम्भाल करता है। जिनि—जिस ने।

अर्थ : (हे प्यारे मन! सदा प्रभु को अपने अन्दर सम्भाल रख तथा उसके आगे ऐसे विनती कर) हे अपहुँच हरि! हे इन्द्रियों की पहुँच से परे रहने वाले प्रभु! (तेरे गुणों का) किसी ने अन्त नहीं पाया। अपने (असल) स्वरूप को तू आप ही जानता है, और कोई जीव तेरे गुणों का अन्त नहीं पा सकता।

कोई अन्य जीव (तेरे गुणों को) कहकर ब्यान करे भी किस तरह ? ये सारे जीव तो तेरा ही बनाया एक खेल है। प्रत्येक जीव में तू आप ही बोलता है, प्रत्येक जीव की तू स्वयं ही सम्भाल करता है, (तू) जिस ने यह संसार पैदा किया है।

नानक कहता है—(हे मेरे प्यारे मन! प्रभु के सम्मुख विनती कर) तू सदा अपहुँच है, (किसी जीव ने तेरे गुणों का कभी) अंत नहीं पाया।१२।

भाव : आत्मिक आनन्द की प्राप्ति के लिये सदा प्रभु के दर पर ऐसे विनती करते रहना चाहिये—हे प्रभु! तू अनन्त है, प्रत्येक जीव के अन्दर तू ही बोल रहा है, प्रत्येक जीव की तू ही सम्भाल कर रहा है।

सुरि नर मुनि जन अंम्रितु खोजदे, सु अंम्रितु गुर ते पाइआ ॥
पाइआ अंम्रितु, गुरि क्रिपा कीनी, सचा मनि वसाइआ ॥
जीअ जंत सभि तुधु उपाए, इकि वेखि परसणि आइआ ॥
लबु लोभु अहंकारु चूका, सतिगुरू भला भाइआ ॥
कहै नानकु जिस नो आपि तुठा, तिनि अंम्रितु गुर ते पाइआ ॥१३॥

पद अर्थ : सुरि—देवता। मुनि जन—मुनि लोक, ऋषि। अंम्रितु—आत्मिक आनन्द देने वाला नाम-जल। गुरि—गुरु ने। मनि—मन में। सभि—सारे। इकि—कई जीव। वेखि—(गुरु को) देख कर। परसणि—(गुरु के चरण) स्पर्श करने के लिये, छूने के लिये। भला भाइआ—मीठा लगता है, प्यारा लगता है। ते—से।

अर्थ : (आत्मिक आनन्द एक ऐसा) अमृत (है जिस) को देवता, मनुष्य, मुनि लोग खोजते फिरते हैं, (पर) यह अमृत गुरु से ही मिलता है। जिस मनुष्य पर गुरु ने कृपा की, उसने (यह) अमृत प्राप्त कर लिया (क्योंकि) उसने सदा कायम रहने वाला प्रभु अपने मन में बसा लिया।

हे प्रभु! सारे जीव जन्तुओं को तूने ही पैदा किया है। तू इनको प्रेरित करता है, (तेरी प्रेरणा से ही) कई जीव (गुरु का) दीदार करके (उसके) चरण छूने आते हैं। सतिगुरु उनको प्यारा लगता है। सतिगुरु की कृपा से (उनका) लब, लोभ तथा अहंकार दूर हो जाता है।

नानक कहता है—प्रभु जिस मनुष्य पर प्रसन्न होता है, उस मनुष्य ने (आत्मिक आनन्द रूप) अमृत गुरु से प्राप्त कर लिया है।१३।

भाव : जिस मनुष्य पर परमात्मा कृपा करता है, उसे गुरु मिलता है। गुरु से उसको आत्मिक आनन्द देने वाला नाम-जल मिलता है। वह मनुष्य सदा कायम रहने वाले परमात्मा को अपने हृदय में बसाये रखता है। उसके अन्दर से लोभ, अहंकार आदि सारे विकार दूर हो जाते हैं।

भगता की चाल निराली ॥
चाला निराली भगताह केरी, बिखम मारगि चलणा ॥
लबु लोभु अहंकारु तजि त्रिसना, बहुतु नाही बोलणा ॥
खंनिअहु तिखी वालहु निकी, एतु मारगि जाणा ॥
गुर परसादी जिनी आपु तजिआ, हरि वासना समाणी ॥
कहै नानकु चाल भगता, जुगहु जुगु निराली ॥१४॥

पद अर्थ : भगत—आत्मिक आनन्द लेने वाले इन्सान। चाल—जीवन युक्ति। निराली—अलग। केरी—की। बिखम—कठिन। मारगि—राह पर। तजि—त्याग कर। खंनिअहु—खंडे से, तलवार से। वालहु—बाल से। निकी—बारीक। एतु मारगि—इस मार्ग पर। आपु—आपा-भाव। जुगहु जुगु—प्रत्येक युग में, प्रत्येक समय।

अर्थ : जो सौभाग्यशाली जीव आत्मिक आनन्द लेते हैं, वही भक्त हैं। उन भक्तों की जीवन युक्ति (दुनिया के लोगों से) भिन्न होती है। (यह पक्की बात है कि उन) भक्तों की जीवन युक्ति (दूसरों से) अलग होती है। वे बड़े कठिन रास्ते पर चलते हैं, वे लब, लोभ, अहंकार तथा माया की तृष्णा त्याग देते हैं तथा बहुत नहीं बोलते (भाव, अपनी प्रशंसा नहीं करते फिरते)।

इस मार्ग पर चलना (बड़ा कठिन खेल है, क्योंकि यह मार्ग) खंडे की धार से तीक्ष्ण है, तथा बाल से पतला (सूक्ष्म) है। (इस पर से गिरने की भी सम्भावना हर समय बनी रहती है क्योंकि सांसारिक वासना मन की अडोलता को डुला देती है।) पर जिन्होंने गुरु की कृपा से आपा-भाव त्याग दिया है, उनकी (माया की) इच्छा हरि-प्रभु की याद में समाप्त हो जाती है।

नानक कहता है—(आत्मिक आनन्द लेने वाले) भक्त जनों की जीवन युक्ति सदा से ही (दुनिया से) अलग चली आ रही है।१४।

भाव : आत्मिक आनन्द लेने वालों की जीवन-युक्ति दुनिया के लोगों से अलग होती है। वे विकारों से बचे रहते हैं। वे अपनी प्रशंसा नहीं चाहते, पर इस मार्ग पर चलना है बहुत ही कठिन। गुरु की ही कृपा हो तो आपा-भाव समाप्त किया जा सकता है।

जिउ तू चलाइहि तिव चलह सुआमी, होरु किआ जाणा गुण तेरे ॥
जिव तू चलाइहि तिवै चलह, जिना मारगि पावहे ॥
करि किरपा जिन नामि लाइहि, सि हरि हरि सदा धिआवहे ॥
जिस नो कथा सुणाइहि आपणी, सि गुर दुआरै सुखु पावहे ॥
कहै नानकु सचे साहिब, जिउ भावै तिवै चलावहे ॥१५॥

पद अर्थ : चलह—हम जीव चलते हैं। होरु—अन्य भेद। किआ जाणा—मैं नहीं जानता। मारगि—(आनन्द के) मार्ग पर। पावहे—पावहि, तू पाता है। लाइहि—तू लगाता है। सि—वे मनुष्य। धिआवहे—ध्यान करते हैं। सुखु—आत्मिक आनन्द। तिवै—वैसे ही, उसी तरह।

अर्थ : हे स्वामी-प्रभु! जैसे तू (हम जीवों को जीवन-सड़क पर) चलाता है, वैसे ही हम चलते हैं, (बस, मुझे इतनी ही समझ आयी है) तेरे गुणों का और भेद मैं नहीं जानता (मैं यही समझा हूँ कि जिस रास्ते पर तू हमें चलाता है, उसी राह पर हम चलते हैं)।

जिन (प्राणियों को) (आत्मिक आनन्द लेने के) मार्ग पर चलाता है, जिन को कृपा करके अपने नाम में जोड़ता है, वे प्राणी सदा हरि-नाम का सिमरन करते हैं। जिस जिस मनुष्य को तू अपने गुण-कीर्तन की बाणी सुनाता है, (सुनने की ओर प्रेरित करता है) वे प्राणी गुरु के दर पर (पहुँच कर) आत्मिक आनन्द लेते हैं।

नानक कहता है—सदा कायम रहने वाले प्रभु! जैसे तुझे अच्छा लगता है, वैसे ही तू (हम जीवों को) जीवन-राह पर चलाता है।१५।

भाव : आत्मिक आनन्द की दाति सिर्फ परमात्मा के अपने हाथ में है। जिस जिस मनुष्य को कृपा करके परमात्मा अपने नाम-सिमरन की ओर प्रेरित करता है, वह मनुष्य गुरु के दर पर पहुँच कर सिमरन की बरकत से आत्मिक आनन्द प्राप्त कर लेता है।

एहु सोहिला सबदु सुहावा ॥
सबदो सुहावा सदा सोहिला, सतिगुरू सुणाइआ ॥
एहु तिन कै मंनि वसिआ, जिन धुरहु लिखिआ आइआ ॥
इकि फिरहि घनेरे करहि गला, गली किनै न पाइआ ॥
कहै नानकु सबदु सोहिला, सतिगुरू सुणाइआ ॥१६॥

पद अर्थ : सोहिला—खुशी का गीत, आनन्द देने वाला गीत। सुहावा—सुन्दर। एहु—यह खुशी का गीत। मंनि—मन में (अक्षर 'म' का

अनुस्वर केवल एक मात्रा बढ़ाने के लिये ही है, असल, शब्द 'मन' ही है)। इकि—कई जीव। गली—सिर्फ बातें करने से।

अर्थ : (सतिगुरु का) यह सुन्दर शब्द (आत्मिक) आनन्द देने वाला गीत है, (विश्वास करो कि) सतिगुरु ने जो सुन्दर शब्द सुनाया है, वह सदा आत्मिक आनन्द देने वाला है, पर यह गुरु-शब्द उनके मन में बसता है, जिन के माथे पर ऊपर से लिखा हुआ लेख प्रकट होता है।

बहुत से, अनेक ऐसे लोग फिरते हैं (जिनके मन में गुरु-शब्द तो नहीं बसा, पर ज्ञान की) बातें करते हैं। सिर्फ बातें करने से आत्मिक आनन्द किसी को नहीं प्राप्त हुआ।

नानक कहता है—सतिगुरु का सुनाया हुआ शब्द ही आत्मिक आनन्द-दाता है।१६।

भाव : सतिगुरु की बाणी आत्मिक आनन्द प्राप्त करने का साधन है, पर गुरुबाणी उनके ही हृदय में बसती है, जिनके भाग्य में ऊपर से ही यह लेख लिखा होता है।

पवित होए से जना, जिनी हरि धिआइआ ।।
हरि धिआइआ पवितु होए, गुरमुखि जिन्ी धिआइआ ।।
पवितु माता पिता कुटंब सहित सिउ, पवितु संगति सबाईआ ।।
कहदे पवितु, सुणदे पवितु, से पवितु जिनी मंनि वसाइआ ।।
कहै नानकु से पवितु, जिनी गुरमुखि हरि हरि धिआइआ ।।१७।।

पद अर्थ : गुरमुखि—गुरु की शरण में आकर। सहित सिउ—सहित। कुटंब—परिवार। सबाईआ—सारी ही। मंनि—मन में।

अर्थ : (गुरु शब्द की कृपा से) जिन लोगों ने परमात्मा के नाम

का सिमरन किया (उनके अन्दर ऐसा आनन्द पैदा हुआ कि माया वाले रसों का उन्हें आकर्षण ही न रहा तथा) वे लोग पवित्र जीवन वाले बन गये। गुरु की शरण में आकर जिन जिन लोगों ने हरि के नाम का सिमरन किया, वे शुद्ध आचरण वाले हो गये। (उनकी संगत से) उनके माता पिता, परिवार के जीव पवित्र जीवन वाले बन गये। जिन्हों जिन्हों ने उनकी संगति की, वे सारे पवित्र हो गये। हरि-नाम (एक ऐसा आनन्द का स्रोत है कि इस को) जपने वाले भी पवित्र तथा सुनने वाले भी पवित्र हो जाते हैं, जो इसको मन में बसाते हैं, वे भी पवित्र हो जाते हैं।

नानक कहता है—जिन लोगों ने गुरु की शरण में आकर हरि-नाम का सिमरन किया है, वे शुद्ध आचरण वाले हो गये हैं।१७।

भाव : गुरु की शरण में आकर जो मनुष्य परमात्मा के नाम का सिमरन करते हैं, उनके अन्दर आत्मिक आनन्द पैदा होता है। इसकी कृपा से माया वाले ओछे रस उनको आकर्षित नहीं कर सकते। उनका जीवन ऊँचा हो जाता है। उनकी संगति से दूसरों का आचरण भी पवित्र हो जाता है।

करमी सहजु न ऊपजै, विणु सहजै सहसा न जाइ ।।
नह जाइ सहसा कितै संजमि, रहे करम कमाए ।।
सहसै जीउ मलीणु है, कितु संजमि धोता जाए ।।
मंनु धोवहु सबदि लागहु, हरि सिउ रहहु चितु लाइ ।।
कहै नानकु गुर परसादी सहजु उपजै, इहु सहसा इव जाइ ।।१८।।

पद अर्थ : करमी—(बाहर से धार्मिक लगते) कर्मों से, कर्मकाण्ड द्वारा। सहजु—अडोलता, आत्मिक आनन्द। सहसा—(माया के मोह से पैदा हुये) चिंता, सहम। कितै संजमि—किसी युक्ति से। रहे—थक गये।

मलीणु—मलिन, मैला। कितु—किस द्वारा ? कितु संजमि—किस तरीके से ? मंनु—मन। इव—इस तरह।

अर्थ : (माया के मोह में फंसे रहने से मन में सदा डर, सहम बना रहता है यह) चिंता, सहम आत्मिक आनन्द के बिना दूर नहीं होता, (तथा) आत्मिक आनन्द बाहरी धार्मिक दिखते कर्मकाण्डों द्वारा पैदा नहीं हो सकता। अनेक लोग (ऐसे) कर्म कर कर के हार गये हैं, पर मन की चिंता, सहम ऐसे किसी तरीके से दूर नहीं होते। (जब तक) मन सहम में (है तब तक) मैला रहता है, मन की यह मैल किसी (बाह्य) युक्ति से नहीं धोयी जा सकती।

(हे भाई!) गुरु के शब्द में जुड़ो, परमात्मा के चरणों में सदा मन जोड़े रखो, (यदि) मन (धोना है तो इस तरह) धो लो।

नानक कहता है—गुरु की कृपा से ही (मनुष्य के अन्दर) आत्मिक आनन्द पैदा होता है, तथा इस तरह मन का भटकाव, सहम दूर हो जाता है।१८।

भाव : माया के मोह में फंसे रहने से मन में चिंता, सहम बना रहता है। इस चिंता सहम का इलाज है आत्मिक आनन्द, तथा आत्मिक आनन्द प्राप्त होता है गुरु की कृपा से। इसलिये गुरु के शब्द में ध्यान (जोड़कर) लगा कर रखो, तथा परमात्मा की याद में सदा जुड़े रहो।

जीअहु मैले बाहरहु निरमल ॥

बाहरहु निरमल जीअहु त मैले, तिनी जनमु जूऐ हारिआ ॥

एह तिसना वडा रोगु लगा, मरणु मनहु विसारिआ ॥

वेदा महि नामु उतमु, सो सुणहि नाही, फिरहि जिउ बेतालिआ ॥

कहै नानकु जिन सचु तजिआ, कूड़े लागे, तिनी जनमु जूऐ हारिआ ॥१९॥

पद अर्थ : जीअहु—प्राणों से, मन से। तिनी—उन लोगों ने। मरणु—मौत। बेताले—बेताल, ताल से अलग हुये, भूत। जिन—जिन्होंने।

अर्थ : (केवल बाहर से धार्मिक दिखते कर्म करने वाले लोग) मन में (विकारों से) मैले रहते हैं, तथा सिर्फ देखने में ही पवित्र लगते हैं। और जो लोग बाहर से पवित्र दिखाई दें, पर मन से विकार-ग्रस्त हों, उन्होंने अपना जीवन ऐसे व्यर्थ गँवा लिया समझो, जैसे कोई जुआरी जुए में धन हार आता है। (उनको अन्दर ही अन्दर) माया की तृष्णा का भारी रोग खाये जाता है। (माया के लालच में) मौत को उन्होंने भुला दिया होता है। (लोगों की दृष्टि में धार्मिक दिखायी देने के लिये वे अपने बाहर से धार्मिक लगते कर्मों की महत्वता बताने के लिये वेदादि धर्म पुस्तकों के प्रमाण देते हैं पर) वेद आदि धर्म पुस्तकों में जो प्रभु के नाम के जाप का उत्तम उपदेश है, उस ओर वे ध्यान नहीं देते तथा भूतों की तरह संसार में विचरण करते हैं (जीवन-ताल से अलग रहते हैं)।

नानक कहता है—जिन्होंने परमात्मा के नाम का (सिमरन) छोड़ा हुआ है, तथा जो माया मोह में फंसे हुये हैं, उन्होंने अपना जीवन रुपी खेल जुए में हार लिया समझो।१९।

भाव : केवल बाहर से धार्मिक दिखायी देने वाले कर्म करने से मन में विकारों की मैल टिकी रहती है। मन को माया के मोह का रोग लगा रहता है। जहाँ रोग है वहाँ आनन्द कहाँ ? इसलिये सदा हरि-नाम का सिमरन करते रहो। यही है मन की निरोगता का साधन तथा आत्मिक आनन्द देने वाला।

जीअहु निरमल, बाहरहु निरमल ॥

बाहरहु त निरमल जीअहु निरमल, सतिगुर ते करणी कमाणी ॥

कूड़ की सोइ पहुचै नाही, मनसा सचि समाणी ॥

जनमु रतनु जिनी खटिआ, भले से वणजारे ।।
कहै नानकु जिन मंनु निरमलु, सदा रहहि गुर नाले ।।२०।।

पद अर्थ : सतिगुर ते—गुरु से मिली हुयी, जिस का उपदेश गुरु से मिला है। करणी—आचरण, करने योग्य कर्म। कमाणी—कमाई है। कूड़—माया का मोह। सोइ—ख़बर। मनसा—मन का विचार, मन में माया के मोह का विचार। सचि—प्रभु के सिमरन में। वणजारे—(जगत में भक्ति का) व्यापार करने के लिये आये लोग। मंनु—मन।

अर्थ : जो लोग (आचरण उन्नत करने की) वह कमायी करते हैं, जिस का उपदेश गुरु से मिलता है, वे मन से भी पवित्र होते हैं, तथा बाहर से भी पवित्र होते हैं, (भाव, उनका जगत के साथ व्यवहार भी अच्छा होता है) वे बाहर से भी पवित्र तथा अन्दर से भी पवित्र रहते हैं। उनके मन का माया-सम्बन्धी विचार सिमरन में ही समाप्त हो जाता है। (उनके अन्दर इतना आत्मिक आनन्द पैदा होता है कि) माया के मोह की खबर तक उनके मन तक नहीं पहुँचती। (जीव संसार में आत्मिक आनन्द का व्यापार करने आये हैं) वे जीव-व्यापारी अच्छे कहे जाते हैं, जिन्होंने (गुरु के बताये हुये मार्ग पर चलकर नाम-कमाई करके) श्रेष्ठ मानव-जन्म सफल कर लिया।

नानक कहता है—जिन लोगों का मन पवित्र हो जाता है (जिनके अन्दर आत्मिक आनन्द बन जाता है) वे (अन्तरात्मा में) सदा गुरु के चरणों में रहते हैं।२०।

भाव : मनुष्य जगत में आत्मिक आनन्द का व्यापार करने आता है। जो मनुष्य गुरु के बताये मार्ग पर चलता है, माया का मोह उसके समीप नहीं आता। उसका मन विकारों से बचा रहता है, बाहर दुनिया के साथ भी उसका व्यवहार अच्छा होता है। उसकी ज़िन्दगी कामयाब समझो।

जे को सिखु, गुरू सेती सनमुखु होवै ॥
होवै त सनमुखु सिखु कोई, जीअहु रहै गुर नाले ॥
गुर के चरन हिरदै धिआए, अंतर आतमै समाले ॥
आपु छडि सदा रहै परणै, गुर बिनु अवरु न जाणै कोए ॥
कहै नानकु सुणहु संतहु, सो सिखु सनमुखु होए ॥२१॥

पद अर्थ : सेती—साथ। सनमुखु—सामने मुख रख सकने में समर्थ। होवै—होना चाहे। जीअहु—दिल से। गुर नाले—गुरु के चरणों में। समाले—याद रखे। आपु—आपा-भाव। परणै—सहारे, आसरे।

अर्थ : यदि कोई सिक्ख गुरु के सामने सिर ऊपर करके खड़ा रहना चाहता है, जो सिक्ख यह चाहता है कि किसी गुप्त खोट के कारण उसको गुरु के सामने आँखें नीची न करनी पड़ें, (तब रास्ता एक ही है कि) वह सच्चे दिल से गुरु के चरणों में टिके। सिक्ख गुरु के चरणों को अपने हृदय में स्थान दे, अपनी आत्मा के अन्दर सम्भाल कर रखे, आपा-भाव त्याग कर सदा गुरु के आसरे रहे, गुरु के बिना किसी अन्य को (अपने आत्मिक जीवन का, आत्मिक आनन्द का साधन) न समझे।

नानक कहता है—हे संत जनों! सुनो, वह सिक्ख (ही) प्रसन्न रह सकता है (उसके ही अन्दर आत्मिक खुशी हो सकती है, वही आत्मिक आनन्द ले सकता है)।२१।

भाव : वह मनुष्य प्रसन्नचित्त रह सकता है, वही मनुष्य सदा आत्मिक आनन्द अनुभव कर सकता है, जो आपा-भाव (मैं की भावना) छोड़कर गुरु को ही अपना आसरा बनाये रखता है।

जे को गुर ते वेमुखु होवै, बिनु सतिगुर मुकति न पावै ।।
पावै मुकति न होरथै कोई, पुछहु बिबेकीआ जाए ।।
अनेक जूनी भरमि आवै, विणु सतिगुर मुकति न पाए ।।
फिरि मुकति पाए लागि चरणी, सतिगुरू सबदु सुणाए ।।
कहै नानकु वीचारि देखहु, विणु सतिगुर मुकति न पाए ।।२२।।

पद अर्थ : वेमुखु—जिस ने मुँह दूसरी तरफ़ किया हुआ है। मुकति—विकारों से मुक्ति, माया के प्रभाव से मुक्ति। होर थै—किसी अन्य स्थान से। बिबेकी—परख वाला इन्सान, विचारवान। जाए—जाकर। भरमि आवै—भटक कर आता है।

अर्थ : (जहाँ माया के मोह के कारण सहम है, वहाँ आत्मिक आनन्द नहीं पनप सकता, पर) यदि कोई मनुष्य गुरु की तरफ़ से मुँह मोड़ ले (उसको आत्मिक आनन्द नसीब नहीं हो सकता, क्योंकि) गुरु के बिना माया के प्रभाव से मुक्ति नहीं मिलती। बेशक किसी विद्वान से जाकर पूछ लो (और तसल्ली कर लो, यह पक्की बात है कि गुरु के बिना) किसी भी अन्य स्थान से माया के बन्धनों से मुक्ति नहीं मिलती। (माया के मोह में फंसा मनुष्य) अनेक योनियों में भटकता हुआ आता है। गुरु की शरण के बिना इस मोह से छुटकारा नहीं मिलता। अन्त में गुरु के चरणों का आसरा लेकर ही माया के मोह से छुटकारा मिलता है, क्योंकि गुरु (सही जीवन-मार्ग का) उपदेश सुनाता है।

नानक कहता है—विचार कर देख लो, गुरु के बिना माया के बन्धन से आज़ादी नहीं मिलती, (तथा इस मुक्ति के बिना आत्मिक आनन्द की प्राप्ति नहीं हो सकती)।२२।

भाव : माया का मोह तथा आत्मिक आनन्द—यह दोनों एक ही हृदय में एक साथ नहीं टिक सकते। तथा माया के मोह से मुक्ति तभी मिलती है, जब मनुष्य गुरु की शरण में आता है। गुरु मनुष्य को जीवन का सही रास्ता बताता है।

आवहु सिख सतिगुरू के पिआरिहो, गावहु सची बाणी ॥
बाणी त गावहु गुरू केरी, बाणीआ सिरि बाणी ॥
जिन कउ नदरि करमु होवै, हिरदै तिना समाणी ॥
पीवहु अंम्रितु, सदा रहहु हरि रंगि, जपिहु सारिगपाणी ॥
कहै नानकु सदा गावहु, एह सची बाणी ॥२३॥

पद अर्थ : सची बाणी—परमात्मा के गुण-कीर्तन वाली बाणी, सदा कायम रहने वाले प्रभु में जोड़ने वाली बाणी। सिरि—सिर पर, सबसे श्रेष्ठ। नदरि—कृपा की नज़र। करमु—कृपा। हरि रंगि—हरि के प्यार में। सारिगपाणी—धनुरधारी प्रभु। केरी—की। अंम्रितु—आत्मिक आनन्द देने वाला नाम-जल।

अर्थ : हे सतिगुरु के प्यारे सिक्खो! आओ, सदा कायम रहने वाले परमात्मा में जोड़ने वाली बाणी (मिलकर) गाओ। अपने गुरु की बाणी गाओ, यह बाणी अन्य सभी बाणियों से श्रेष्ठ है। यह बाणी उन लोगों के ही हृदय में टिकती है जिन पर परमात्मा की कृपा-दृष्टि हो, बखशिश हो।

(हे प्यारे गुरसिक्खो!) परमात्मा का नाम सिमरो। परमात्मा के प्यार में सदा जुड़े रहो, यह (आनन्द देने वाला, आत्मिक प्रसन्नता पैदा करने वाला) नाम-जल पीओ।

नानक् कहता है—(हे गुरसिक्खो!) परमात्मा के गुण-कीर्तन वाली यह बाणी गाओ (इसी में आत्मिक-आनन्द है) ।२३।

भाव : जिन मनुष्यों पर परमात्मा की कृपा की दृष्टि होती है, वे परमात्मा का गुण-कीर्तन करने वाली गुरबाणी अपने हृदय में बसाये रखते हैं। गुरबाणी द्वारा वे आत्मिक आनन्द देने वाला नाम-जल सदा पीते रहते हैं।

सतिगुरू बिना, होर कची है बाणी ।।
बाणी त कची सतिगुरू बाझहु, होर कची बाणी ।।
कहदे कचे, सुणदे कचे, कचीं आखि वखाणी ।।
हरि हरि नित करहि रसना, कहिआ कछू न जाणी ।।
चितु जिन का हिरि लइआ माइआ, बोलनि पए रवाणी ।।
कहै नानकु सतिगुरू बाझहु, होर कची बाणी ।।२४।।

पद अर्थ : सतिगुरू बिना—गुरु-आशय के विपरीत। कची—निम्नस्तर की, उच्च आत्मिक आनन्द से नीचे लाने वाली। कचे—वे लोग जिनका मन कमज़ोर है, जो माया के प्रभाव के सामने डगमगा सकते हैं। सुणदे कचे—सुनने वालों के मन भी डगमगा जाते हैं। कचीं—कच्चों ने, कमज़ोर मन वालों ने। कहिआ—जो कुछ मुँह से कहते हैं। हिरि लइआ—चुरा लिया। रवाणी—ज़ुबानी ज़ुबानी, ऊपर ऊपर से।

अर्थ : गुरु-आशय के विपरीत बाणी (माया की झलक के सामने) डगमगा देने वाली होती है। यह पक्की बात है कि गुरु-आशय के विपरीत जाने वाली बाणी से मन कमज़ोर हो जाते हैं, सुनने वालों के मन भी डगमगा जाते हैं, तथा जो ऐसी बाणी की पढ़ पढ़ कर व्याख्या करते हैं, वे भी कमज़ोर मन वाले हो जाते हैं।

यदि वे लोग ज़ुबान से हरि-नाम भी बोलें तब भी जो कुछ वे बोलते हैं, उससे उनका गहरा सम्बन्ध नहीं बनता, क्योंकि उनके मन को माया ने मोहित किया हुआ है, वे जो कुछ बोलते हैं, ऊपर ऊपर से ही बोलते हैं।

नानक कहता है—गुरु-आशय के विपरीत बाणी मनुष्य के मन को आत्मिक आनन्द के ठिकाने से नीचे गिरा देती है।२४।

भाव : गुरु-आशय के विपरीत जाने वाली बाणी, परमात्मा के गुण कीर्तन से रहित बाणी मन को कमज़ोर करती है, माया की झलक के सामने डगमगा देती है। ऐसी बाणी को नित्य पढ़ने सुनने वालों के मन माया के मुकाबले में कमज़ोर हो जाते हैं। ऐसे कमज़ोर हो चुके मन में आत्मिक आनन्द का स्वाद नहीं बन सकता। वह मन तो माया के मोह में फंसा होता है।

गुर का सबदु रतंनु है, हीरे जितु जड़ाउ ॥
सबदु रतनु जितु मंनु लागा, एहु होआ समाउ ॥
सबद सेती मनु मिलिआ, सचै लाइआ भाउ ॥
आपे हीरा रतनु आपे, जिस नो देइ बुझाइ ॥
कहै नानकु सबदु रतनु है, हीरा जितु जड़ाउ ॥२५॥

पद अर्थ : रतंनु—रत्न, अमोल दाति। जितु—जिस (शब्द) में। हीरे—परमात्मा के गुण। जड़ाउ—जड़े हुये। मंनु—मन। एहु समाउ—ऐसी लीनता। सचै—सदा कायम रहने वाले प्रभु में। भाउ—प्यार। बुझाइ देइ—सूझ देता है। हीरा—परमात्मा, परमात्मा का नाम। आपे—आप ही।

अर्थ : सतिगुरु का शब्द एक ऐसी अमूल्य (दाति है) देन है, जिसमें परमात्मा का बड़प्पन भरा पड़ा है। शब्द मानों (ऐसा) रत्न है कि उस

के द्वारा (मनुष्य का) मन (परमात्मा की याद में) टिक जाता है। (परमात्मा में) एक आश्चर्यजनक लीनता बनी रहती है।

यदि शब्द में (मनुष्य का) मन जुड़ जाये, तब (इसकी बरकत से) सदा कायम रहने वाले प्रभु में (उसका) प्रेम बन जाता है। (उसके अन्दर परमात्मा का) नाम-हीरा ही टिका रहता है। (परमात्मा के गुण-कीर्तन का) शब्द-रत्न ही टिका रहता है। (पर यह देन उसको ही मिलती है) जिस को (प्रभु आप यह) सूझ देता है।

नानक कहता है—गुरु का शब्द मानों, एक रत्न है जिसमें प्रभु का नाम-रूप हीरा जड़ा हुआ है।२५।

भाव : सतिगुरु की बाणी परमात्मा की ओर से एक अमूल्य देन है, इसमें परमात्मा का गुण-कीर्तन भरा पड़ा है। जो मनुष्य इस बाणी से अपना मन जोड़ता है, उसके अन्दर परमात्मा का प्रेम बन जाता है. तथा जहाँ प्रभु-प्रेम है, वहाँ ही आत्मिक आनन्द है।

सिव सकति आपि उपाइ कै, करता आपे हुकमु वरताए।।
हुकमु वरताए आपि वेखै, गुरमुखि किसै बुझाए।।
तोड़े बंधन होवै मुकतु, सबदु मंनि वसाए।।
गुरमुखि जिस नो आपि करे सु होवै, एकस सिउ लिव लाए।।
कहै नानकु आपि करता, आपे हुकमु बुझाए।।२६।।

पद अर्थ : सिव—चेतन सत्ता, जीवात्मा। सकति—माया। आपे—स्वयं ही। हुकम—(यह) हुक्म (आज्ञा) (कि जीवों पर) माया का प्रभाव पड़ा रहे। गुरमुखि—गुरु द्वारा। किसै—किसी (विरले) को। बुझाए—सूझ देता है। मुकतु—माया के प्रभाव से आज़ाद, स्वतन्त्र। मंनि—मन में। गुरमुखि—गुरु के मार्ग पर चलने वाला।

अर्थ : जीवात्मा तथा माया पैदा करके परमात्मा आप ही (यह) हुक्म देता है कि (माया का ज़ोर जीवों पर पड़ा रहे)। प्रभु आप ही यह खेल देखता है (कि किस तरह जीव माया के हाथ में नाच रहा है), किसी किसी (विरले) को ही गुरु के द्वारा (इस खेल की) समझ दे देता है, (जिस को सूझ देता है उसके) माया के मोह के बंधन तोड़ देता है, वह मनुष्य माया के बन्धनों से स्वतन्त्र हो जाता है, (क्योंकि) वह गुरु का शब्द अपने मन में बसा लेता है। गुरु के बताये हुये मार्ग पर चलने योग्य वह ही मनुष्य होता है, जिसको प्रभु यह सामर्थ्य देता है, वह मनुष्य एक परमात्मा के चरणों में ध्यान लगाता है, (उसके अन्दर आत्मिक आनन्द पैदा होता है, तथा वह माया के मोह में से निकल जाता है)।

नानक कहता है—परमात्मा स्वयं ही (जीवात्मा तथा माया की) रचना करता है, तथा आप ही (किसी एक को यह) अपने हुक्म की सूझ देता है, (कि माया का प्रभाव भी उसका अपना ही हुक्म है)।२६।

भाव—परमात्मा की रज़ा के अनुसार जीव माया के हाथों में नाच रहे हैं। जिस किसी को गुरु के बताये हुये मार्ग पर चलने योग्य बनाता है, वह मनुष्य माया के बन्धनों से स्वतन्त्र हो जाता है। उसका ध्यान परमात्मा के चरणों में लगा रहता है। उसके अन्दर आत्मिक आनन्द बना रहता है।

सिम्रिति सासत्र पुंन पाप बीचारदे, ततै सार न जाणी ।।
ततै सार न जाणी गुरू बाझहु, ततै सार न जाणी ।।
तिही गुणी संसारु भ्रमि सुता, सुतिआ रैणि विहाणी ।।
गुर किरपा ते से जन जागे, जिना हरि मनि वसिआ, बोलहि अंम्रितु बाणी ।।
कहै नानकु सो ततु पाए, जिस नो अनदिनु हरि लिव लागै, जागत रैणि विहाणी ।।२७।।

पद अर्थ : ततै सार—तत्व की सूझ, असलीयत की समझ, जो असल ग्रहण करने योग्य वस्तु है उसकी समझ, आत्मिक आनन्द की समझ। तिही गुणी—माया के तीन गुणों में। भ्रमि—भटक भटक कर। रैणि—रात, आयु। से—वे लोग। मनि—मन में। अनदिनु—हर रोज़, हर समय। अंम्रितु बाणी—आत्मिक जीवनदायक बाणी। जागत—विकारों की तरफ़ से सुचेत रहते हुये।

अर्थ : स्मृतियों शास्त्रों आदि को पढ़ने वाले पण्डित केवल ये विचार करते हैं कि (इन पुस्तकों के अनुसार) पाप क्या है तथा पुण्य क्या है? उनको आत्मिक आनन्द (रस) नहीं आ सकता। (यह बात विश्वसनीय जानों कि) सतिगुरु की शरण में आये बिना आत्मिक आनन्द का रस नहीं आ सकता। जगत तीन गुणों में ही भटक भटक कर ग़ाफ़िल हो गया है। माया के मोह में सोये हुये की ही सारी आयु बीत जाती है (स्मृतियों तथा शास्त्रों का विचार इस नींद से जगा नहीं सकता)।

(मोह की नींद में से) गुरु की कृपा द्वारा (केवल) वे मनुष्य जागते हैं, जिनके अन्दर परमात्मा का नाम बसता है। जो परमात्मा के गुण-कीर्तन की बाणी का उच्चारण करते हैं।

नानक कहता है—वह मनुष्य आत्मिक आनन्द का रस लेता है, जो हर समय प्रभु की याद की लग्न में टिका रहता है, तथा जिस की आयु, (इस तरह मोह की नींद से) जागते बीतती है।२७।

भाव : कर्मकाण्ड के अनुसार कौन-सा पाप-कर्म है, तथा कौन-सा पुण्य-कर्म है—केवल यह विचार मनुष्य के अन्दर आत्मिक आनन्द पैदा नहीं कर सकता। गुरु की कृपा से जो मनुष्य सदा हरि-नाम का सिमरन करता है, गुण-कीर्तन की बाणी का उच्चारण करता है, वह विकारों की तरफ़ से सुचेत रहता है, तथा आत्मिक आनन्द प्राप्त करता है।

माता के उदर महि प्रतिपाल करे, सो किउ मनहु विसारीऐ ॥
मनहु किउ विसारीऐ एवडु दाता, जि अगनि महि आहारु पहुचावए ॥
ओस नो किहु पोहि न सकी, जिस नउ आपणी लिव लावए ॥
आपणी लिव आपे लाए, गुरमुखि सदा समालीऐ ॥
कहै नानकु एवडु दाता, सो किउ मनहु विसारीऐ ॥२८॥

पद अर्थ : उदर—पेट। मनहु—मन से। किउ विसारीऐ—भूलना नहीं चाहिंये। एवडु—इतना बड़ा। अगनि—आग। आहारु—खुराक, भोजन। ओस नो—उस मनुष्य को। किहु—कुछ। लिव—प्रीत। गुरमुखि—गुरु के द्वारा। समालीऐ—सिमरना चाहिये, हृदय में बसाना चाहिये।

अर्थ : यदि (आत्मिक आनन्द प्राप्त करना है तो) उस परमात्मा को कभी भुलाना नहीं चाहिये, जो माँ के पेट में भी पालन करता है, इतने बड़े दाता को मन से भुलाना नहीं चाहिये, जो (माँ के पेट की) आग में भी खुराक पहुँचाता है।

(यह मोह ही है जो आनन्द से वंचित रखता है, पर) उस इन्सान को (मोह आदि) कुछ भी बाधा नहीं पहुँचा सकता, जिस को प्रभु अपने चरणों की प्रीत प्रदान करता है। (हे भाई!) गुरु की शरण में आकर, उसका सदा सिमरन करते रहना चाहिये।

नानक कहता है—(यदि आत्मिक आनन्द की आवश्यकता है तो) इतने बड़े दाता प्रभु को कभी भी मन से भुलाना नहीं चाहिये।२८।

भाव : परमात्मा जिस मनुष्य को अपने चरणों का प्रेम देता है, उस मनुष्य पर कोई भी विकार अपना ज़ोर नहीं डाल सकता। गुरु की शरण में आकर गुरु द्वारा बताये मार्ग पर चलकर सदा परमात्मा की याद हृदय में टिका के रखनी चाहिये। आत्मिक आनन्द की प्राप्ति का यही साधन है।

जैसी अगनि उदर महि, तैसी बाहरि माइआ ।।
माइआ अगनि सभ इको जेही, करतै खेलु रचाइआ ।।
जा तिसु भाणा ता जंमिआ, परवारि भला भाइआ ।।
लिव छुड़की लगी त्रिसना, माइआ अमरु वरताइआ ।।
एह माइआ जितु हरि विसरै, मोहु उपजै भाउ दूजा लाइआ ।।
कहै नानकु गुर परसादी जिना लिव लागी, तिनी विचे माइआ पाइआ ।।२९।।

पद अर्थ : उदर—माँ का पेट। बाहरि—संसार में। करतै—करतार ने। जा तिसु भाणा—जब उस प्रभु को अच्छा लगा। परवारि—परिवार में। भला भाइआ—प्यारा लगने लग पड़ा। छुड़की—समाप्त हो गयी, टूट गयी। अमरु—हुकम। अमरु वरताइआ—हुक्म चला दिया, ज़ोर डाल लिया। जितु—जिस के द्वारा। भाउ दूजा—प्रभु के बिना किसी अन्य का प्यार।

अर्थ : जैसे माँ के पेट में आग है, वैसे बाहर जगत में माया (दुःखदायी) है। माया तथा आग एक जैसी ही हैं, परमात्मा ने ऐसा ही खेल बना दिया है।

जब परमात्मा की रज़ा होती है, जीव पैदा होता है, परिवार में प्यारा लगता है (परिवार के जीव उस नये पैदा हुये बालक को प्रेम करते हैं, इस प्यार में फंसकर उस की प्रभु चरणों से) प्रीत की तार टूट जाती है। माया की तृष्णा सताने लगती है, माया (उस पर) अपना दबाव डाल देती है।

माया है ही ऐसी कि इस में ग्रस्त होने पर परमात्मा भूल जाता है, (दुनिया का) मोह पैदा हो जाता है, (परमात्मा के बिना) अन्य प्रेम पैदा हो जाता है (फिर ऐसी हालत में आत्मिक आनन्द कहाँ से मिले ?)।

नानक कहता है—गुरु की कृपा से जिन लोगों की प्रीत की डोर प्रभु चरणों से जुड़ी रहती है, उनको माया में व्यवहार करते हुये भी (आत्मिक आनन्द) मिल जाता है।२९।

भाव : गुरु की कृपा से जिन मनुष्यों का ध्यान दुनिया के कार्य-व्यापार करते हुये भी प्रभु चरणों में जुड़ा रहता है, उनके अन्दर आत्मिक आनन्द बना रहता है। जगत की दशा तो यह है कि जीव को पैदा होते ही माँ बाप आदि के प्यार द्वारा माया प्रभु-चरणों से अलग कर देती है।

हरि आपि अमुलकु है, मुलि न पाइआ जाइ ॥
मुलि न पाइआ जाइ किसै विटहु, रहे लोक विललाइ ॥
ऐसा सतिगुरु जे मिलै, तिसनो सिरु सउपीऐ, विचहु आपु जाइ ॥
जिस दा जीउ तिसु मिलि रहै, हरि वसै मनि आइ ॥
हरि आपि अमुलकु है, भाग तिना के नानका, जिन हरि पलै पाइ ॥३०॥

पद अर्थ : अमुलकु—जो किसी कीमत पर मिल न सके। मुलि—कीमत देकर। किसै विटहु—किसी भी इन्सान से। विललाइ—परेशान होकर। रहे—रह गये, थक गये, हार गये। आपु—आपा-भाव। जिस दा—जिस परमात्मा का पैदा किया हुआ। जीउ—जीव। मनि—मन में। पलै पाइ—(गुरु के) साथ जोड़ देता है।

अर्थ : (जब तक परमात्मा का मिलाप न हो, तब तक आनन्द का रस नहीं लिया जा सकता) पर प्रभु का मूल्य नहीं आंका जा सकता, परमात्मा (धन आदि) किसी कीमत पर नहीं मिल सकता। जीव परेशान हो हो कर हार गये किसी को (धन आदि) कीमत देकर परमात्मा नहीं मिला। (हाँ), यदि ऐसा गुरु मिल जाये (जिस के मिलने से मनुष्य के) अन्दर

से आपा-भाव निकल जाये, (तथा जिस गुरु के मिलने से) जीव उस हरि के चरणों में जुड़ा रहे, वह हरि उसके मन में बस जाये, जिसने उसे पैदा किया है, तब उस गुरु के आगे अपना सिर भेंट कर देना चाहिये (अपना आप अर्पण कर देना चाहिये)।

हे नानक! परमात्मा का मूल्य नहीं आंका जा सकता (किसी कीमत से नहीं मिलता पर) परमात्मा जिनको (गुरु के) साथ जोड़ देता है, उनके भाग्य जाग जाते हैं (वे आत्मिक आनन्द का रस अनुभव करते हैं)।३०।

भाव : किसी सांसारिक पदार्थ के बदलें परमात्मा का मिलाप नहीं हो सकता। तथा जिस हृदय में प्रभु का प्यार नहीं, वहाँ आत्मिक आनन्द कहाँ ? (हाँ) जिस मनुष्य को परमात्मा गुरु तक पहुँचा देता है उसके भाग्य जागृत हो जाते हैं।

हरि रासि मेरी मनु वणजारा ।।

हरि रासि मेरी मनु वणजारा, सतिगुर ते रासि जाणी ।।

हरि हरि नित जपिहु जीअहु, लाहा खटिहु दिहाड़ी ।।

एहु धनु तिना मिलिआ, जिन हरि आपे भाणा ।।

कहै नानकु हरि रासि मेरी, मनु होआ वणजारा ।।३१।।

पद अर्थ : रासि—वणज-व्यापार करने के लिये धन की पूँजी। वणजारा—व्यापार करने वाला, व्यापारी। सतिगुर ते जाणी—गुरु से पहचान प्राप्त की। जीअहु—दिल से, पूरे प्रेम से। दिहाड़ी—प्रत्येक दिन, हर रोज़। भाणा—अच्छा लगा।

अर्थ : अपने गुरु से मुझे समझ आयी है कि (आत्मिक आनन्द की कमाई करने के लिये) परमात्मा का नाम ही मेरी असल पूँजी (हो सकती

है), मेरा मन (इस व्यापार का) व्यापारी बन गया है। परमात्मा का नाम मेरी असल-पूँजी है, तथा मेरा मन व्यापारी बन गया है।

(हे भाई!) तुम भी प्रेम के साथ सदा हरि का नाम जपा करो, तथा हर रोज़ (आत्मिक आनन्द का) लाभ प्राप्त करो। (हरि-नाम का, आत्मिक आनन्द का) यह धन उनको ही मिलता है, जिन को देना प्रभु को आप ही अच्छा लगता है।

नानक कहता है—परमात्मा का नाम मेरी पूँजी बन गया है, (अब गुरु की कृपा से) मैं आत्मिक आनन्द की कमाई करता हूँ।३१।

भाव**:** गुरु द्वारा यह समझ आती है कि आत्मिक आनन्द की कमाई करने के लिये परमात्मा का नाम ही मनुष्य की पूँजी बननी चाहिये। यह धन (सरमाया) उनको ही मिलता है, जिन पर प्रभु आप कृपा करे।

ए रसना तू अन रसि राचि रही, तेरी पिआस न जाइ ॥
पिआस न जाइ होरतु कितै, जिचरु हरि रसु पलै न पाइ ॥
हरि रसु पाइ पलै, पीऐ हरि रसु, बहुड़ि न त्रिसना लागै आइ ॥
एहु हरि रसु करमी पाईऐ, सतिगुरु मिलै जिसु आइ ॥
कहै नानकु, होरि अन रस सभि वीसरे, जा हरि वसै मनि आइ ॥३२॥

पद अर्थ **:** ए रसना—हे (मेरी) जिह्वा! अन रसि—अन्य रस में। राचि रही—मस्त हो रही है। पिआस—स्वादों का चस्का। होरतु कितै—किसी अन्य स्थान से। पलै न पाइ—नहीं मिलता। पीऐ—पीता है। बहुड़ि—फिर। करमी—प्रभु की कृपा से। होरि अन रस—अन्य दूसरे स्वाद। सभि—सारे। मनि—मन में।

अर्थ **:** हे (मेरी) जिह्वा! तू अन्य दूसरे स्वादों में मस्त हो रही है (इस तरह) तेरी स्वादों की लालसा (चस्का) दूर नहीं हो सकती।

जब तक परमात्मा के सिमरन का आनन्द प्राप्त न हो, (तब तक) किसी अन्य स्थान से स्वादों की लालसा मिट नहीं सकती।

जिस मनुष्य को परमात्मा के नाम का आनन्द मिल जाये, जो मनुष्य हरि-सिमरन का आनन्द अनुभव करने लगे, उसको माया की तृष्णा नहीं लगती, पर यह हरि-नाम का आनन्द प्रभु की कृपा से मिलता है, (उस को मिलता है) जिस को गुरु मिल जाये।

नानक कहता है—जब हरि-सिमरन का आनन्द मन में बस जाये, तब अन्य सारे स्वाद भूल जाते हैं।३२।

भाव : कई तरह के व्यंजन खाने से भी मनुष्य की जिह्वा का चस्का समाप्त नहीं होता। बड़ा परेशान होता है, मनुष्य इस लालसा में। पर जब मनुष्य को हरि-नाम सिमरन का आनन्द आने लग जाता है, जीव की स्वाद-लिप्सा समाप्त हो जाती है। परमात्मा की कृपा से जिस को गुरु मिल जाये, उस को हरि-नाम का आनन्द प्राप्त होता है।

ए सरीरा मेरिआ, हरि तुम महि जोति रखी, ता तू जग महि आइआ ॥
हरि जोति रखी तुधु विचि, ता तू जग महि आइआ ॥
हरि आपे माता आपे पिता, जिनि जीउ उपाइ जगतु दिखाइआ ॥
गुर परसादी बुझिआ, ता चलतु होआ, चलतु नदरी आइआ ॥
कहै नानकु स्रिसटि का मूलु रचिआ जोति राखी, ता तूं जग महि आइआ ॥३३॥

पद अर्थ : जीउ—जीव। उपाइ—पैदा करके। जगतु दिखाइआ—जीव को जगत में भेजता है। चलतु—खेल, तमाशा। मूलु रचिआ—मूल बना। जिनि—जिस (परमात्मा) ने।

अर्थ : हे मेरे शरीर! (तू दुनिया के पदार्थों में आनन्द ढूँढता है, पर

आनन्द का स्रोत तो परमात्मा है जो तेरे अन्दर बसता है) तू जगत में आया ही तब है, जब हरि ने अपनी ज्योति तेरे अन्दर रख दी (यह विश्वास रख कि) जब परमात्मा ने तेरे अन्दर अपनी ज्योति रखी, तभी तू जगत में पैदा हुआ।

जो परमात्मा जीव को पैदा करके उसको जगत में भेजता है, वह आप ही उसकी माँ है, स्वयं ही इसका पिता है, (प्रभु आप ही माँ-बाप जैसे जीव को हर तरह का सुख देता है, सुख आनन्द का दाता है ही प्रभु आप, पर जीव जगत में मायक पदार्थों में आनन्द ढूँढता है)। जब गुरु की कृपा से जीव को ज्ञान होता है, तब इसको समझ आती है कि यह जगत तो एक खेल ही है। फिर जीव को यह जगत एक तमाशा ही दिखायी देने लगता है (सदा रहने वाला आत्मिक आनन्द इस में नहीं हो सकता)।

नानक कहता है—हे मेरे शरीर! जब प्रभु ने जगत रचना के मूल की रचना की, तेरे अन्दर अपनी ज्योति रखी तब तूने जगत में जन्म लिया।३३।

भाव : सुख-आनन्द का दाता है ही प्रभु आप, पर मनुष्य जगत में मायक पदार्थों में आनन्द ढूँढता रहता है। गुरु की कृपा से यह समझ आती है कि यह जगत तो मदारी का तमाशा ही है। इसमें से सदा रहने वाला आत्मिक आनन्द नहीं मिल सकता।

मनि चाउ भइआ, प्रभ आगमु सुणिआ ॥
हरि मंगलु गाउ सखी, ग्रिहु मंदरु बणिआ ॥
हरि गाउ मंगलु नित सखीए, सोगु दूखु न विआपए ॥
गुर चरन लागे दिन सभागे, आपणा पिरु जापए ॥
अनहत बाणी गुर सबदि जाणी, हरि नामु हरि रसु भोगो ॥
कहै नानकु प्रभु आपि मिलिआ, करण कारण जोगो ॥३४॥

पद अर्थ : चाउ—आनंद। प्रभ आगमु—प्रभु का आना। सखी—हे सखि! हे प्राण! मंगलु—खुशी का गीत, प्रभु की सिफति-सालाह का गीत। ग्रिहु—हृदय-घर। मंदरु—प्रभु का निवास स्थान। न विआपए—नहीं प्रभावित करता, अपना दबाव नहीं डालता। सभागे—भाग्यशाली। जापए—दिखायी दे गया है। अनहत—एक-रस। अनहत बाणी—एक-रस सिफति-सालाह की बाणी। सबदि—शब्द द्वारा। जोगो—समर्थ।

अर्थ : अपनी हृदय सेज पर प्रभु-पति का आना मैंने सुन लिया है, (मैंने अनुभव कर लिया है कि प्रभु मेरे हृदय में आ बसा है, अब) मेरे मन में आनन्द बन गया है। हे मेरी जान! मेरा यह हृदय-घर प्रभु-पति का निवास स्थान बन गया है, अब तू प्रभु की सिफति-सालाह का गीत गा। हे मेरी सखि! सदा प्रभु के गुण-कीर्तन का गीत गाती रह। (इस तरह) कोई फिक्र, कोई दु:ख (अपना) ज़ोर नहीं डाल सकता।

वे दिन भाग्यशाली होते हैं, जब (माथा) गुरु के चरनों पर टिके। प्यारा प्रभु-पति (हृदय में) दिखायी दे जाता है। गुरु के शब्द द्वारा एक-रस गुण-कीर्तन के प्रवाह के साथ सम्बन्ध बन जाता है, प्रभु का नाम प्राप्त हो जाता है, प्रभु मिलाप का आनन्द लिया जाता है।

नानक कहता है—(हे सखि! खुशी का गीत गा) सब कुछ करने में समर्थ प्रभु आप आकर मुझे मिल गया है।३४।

भाव : मनुष्य के अन्दर आत्मिक आनन्द तब ही पैदा होता है, जब उसके हृदय में परमात्मा का प्रकाश होता है। तब मनुष्य का हृदय विकारों से पवित्र हो जाता है। कोई चिंता कोई दु:ख उस पर अपना ज़ोर नहीं डाल सकता, पर यह प्रकाश गुरु द्वारा ही होता है।

**ए सरीरा मेरिआ इसु जग महि आइ कै, किआ तुधु करम कमाइआ ॥
कि करम कमाइआ तुधु सरीरा, जा तू जग महि आइआ ॥
जिनि हरि तेरा रचनु रचिआ, सो हरि मनि न वसाइआ ॥
गुर परसादी हरि मंनि वसिआ, पूरबि लिखिआ पाइआ ॥
कहै नानक, एहु सरीरु परवाणु होआ, जिनि सतिगुर सिउ चितु लाइआ ॥३५॥**

पद अर्थ : किआ करम—कौन-से कर्म ? अन्य अन्य कर्म ही। जिनि हरि—जिस हरि ने। तेरा रचनु रचिआ—तुझे पैदा किया। मनि—मन में। मंनि—मन में। जिनि—जिस मनुष्य ने। परवाणु—कबूल, सफल।

अर्थ : हे मेरे शरीर! इस जगत में जन्म से लेकर तू अन्य अन्य काम ही करता रहा। जब से तू संसार में आया है, तू (प्रभु-सिमरन के बिना) अन्य अन्य कार्य ही करता रहा। जिस हरि ने तुझे पैदा किया है, उसको तूने अपने मन में नहीं बसाया (उसकी याद में कभी नहीं जुड़ा)।

(पर हे शरीर! तेरे वश में भी क्या ?) जिस मनुष्य के पूर्व कर्मों के संस्कार फल देते हैं, गुरु की कृपा से उसके मन में परमात्मा बसता है (वही हरि-सिमरन में जुड़ता है)।

नानक कहता है—जिस मनुष्य ने गुरु चरणों में मन जोड़ लिया (उसका) यह शरीर सफल हो जाता है (वह मनुष्य वह मनोरथ पूरा कर लेता है, जिसके लिये वह पैदा हुआ है)।३५।

भाव : पूर्व किये कर्मों के संस्कारों से प्रेरित हुआ मनुष्य बार बार वैसे कर्म ही करता रहता है। परमात्मा के नाम-सिमरन वाली तरफ़ अपने आप नहीं लग सकता। फिर आत्मिक आनन्द कहाँ से मिले ? अच्छे भाग्य से जब मनुष्य गुरु की शरण में आता है तब उसकी ज़िन्दगी कामयाब होती है।

ए नेत्रहु मेरिहो हरि तुम महि जोति धरी, हरि बिनु अवरु न देखहु कोई ॥
हरि बिनु अवरु न देखहु कोई, नदरी हरि निहालिआ ॥
एहु विसु संसारु तुम देखदे, एहु हरि का रूपु है, हरि रूपु नदरी आइआ ॥
गुर परसादी बुझिआ, जा वेखा हरि इकु है, हरि बिनु अवरु न कोई ॥
कहै नानकु एहि नेत्र अंध से, सतिगुरि मिलिऐ दिब द्रिसटि होई ॥३६॥

पद अर्थ : नेत्र—आँखें। जोति—रौशनी। निहालिया—निहारो, (निहालो) देखो। नदरी—नज़र से, आँखों से। विसु—विश्व, सारा संसार। नदरी आइआ—नज़र आता है। अंध—अन्धे। से—थे। दिब—(दिव्य) चमकदार, रौशन। द्रिसटि—दृष्टि, नज़र।

अर्थ : हे मेरे नेत्रो! परमात्मा ने तुम्हारे अन्दर (अपनी) ज्योति टिकाई है। (तभी तो तुम देखने योग्य हो) जिधर देखो परमात्मा का ही दीदार करो। परमात्मा के बिना अन्य क़ोई गैर न दिखे, निगाह से हरि को ही देखो।

(हे नेत्रो!) यह सारा संसार जो तुम देख रहे हो, यह प्रभु का ही रूप है, प्रभु का ही रूप दिखायी दे रहा है।

गुरु की कृपा से मुझे समझ आयी है, अब मैं जब (चारों तरफ़) देखता हूँ, प्रत्येक स्थान पर एक परमात्मा ही दिखायी देता है, उसके बिना अन्य कुछ नहीं।

नानक कहता है—(गुरु को मिलने से पहले) ये आँखें असल में अन्धी थीं, जब गुरु मिला, इनमें रौशनी आयी (इनको हर स्थान पर परमात्मा दिखायी देने लगा, यही दीदार आनन्द का मूल है) ।३६।

भाव : जब तक मनुष्य जगत में किसी को वैर भाव से देखता है, किसी को मित्रता के भाव से, तब तक उसके अन्दर मेर-तेर की भावना

है। जहाँ यह भावना है वहाँ आत्मिक आनन्द नहीं हो सकता। गुरु को मिलकर मनुष्य की आँखें खुलती हैं, फिर इसको हर स्थान पर परमात्मा ही परमात्मा दिखायी देता है। यही दीदार आनन्द का मूल है।

ए स्रवणहु मेरिहो, साचै सुनणै नो पठाए ॥
साचै सुनणै नो पठाए, सरीरि लाए, सुणहु सति बाणी ॥
जितु सुणी मनु तनु हरिआ होआ, रसना रसि समाणी ॥
सचु अलखु विडाणी, ता की गति कही न जाए ॥
कहै नानकु अंम्रित नामु सुणहु, पवित्र होवहु, साचै सुनणै नो पठाए ॥३७॥

पद अर्थ : स्रवण—कान। पठाए—भेजे। साचै—सदा कायम रहने वाले प्रभु ने। सरीरि—शरीर में। सति बाणी—सदा कायम रहने वाले प्रभु की प्रशंसा वाली बाणी। जितु—जिस द्वारा। जितु सुनी—जिस के सुनने से। रसि—आनन्द में। हरिआ—आनन्द युक्त, खिला। रसना—जीभ। विडाणी—आश्चर्ययुक्त। गति—हालत। अंम्रित—आत्मिक आनन्द देने वाला।

अर्थ : हे मेरे कानों! परमात्मा के गुण-कीर्तन की बाणी सुना करो। सदा कायम रहने वाले परमात्मा ने तुम्हें यही सुनने के लिये बनाया है, इस शरीर में स्थापित किया है। इस गुण-कीर्तन की बाणी के सुनने से तन मन आनन्द-भरपूर हो जाता है, जिह्वा आनन्द में मस्त हो जाती है। सदा कायम रहने वाला परमात्मा तो विस्मयरूप है, उसका कोई चक्र-चिन्ह बताया नहीं जा सकता, यह नहीं कहा जा सकता कि वह कैसा है (उसके गुण कहने सुनने से केवल यही लाभ होता है कि मनुष्य को आत्मिक आनन्द अनुभव होता है, तभी तो) नानक कहता है—आत्मिक आनन्द देने वाला नाम सुना करो, तुम पवित्र हो जाओगे। परमात्मा ने तुम्हें यही सुनने के लिये भेजा (बनाया) है।३७।

भाव : जिस मनुष्य के कानों को अभी निन्दा चुगली सुनने का चस्का है, उसके हृदय में आत्मिक आनन्द पैदा नहीं हुआ। आत्मिक आनन्द की प्राप्ति उसी मनुष्य को है जिस के कान, जिस की जिह्वा, जिस की सारी ज्ञान-इन्द्रियाँ परमात्मा के गुण-कीर्तन में मग्न रहती हैं। वही ज्ञान-इन्द्रियाँ पवित्र हैं।

हरि जीउ गुफा अंदरि रखि कै, वाजा पवणु वजाइआ ॥
वजाइआ वाजा पउण, नउ दुआरे परगटु कीए, दसवा गुपतु रखाइआ ॥
गुर दुआरै लाइ भावनी, इकना दसवा दुआरु दिखाइआ ॥
तह अनेक रूप नाउ नव निधि, तिस दा अंतु न जाई पाइआ ॥
कहै नानकु हरि पिआरै, जीउ गुफा अंदरि रखि कै, वाजा पवणु वजाइआ ॥३८॥

पद अर्थ : जीउ—प्राण, जान। गुफा—शरीर। पवणु वाजा वजाइआ—श्वास रूपी बाजा बजाया, बोलने की शक्ति दी। नउ दुआरे—नौ गोलक : १ मुँह, २ कान, २ आँखें, २ नासिकायें, गुदा, लिंग। दसवा दुआरु—(भाव,) दिमाग़ (जिस द्वारा मनुष्य विचार कर सकता है)। भावनी—श्रद्धा, प्रेम। तह—उस अवस्था में। अनेक रूप नाउ—अनेक रूपों वाले प्रभु का नाम। निधि—ख़ज़ाना।

अर्थ : परमात्मा ने प्राण को शरीर-गुफा में टिका कर जिह्वा को बोलने की शक्ति दी। शरीर को बोलने की शक्ति दी, नाक कान आदि नौ कर्म इन्द्रियाँ प्रत्यक्ष रूप से बनायीं। दसवें द्वार (दिमाग़) को गुप्त रखा।

प्रभु ने जिन को गुरु के दर पर पहुँचा कर, अपने नाम में श्रद्धा पैदा की, उनको दसवां दर भी दिखा दिया (उनको सिमरन की विचार शक्ति भी दे दी, जो आत्मिक आनन्द का मूल है)। उस अवस्था में मनुष्य को अनेक रंगों रूपों में व्यापक प्रभु का वह नाम-रूप नौ ख़ज़ानों का भण्डार

भी प्राप्त हो जाता है, जिस का अन्त नहीं है (जो कभी समाप्त नहीं होता)।

नानक कहता है—प्यारे प्रभु ने प्राण को शरीर-गुफा में टिकाकर जीव को बोलने की शक्ति भी दी है।३८।

भाव : माया के प्रभाव के कारण ज्ञान-इन्द्रियाँ मनुष्य को मायक पदार्थों की ओर ही दौड़ाती रहती हैं। यह रास्ता अच्छा है या बुरा, यह विचार करने वाली (सोच) शक्ति दबी ही रहती है। जिस मनुष्य को परमात्मा गुरु के दर पर पहुँचाता है, उसकी विचार शक्ति जाग जाती है। वह मनुष्य प्रभु के नाम में जुड़ता है तथा आत्मिक आनन्द का अनुभव करता है।

एहु साचा सोहिला, साचै घरि गावहु ॥
गावहु त सोहिला घरि साचै, जिथै सदा सचु धिआवहे ॥
सचो धिआवहि जा तुधु भावहि, गुरमुखि जिना बुझावहे ॥
इहु सचु सभना का खसमु है, जिसु बखसे सो जनु पावहे ॥
कहै नानकु सचु सोहिला, सचै घरि गावहे ॥३९॥

पद अर्थ : सोहिला—खुशी का गीत, आत्मिक आनन्द पैदा करने वाला गीत, प्रभु के गुण-कीर्तन की बाणी। साचै घरि—सदा कायम रहने वाले घर में, साध-संगति में। सचु—सदा कायम रहने वाला प्रभु! गावहे—गावहि, (सत्संगी) गाते हैं। भावहि—जो तुझे अच्छे लगें। बुझावहे—तू समझ दे। गुरमुखि—गुरु द्वारा। पावहे—प्राप्त करते हैं, पावहि।

अर्थ : (हे भाई!) परमात्मा के गुण-कीर्तन की यह बाणी साध-संगति में (बैठकर) गाया करो। उस सत्संग में आत्मिक आनन्द देने वाली बाणी गाया करो, जहाँ (गुरमुख जन) सदा कायम रहने वाले प्रभु को सदा गाते हैं।

हे प्रभु! तुझे सदा कायम रहने वाले को तब ही जीव याद करते हैं जब तुझे अच्छे लगें, जिन पर तू गुरु द्वारा यह सूझ (समझ) देने की कृपा करे।

(हे भाई!) सदा कायम रहने वाला प्रभु सब जीवों का स्वामी है। जिस जिस पर वह कृपा करता है, वे जीव तुझे प्राप्त कर लेते हैं। नानक कहता है, वे सत्संग में (बैठकर) प्रभु के गुण-कीर्तन वाली बाणी गाते हैं।३९।

भाव : जिन मनुष्यों पर परमात्मा की कृपा होती है, वे गुरु द्वारा बताये हुये मार्ग पर चलकर साध-संगति में टिक कर परमात्मा की सिफति-सालाह की बाणी गाते हैं, तथा आत्मिक आनन्द का अनुभव करते हैं।

अनदु सुणहु वडभागीहो, सगल मनोरथ पूरे ।।
पारब्रहमु प्रभु पाइआ, उतरे सगल विसूरे ।।
दूख रोग संताप उतरे, सुणी सची बाणी ।।
संत साजन भए सरसे, पूरे गुर ते जाणी ।।
सुणते पुनीत कहते पवितु, सतिगुरु रहिआ भरपूरे ।।
बिनवंति नानकु गुर चरण लागे, वाजे अनहद तूरे ।।४०।।१।।

पद अर्थ : विसूरे—चिंता-फिक्र। संताप—कलेश। सची बाणी—सदा कायम रहने वाले प्रभु के गुण-कीर्तन की बाणी। सरसे—स-रस, हरे, आनन्द-भरपूर। गुर ते—गुरु से। सतिगुरु रहिआ भरपूरे—गुरु (अपनी बाणी में) भरपूर है, बाणी गुरु रूप है। अनहद—एक-रस। तूरे—बाजे। मनोरथ—मन की इच्छायें।

अर्थ : हे बड़े भाग्य वालो! सुनो, आनन्द यह है कि (उस अवस्था में) मन की सारी भाग दौड़ समाप्त हो जाती है, (सारे संकल्प परे हो

जाते हैं) परमात्मा प्रभु मिल जाता है, सारे चिंता-फिक्र मन से उतर जाते हैं। अकाल पुरख के गुण-कीर्तन की बाणी सुनकर सारे दुःख, रोग, कलेश मिट जाते हैं। जो संत गुरमुख पूरे गुरु द्वारा गुण-कीर्तन की बाणी से सम्बन्ध बनाना सीख लेते हैं, उनके हृदय प्रफुल्लित हो जाते हैं। इस बाणी को सुनने वाले, उच्चारण करने वाले सब पवित्र-आत्मा हो जाते हैं, इस बाणी में उनको सतिगुरु ही दिखायी देता है।

नानक विनती करता है—जो इन्सान गुरु के चरणों का आश्रय लेते हैं, उनके अन्दर एक-रस (खुशी के) बाजे बजने लगते हैं (उनके अन्दर आत्मिक आनन्द पैदा हो जाता है) ।४०।

भाव : आत्मिक आनन्द के लक्ष्ण : जिस मनुष्य के अन्दर आत्मिक आनन्द पैदा होता है, उसकी भटकना दूर हो जाती है, उसकी सारी चिन्तायें, फिक्र मिट जाते हैं। कोई दुःख, रोग, कलेश उस पर ज़ोर नहीं डाल सकता।

आनन्द की यह अवस्था सतिगुरु की बाणी से प्राप्त होती है। इस बाणी को गाने वालों के तथा सुनने वालों के जीवन ऊँचे हो जाते हैं। इस बाणी में उनको सतिगुरु ही प्रत्यक्ष दिखायी देता है।

रहिरास

सलोकु म : १ ॥

दुखु दारू सुखु रोगु भइआ, जा सुखु तामि न होई ॥
तूं करता करणा मै नाही, जा हउ करी न होई ॥१॥
बलिहारी कुदरति वसिआ ॥ तेरा अंतु न जाई लखिआ ॥१॥रहाउ॥
जाति महि जोति, जोति महि जाता, अकल कला भरपूरि रहिआ ॥
तूं सचा साहिबु सिफति सुआलि्उ, जिनि कीती सो पारि पइआ ॥
कहु नानक करते कीआ बाता, जो किछु करणा सु करि रहिआ ॥२॥

पद अर्थ : तामि—तब। करणा—कर्त्ता। मै नाही—मैं कुछ भी नहीं। जा हउ करी—यदि मैं अपने आप को कुछ समझ बैठूँ। न होई—जचता नहीं, यह बात जचती नहीं। जाति—सृष्टि। जोति—परमात्मा का नूर। जोति महि—सारे जीवों में, सब ज्योतियों में। जाता—देखा जाता है, दिखायी दे रहा है। अकल—सम्पूर्ण। कला—टुकड़ा, भाग। अकल कला—जिसके अलग अलग टुकड़े न हों, एक-रस सम्पूर्ण प्रभु। सुआलि्उ—सुन्दर। जिनि कीती—जिस ने (तेरी प्रशंसा) की। नानक—हे नानक! कहु करते कीआ बाता—परमात्मा की बातें कह।

अर्थ : (हे प्रभु! तेरी अजीब कुदरत है कि) विपत्ति (जीवों के रोगों

का) इलाज (बन जाती) है, तथा सुख (उनके लिये) दुःख (का कारण) हो जाता है, पर यदि (वास्तविक आत्मिक) सुख (जीव को) मिल जाये तब दुःख नहीं रहता। हे प्रभु! तू करने वाला कर्त्ता है (तू आप ही इन भेदों को समझता है) मेरी सामर्थ्य नहीं है (कि मैं समझ सकूँ)। यदि मैं अपने आप को कुछ समझ लूँ (भाव, यदि मैं यह सोचने लग जाउँ कि मैं तेरे भेद को समझ सकता हूँ) तो यह बात जचती नहीं।१।

हे कुदरत में बस रहे कर्त्ता! मैं तुझ पर कुर्बान हूँ, तेरा अंत नहीं पाया जा सकता।१।रहाउ।

सारी सृष्टि में तेरा ही नूर बस रहा है, सारे जीवों में तेरा ही प्रकाश है। तू सब स्थानों पर एक-रस व्यापक है। हे प्रभु! तू सदा कायम रहने वाला है। तेरा सुन्दर बड़प्पन है। जिस ने तेरे गुण गाये हैं, वह इस संसार समुद्र से पार हो गया है। हे नानक! (तू भी) परमात्मा का गुण-कीर्तन कर, (तथा कह कि) प्रभु जो कुछ करना ठीक समझता है, वही कर रहा है (भाव, उसके कार्यों में किसी का हस्ताक्षेप नहीं है)।२।

सो दरु रागु आसा महला १

१ओं सतिगुरप्रसादि ॥

सो दरु तेरा केहा सो घरु केहा, जितु बहि सरब समाले ॥
वाजे तेरे नाद अनेक असंखा, केते तेरे वावणहारे ॥
केते तेरे राग परी सिउ कहीअहि, केते तेरे गावणहारे ॥

पद अर्थ : केहा—कैसा ? आश्चर्ययुक्त। दरु—दरवाज़ा। जितु—जहाँ। बहि—बैठकर। सरब—सारे जीवों को। समाले—तूने सम्भाल की है, तू सम्भाल कर रहा है। नाद—आवाज़ें, शब्द, राग। वावणहारे—बजाने वाले।

परी—राग परी, रागिनियां। सिउ—समेत, साथ। परी सिउ—रागिनियों के साथ। कहीअहि—कहे जाते हैं।

अर्थ : (हे प्रभु!) तेरा वह घर तथा (उस घर का) वह दरवाज़ा बड़ा ही आश्चर्ययुक्त होगा। जहाँ बैठकर तू सारे जीवों की सम्भाल कर रहा है। (तेरी इस रची हुयी कुदरत में) अनेक तथा अनगिणत बाजे तथा राग हैं। अनन्त जीव उन बाजों को बजाने वाले हैं। रागिनियों सहित अनन्त ही रागों के नाम लिये जाते हैं। अनेकों ही जीव (इन राग रागिनियों के द्वारा तुम्हें) गाने वाले हैं (तेरी प्रशंसा के गीत गा रहे हैं।)

गावनि तुध नो पवणु पाणी बैसंतरु, गावै राजा धरमु दुआरे ॥
गावनि तुध नो चितु गुपतु लिखि जाणनि, लिखि लिखि धरमु बीचारे ॥

पद अर्थ : गावनि—गाते हैं। तुध नो—तुम्हें। बैसंतरु—आग। गावै—गाता है ('गावै' एक-वचन है, 'गावनि' बहु-वचन)। राजा धरमु—धर्मराज। दुआरे—(हे प्रभु! तेरे) दर पर। चितु गुपतु—पुरातन हिन्दु विचार के अनुसार ये दोनों व्यक्ति 'चित्र' तथा 'गुप्त' सारे जीवों के किये हुये अच्छे बुरे कर्मों का लेखा लिखते हैं। लिखि जाणनि—(know to write) लिखना जानते हैं। लिखि लिखि—हर समय लिख लिख कर (जो कुछ वे चित्र गुप्त हर समय लिखते रहते हैं)।

अर्थ : (हे प्रभु!) हवा, पानी, आग (आदि तत्त्व) तेरे गुण गा रहे हैं (तेरी रज़ा में चल रहे हैं)। धर्मराज (तेरे) दर पर (खड़े होकर तेरे गुण-कीर्तन के गीत) गा रहा है। वे चित्र गुप्त भी जो (जीवों के अच्छे बुरे कर्मों के लेखे) लिखने जानते हैं, तथा जिनके लिखे हुये पर धर्मराज विचार करता है, (तेरे गुण-कीर्तन के गीत गा रहे हैं)।

गावनि तुध नो ईसरु ब्रहमा देवी, सोहनि तेरे सदा सवारे ।।
गावनि तुध नो इंद्र इंद्रासणि बैठे, देवतिआ दरि नाले ।।

पद अर्थ : ईसरु—शिव। देवी—देवियाँ। सोहनि—अच्छे लगते हैं, शोभा पाते हैं। सवारे—सुन्दर बनाये हुये। इंद्रासणि—इंद्र-आसणि, इन्द्र के आसन पर (बैठे हुये)। दरि—तेरे दरवाज़े पर। देवतिआ नाले—देवताओं सहित।

अर्थ : (हे प्रभु!) अनेक देवियाँ, शिव तथा ब्रह्मा (आदि देवता) जो तेरे सँवारे हुये सदा (तेरे दर पर) शोभायमान हैं, तुझे गा रहे हैं (तेरे गुण गा रहे हैं)। कई इन्द्र देवता अपने तख़्त पर बैठे हुये देवताओं सहित तेरे दर पर तुम्हें गा रहे हैं (तेरे गुण-कीर्तन के गीत गा रहे हैं)।

गावनि तुध नो सिध समाधी अंदरि, गावनि तुध नो साध बीचारे ।।
गावनि तुध नो जती सती संतोखी, गावनि तुध नो वीर करारे ।।

पद अर्थ : समाधी अंदरि—समाधि में जुड़ कर। सिध—योग साधना में निपुण योगी, वे व्यक्ति जो मनुष्यों की श्रेणी से ऊपर तथा देवताओं से नीचे माने जाते हैं। ये सिद्ध पवित्रता के पुंज तथा आठों सिद्धियों के स्वामी समझे जाते हैं। बीचारे—विचार कर। जती—काम वासना को रोक कर रखने वाले। सती—दानी। वीर—शूरवीर। करारे—बलशाली।

अर्थ : (हे प्रभु!) सिद्ध लोग समाधियाँ लगाकर तुझे गा रहे हैं। साधु जन (तेरे गुणों का) विचार कर के तेरी प्रशंसा कर रहे हैं। जती, दानी तथा सन्तुष्ट जन भी तेरे ही गुण गा रहे हैं। अनन्त बलशाली शूरवीर भी तेरी ही प्रशंसा कर रहे हैं।

गावनि तुध नो पंडित पड़नि रखीसुर, जुगु जुगु वेदा नाले ।।
गावनि तुध नो मोहणीआ मनु मोहनि, सुरगु मछु पइआले ।।

पद अर्थ : पड़नि—पढ़ते हैं। रखीसुर—(रिखी-ईसुर) बड़े बड़े ऋषि, महर्षि। जुगु जुगु—प्रत्येक युग में। वेदा नाले—वेदों सहित। मोहणीआ—सुन्दर स्त्रियाँ। मन मोहनि—जो मन को मोह लेती हैं। मछु—मातृ लोक। पइआले—पाताल लोक।

अर्थ : (हे प्रभु!) पण्डित तथा महर्षि जो (वेदों को) पढ़ते हैं। वेदों सहित तेरा ही यश कर रहे हैं। सुन्दर स्त्रियाँ जो (अपनी सुन्दरता से मनुष्य के) मन को मोह लेती हैं तुझे ही गा रही हैं (भाव, तेरी सुन्दरता का प्रकाश कर रही हैं)। स्वर्ग लोक, मातृ लोक तथा पाताल लोक (भाव, स्वर्ग, मातृ तथा पाताल के सारे जीव जन्तु) तेरी ही प्रशंसा कर रहे हैं।

गावनि तुध नो रतन उपाए तेरे, अठसठि तीरथ नाले ।।
गावनि तुध नो जोध महाबल सूरा, गावनि तुध नो खाणी चारे ।।
गावनि तुध नो खंड मंडल ब्रहमंडा, करि करि रखे तेरे धारे ।।

पद अर्थ : उपाए तेरे—तेरे किये हुये। अठसठि—अढ़सठ। तीरथ नाले—तीर्थों सहित। जोध—यौद्धा। महाबल—महाबलशाली। सूरा—यौद्धा। खाणी चारे—चारों खानें (अण्डज, जेरज, सेतज, उत्भुज)। खाणी—खान, जिसको खोदकर बीच में से धातु या रत्न आदि पदार्थ निकाले जायें। (खन्—खोदना) पुरातन विचार चला आ रहा है कि जगत के सारे जीव चार खानों से पैदा हुये हैं—अण्डा, जेर, पसीना, पानी की सहायता से धरती में से अपने आप पैदा हो जाना (यहाँ भाव है चारों ही खानों के जीव, सारी रचना)। खंड—टुकड़ा, ब्रह्मण्ड का टुकड़ा, प्रत्येक धरती।

मंडल—चक्र, ब्रह्मण्ड का एक चक्र जिसमें एक सूर्य एक चन्द्रमा तथा धरती आदि गिने जाते हैं। ब्रहमंडा—सारी सृष्टि। करि करि—बना कर। धारे—टिकाये हुये।

अर्थ : (हे प्रभु!) तेरे पैदा किये हुये रत्न अड़सठ तीर्थों सहित तुझे ही गा रहे हैं। महाबली यौद्धा तथा शूरवीर (तेरा दिया बल दिखाकर) तेरी ही (ताकत की) प्रशंसा कर रहे हैं। चारों ही खानों के जीव-जन्तु तुझे गा रहे हैं। सारी सृष्टि, सृष्टि के सारे खण्ड तथा मण्डल, जो तुमने पैदा करके, टिकाये हुये हैं, तुझे ही गाते हैं।

सेई तुध नो गावनि जो तुधु भावनि, रते तेरे भगत रसाले ॥
होरि केते तुध नो गावनि, से मै चिति न आवनि, नानकु किआ बीचारे ॥

पद अर्थ : सेई—वही लोग। तुधु भावनि—तुझे अच्छे लगते हैं। रते—रंगे हुये, प्रेम में मस्त। रसाले—(रस-आलय) रस के घर, रसिक। होरि केते—अनेक अन्य जीव (शब्द 'होरि' शब्द 'होर' से बहु-वचन है)। मै चिति—मेरे मन में। मै चिति न आवनि—मेरे चित में नहीं आते, मुझ से गिने नहीं जा सकते, मेरी विचार से परे हैं। किआ बीचारे—क्या विचार कर सकता है ?

अर्थ : (हे प्रभु!) वास्तव में वही लोग तेरा गुण-कार्तन करते हैं (भाव, उनका ही किया हुआ गुण-कीर्तन सफल है), जो तेरे प्रेम में रंगे हुये हैं, तथा तेरे रसिक भक्त हैं, वही लोग तुझे प्यारे लगते हैं। अनेक अन्य लोग तेरी प्रशंसा कर रहे हैं जो मुझ से गिने नहीं जा सकते (भला, इस गिनती के बारे) नानक क्या विचार कर सकता है ? (नानक यह विचार करने योग्य नहीं है)।

सोई सोई सदा सचु, साहिबु साचा, साची नाई ।।
है भी, होसी, जाइ न जासी, रचना जिनि रचाई ।।

पद अर्थ : सचु—सदा कायम रहने वाला। नाई—बड़ाई (अरबी शब्द सना। इस अरबी शब्द के पंजाबी में दो पाठ हैं—असनाई, नाई। 'जो किछु होआ सभु किछु तुझ ते, तेरी सभ असनाई')। इसी तरह संस्कृत के शब्दों से :

स्थान	असथान	थान
स्नान	असनान	न्ान
स्तंभ	असथंभ	थंभ
स्नेह	असनेह	नेह
स्थिर	असथिर	थिर
स्थल	असथल	थल

(*नोट :* देखें गुरबाणी व्याकरण)

नोट : शब्द 'साचा' पुलिंग है तथा शब्द 'साहिबु' का विशेषण है। शब्द 'साची' स्त्री-लिंग है तथा शब्द 'नाई' का विशेषण है। इस पंक्ति के पाठ में विराम का ध्यान रखना।

होसी—होगा, कायम रहेगा। जाइ न—पैदा नहीं होता। न जासी—न ही मरेगा। जिनि—जिस (प्रभु) ने। रचाई—पैदा की है।

अर्थ : जिस (प्रभु) ने यह सृष्टि पैदा की है, वह इस समय भी मौजूद है, तथा सदा कायम रहने वाला है। वह मालिक प्रभु सदा कायम रहने वाला है। उसकी बड़ाई सदा कायम रहने वाली है।

रंगी रंगी भाती करि करि जिनसी, माइआ जिनि उपाई ।।
करि करि देखै कीता आपणा, जिउ तिस दी वडिआई ।।

पद अर्थ : रंगी रंगी—रंगों रंगों की, कई रंगों की। भाती—कई तरह की। जिनसी—कई प्रकार की। जिनि—जिस (प्रभु) ने। उपाई—पैदा की है। करि करि—पैदा करके। देखै—संभाल करता है। कीता आपणा—अपना बनाया जागत। जिउ—जैसे। वडिआई—रज़ा।

अर्थ : जिस प्रभु ने कई रंगों, किस्मों तथा अनेक प्रकार की माया रच दी है, वह जैसे उसकी रज़ा है, जगत को पैदा करके अपने पैदा किये हुये की सम्भाल कर रहा है।

जो तिसु भावै सोई करसी, फिरि हुकमु न करणा जाई ।।
सो पातिसाहु साहा पति साहिबु, नानक रहणु रजाई ।।१।।

पद अर्थ : तिसु भावै—उसको अच्छा लगता है। करसी—करेगा। न करणा जाई—नहीं किया जा सकता। साहा पति साहिबु—शाहों का पातशाह, स्वामी। रहणु—रहना। रजाई—रज़ा में।

अर्थ : जो कुछ उस (प्रभु) को अच्छा लगता है, वही वह करता है। कोई जीव उसके आगे हेंकड़ी नहीं दिखा सकता (कोई जीव उसको यह नहीं कह सकता कि ऐसे नहीं, ऐसे करो)। वह प्रभु (सारे जगत का) बादशाह है, बादशाहों का भी बादशाह है। हे नानक! (जीवों को) उसकी रज़ा में (आज्ञा में) रहना ही जचता है।

नोट : पउण पाणी बैसंतर आदि अचेतन पदार्थ भी प्रभु का गुण-कीर्तन कर रहे हैं। भाव, उसके पैदा किये सारे तत्व भी उसकी रज़ा (आज्ञा) में चल रहे हैं। रज़ा में चलना उसका गुण-कीर्तन करना ही है।

आसा महला १॥

सुणि वडा आखै सभु कोइ॥ केवडु वडा डीठा होइ॥
कीमति पाइ न कहिआ जाइ॥ कहणै वाले तेरे रहे समाइ॥१॥
वडे मेरे साहिबा गहिर गंभीरा गुणी गहीरा॥
कोइ न जाणै तेरा केता केवडु चीरा॥१॥रहाउ॥
सभि सुरती मिलि सुरति कमाई॥ सभ कीमति मिलि कीमति पाई॥
गिआनी धिआनी गुर गुरहाई॥
कहणु न जाई तेरी तिलु वडिआई॥२॥
सभि सत सभि तप सभि चंगिआईआ॥
सिधा पुरखा कीआ वडिआईआ॥
तुधु विणु सिधी किनै न पाईआ॥
करमि मिलै नाही ठाकि रहाईआ॥३॥
आखण वाला किआ वेचारा॥ सिफती भरे तेरे भंडारा॥
जिसु तू देहि तिसै किआ चारा॥ नानक सचु सवारणहारा॥४॥२॥

पद अर्थ : सुणि—सुनकर। सभु कोइ—प्रत्येक जीव। केवडु—कितना। डीठा—देखकर ही। होइ—(ब्यान) हो सकता है, बताया जा सकता है। कीमति—कीमत, मूल्य, बराबर की चीज़। कीमति पाइ न—मूल्य नहीं आंका जा सकता, उसके बराबर की कोई हस्ती नहीं बतायी जा सकती। रहे समाइ—लीन हो जाते हैं।१।

गहिर—हे गहरे! गंभीरा—हे बड़े जिगर वाले! गुणी गहीरा—हे गुणों

के कारण गहरे! हे अनन्त गुणों के स्वामी! चीरा—पाट, चौड़ाई, विस्तार।१।रहाउ।

सभि मिलि—सब ने मिलकर, सब ने एक दूसरे की सहायता लेकर। सुरती—सुरति, ध्यान। सुरती सुरति कमाई—बार बार समाधि लगाई। सभ.....पाई—सभ मिलि कीमति पाई, कीमति पाई। गिआनी—ज्ञानी, ऊँची समझ वाले। धिआनी—ध्यान लगाने वाले। गुर—बड़े। गुरहाई—गुर भाई, बड़ों के भाई, ऐसे अन्य कई बड़े। गुर गुरहाई—कई बड़े बड़े प्रसिद्ध (यह शब्द 'गुर गुरहाई' शब्द 'गिआनी धिआनी' के विशेषण हैं।) तिलु—थोड़ा-सा भी।२।

सभि सत—सारे पुण्य कर्म। तप—कष्ट, कठिनाईयाँ। चंगिआईआ—अच्छे गुण। सिध—जीवन में सफल हुये मनुष्य, सधे हुये। सिधी—सफलता, कामयाबी। करमि—(तेरी) कृपा से। ठाकि—रोककर।३।

सिफती—गुणों से, प्रशंसा से। चारा—ज़ोर, यत्न।४।

अर्थ : प्रत्येक जीव (अन्य लोगों से केवल) सुनकर (ही) कह देता है कि (हे प्रभु!) तू बड़ा है। पर तू कितना बड़ा है (कितना अनन्त है) यह बात तेरे दर्शन करके ही बतायी जा सकती है। (तेरा दर्शन करके ही बताया जा सकता है कि तू अनन्त है) तेरे बराबर का अन्य कोई बताया नहीं जा सकता। तेरे स्वरूप का ब्यान नहीं किया जा सकता। तेरी प्रशंसा करने वाले बेसुध होकर तुझ में (ही) लीन हो जाते हैं।१।

हे मेरे बड़े स्वामी! तू (मानों एक) गहरा (समुद्र) है। तू विशाल हृदय वाला है, तू अनन्त गुणों वाला है। कोई भी जीव नहीं जानता कि तेरा कितना विस्तार है।१।रहाउ।

(तू कितना बड़ा है—यह जानने के लिये) समाधियाँ लगाने वाले कई बड़े बड़े प्रसिद्ध योगियों ने ध्यान लगाने का यत्न किया है, बार बार

यत्न किया, बड़े बड़े प्रसिद्ध (शास्त्रवेत्ता) विद्वानों ने आपस में एक दूसरे की सहायता लेकर तेरे बराबर की कोई हस्ती खोजने की कोशिश की, पर तेरे बड़प्पन का थोड़ा-सा भाग भी नहीं बता सके।२।

ज्ञानी क्या ? तथा सिद्ध योगी क्या ? तेरे बड़प्पन का अंदाज़ा कोई भी नहीं लगा सका, पर विद्वानों के सारे पुण्य कर्म, सारे तप तथा सारे अच्छे गुण, सिद्धों के (ऋद्धियाँ सिद्धियाँ आदि) बड़े बड़े कार्य—यह कामयाबी किसी को भी तेरी सहायता के बिना प्राप्त नहीं हुयी। (जिस किसी को सिद्धि प्राप्त हुयी है) तेरी कृपा से प्राप्त हुयी है, तथा कोई अन्य उस उपलब्धि के रास्ते में रुकावट नहीं डाल सका।३।

(हे प्रभु!) तेरे गुणों के (मानों) ख़ज़ाने भरे पड़े हैं। जीव की क्या सामर्थ्य है कि इन गुणों का ब्यान कर सके ? जिस पर तू गुण-कीर्तन करने में प्रवृत्त होने की कृपा करता है (भाव, जिस को गुण-कीर्तन में लगाने की कृपा करता है) उसकी राह में रुकावट डालने में कोई समर्थ नहीं हो सकता (क्योंकि) हे नानक! (कह—हे प्रभु!) तू सदा कायम रहने वाला प्रभु उस (भाग्यशाली) को सँवारने वाला (आप) है।४।२।

आसा महला १ ॥

आखा जीवा विसरै मरि जाउ ॥ आखणि अउखा साचा नाउ ॥
साचे नाम की लागै भूख ॥ उतु भूखै खाइ चलीअहि दूख ॥१॥
सो किउ विसरै मेरी माइ ॥ साचा साहिबु साचै नाइ ॥१॥रहाउ॥
साचे नाम की तिलु वडिआई ॥ आखि थके कीमति नही पाई ॥
जे सभि मिलि कै आखणि पाहि ॥ वडा न होवै घाटि न जाइ ॥२॥

ना ओहु मरै न होवै सोगु ।। देदा रहै न चूकै भोगु ।।
गुणु एहो होरु नाही कोइ ।। ना को होआ ना को होइ ।।३।।
जेवडु आपि तेवड तेरी दाति ।। जिनि दिन करि कै कीती राति ।।
खसमु विसारहि ते कमजाति ।। नानक नावै बाझु सनाति ।।४।।३।।

पद अर्थ : आखा—कहूँ, (जब) मैं (हरि-नाम) का उच्चारण करता हूँ। जीवा—मैं जीवित हो जाता हूँ, मेरे अन्दर आत्मिक-जीवन पैदा हो जाता है। मरि जाउ—मैं मर जाता हूँ (विकारों के कारण) मेरा आत्मिक जीवन समाप्त हो जाता है। साचा—सदा कायम रहने वाला। उतु—(शब्द 'उस' से करण कारक। 'जिसु' से 'जितु')। उतु भूखै—उस भूख के कारण। खाइ—(नाम-भोजन) खा कर। चलीअहि—दूर हो जाते हैं।१।

माइ—हे माँ! नाइ—नाम द्वारा। साचै नाइ—सदा कायम रहने वाले हरि-नाम के द्वारा, जैसे जैसे सदा कायम रहने वाले हरि-नाम का सिमरन किया जाये। किउ विसरै—कभी न भूले।१।रहाउ।

तिलु—थोड़ा-सा भी। आखि—कहकर, ब्यान कर के। सभि—सारे जीव। आखणि पाहि—कहने का यत्न करें ('आखणि पाइ' एक-वचन है, 'जे को खाइकु आखणि पाइ')।२।

सोगु—अफसोस, शोक। देदा—देता। न चूकै—नहीं समाप्त होता। भोगु—व्यवहार। गुणु एहो—यही खूबी। को—कोई (अन्य)। होआ—हुआ है। न होइ—न ही होगा।३।

जेवडु—जितना बड़ा। तेवड—उतनी बड़ी। जिनि—जिस ने। करि कै—पैदा करके। विसारहि—भुला देते हैं। ते—वे (लोग) (बहु-वचन)। कमजाति—बुरी जाति वाले। नावै बाझु—हरि-नाम के बिना। सनाति—नीच।४।३।

अर्थ : (जैसे जैसे) मैं (परमात्मा के) नाम का सिमरन करता हूँ, वैसे वैसे मेरे अन्दर आत्मिक जीवन पैदा होता है। (पर जब मुझे प्रभु का नाम) भूल जाता है, मेरी आत्मिक मौत हो जाती है, (यह पता होते हुये भी) सदा कायम रहने वाले परमात्मा के नाम का सिमरन करना कठिन (काम लगता) है। (जिस मनुष्य के अन्दर) सदा कायम रहने वाले प्रभु के नाम-सिमरन की इच्छा पैदा हो जाती है, उस इच्छा की बरकत से (हरि-नाम भोजन) खाकर उसके सारे दुःख दूर हो जाते हैं।१।

हे मेरी माँ! (प्रार्थना कर कि) वह परमात्मा मुझे कभी भी न भूले। जैसे जैसे उस सदा कायम रहने वाले प्रभु का नाम स्मरण किया जाता है, वैसे वैसे वह सदा कायम रहने वाला स्वामी मन में आ बसता है।१।रहाउ।

सदा कायम रहने वाले प्रभु के नाम की थोड़ी-सी ही महिमा का ब्यान कर के (सारे जीव) थक गये हैं (ब्यान नहीं कर सकते)। कोई भी नहीं बता सका कि परमात्मा के बराबर की कौन-सी हस्ती है। यदि (जगत के) सारे ही जीव मिलकर (प्रभु की बड़ाई को) ब्यान करने का यत्न करें, तो वह प्रभु (अपनी वास्तविकता से) बड़ा नहीं हो जाता (तथा यदि कोई भी उसकी प्रशंसा न करे) तो वह (पहले से) घट नहीं जाता। (उस को अपनी शोभा का लालच नहीं)।२।

वह प्रभु कभी मरता नहीं, न ही (उसकी ख़ातिर) शोक होता है। वह सदा (जीवों को रिज़क) देता है, उसकी दी गयी वस्तुओं का प्रयोग कभी समाप्त नहीं होता (उसकी दी वस्तुएं प्रयोग करने से समाप्त नहीं होतीं)। उसकी बड़ी खूबी यह है कि कोई अन्य उस जैसा नहीं है, (उस जैसा अभी तक) न कोई हुआ है, न कभी होगा।३।

(हे प्रभु!) जितना अनन्त तू स्वयं है, उतनी अनन्त तेरी कृपा है। (तू ऐसा है) जिस ने दिन बनाया है, तथा रात बनायी है।

हे नानक! वे लोग नीच-जाति वाले बन जाते हैं, जो (ऐसे) स्वामी प्रभु को भुला देते हैं। नाम से रहित जीव (ही) नीच हैं।४।३।

रागु गूजरी महला ४ ॥

हरि के जन सतिगुर सतपुरखा, बिनउ करउ गुर पासि ॥
हम कीरे किरम सतिगुर सरणाई, करि दइआ नामु परगासि ॥१॥
मेरे मीत गुरदेव, मो कउ राम नामु परगासि ॥
गुरमति नामु मेरा प्रान सखाई, हरि कीरति हमरी रहरासि ॥१॥रहाउ॥
हरि जन के वडभाग वडेरे, जिन हरि हरि सरधा हरि पिआस ॥
हरि हरि नामु मिलै त्रिपतासहि, मिलि संगति गुण परगासि ॥२॥
जिन हरि हरि हरि रसु नामु न पाइआ, ते भाग हीण जम पासि ॥
जो सतिगुर सरणि संगति नही आए, ध्रिगु जीवे ध्रिगु जीवासि ॥३॥
जिन हरिजन सतिगुर संगति पाई, तिन धुरि मसतकि लिखिआ लिखासि ॥
धनु धंनु सतसंगति जितु हरि रसु पाइआ, मिलि जन नानक नामु परगासि ॥४॥४॥

नोट : इस शब्द के सम्बन्ध में कई विद्वानों ने यह लिखा है कि गुरु रामदास जी ने अपने विवाह के समय इस शब्द का गुरु अमरदास जी के सम्मुख उच्चारण किया था। पर यह तथ्य परख की कसौटी पर टिक नहीं सकता। सन १५५२ में गुरु अमरदास जी गुरु-गद्दी पर बैठे। सन १५५३ में उन्होंने अपनी लड़की बीबी भानी जी का विवाह जेठा जी (गुरु रामदास जी) के साथ किया, तब उनकी आयु १९ साल थी। गुरु अमरदास जी सन १५७४ में ज्योती ज्योति समाये तथा गुरु रामदास जी गुरु बने, अपने विवाह के २१ साल बाद। जब तक वह गुरु नहीं बन

सके तब तक शब्द 'नानक' प्रयोग करके कोई बाणी उच्चारण करने का अधिकार नहीं रखते थे। इसलिये यह शब्द गुरु रामदास जी के विवाह के समय का नहीं हो सकता। सन १५७४ के बाद का ही हो सकता है, जब वे गुरु बन चुके थे।

पद अर्थ : हरि के जन—हे हरि के सेवक! सतिगुर—हे सतिगुर! सतपुरखा—हे महापुरुष गुरु! बिनउ—(विनय) बिनती। करउ—मैं करता हूँ। गुर पासि—हे गुरु! तेरे पास। सतिगुर सरणाई—हे गुरु! तेरी शरण। कीरे किरम—दीन जीव। परगासि—प्रकट कर, प्रकाश कर।१।

मो कउ—मुझे, मेरे अन्दर। मीत—हे मित्र। गुरमति—गुरु की बुद्धि द्वारा (मिला हुआ)। प्रान सखाई—प्राणों का साथी। कीरति—शोभा, कीर्ति। रहरासि—राह की राशि, ज़िन्दगी के सफर के लिये खर्च।१।रहाउ।

त्रिपतासहि—तृप्त हो जाते हैं। मिलि—मिलकर।२।

ध्रिगु जीवे—धिक्कार है उनके जीवित रहने को।३।

धुरि—परमात्मा की तरफ़ से। मसतकि—माथे पर। लिखासि—लेख (शब्द 'जीवासि' तथा 'लिखासि' शब्द 'जीव' तथा 'लेख' के परिवर्तित रूप हैं, तुकांत पूरा करने के लिये)। जितु—जिस में, जिस द्वारा। मिलि जन—जनों को मिलकर, प्रभु के सेवकों को मिलकर।४।४।

अर्थ : हे महापुरुष गुरु! हे प्रभु के भक्त सतिगुरु! हे गुरु! मैं तेरे सम्मुख प्रार्थना करता हूँ—कृप्या (मेरे अन्दर) प्रभु के नाम का प्रकाश पैदा करो। हे सतिगुरु! मैं दीन तेरी शरण में आया हूँ।१।

हे मेरे मित्र गुरु! मुझे प्रभु के नाम का प्रकाश दे। गुरु की बताई मति द्वारा मिला हुआ हरि-नाम मेरे प्राणों का साथी (बना रहे), प्रभु का गुण-कीर्तन ही मेरी ज़िन्दगी के सफर के लिये असल-पूँजी बनी रहे।१।रहाउ।

प्रभु के उन सेवकों के बड़े ऊँचे भाग्य हैं, जिनके अन्दर प्रभु के

नाम के लिये श्रद्धा है, आकर्षण है। जब उनको परमात्मा का नाम प्राप्त होता है, वे (माया की तृष्णा की तरफ़ से) तृप्त हो जाते हैं, साध-संगति में मिलकर (उनके अन्दर अच्छे) गुण पैदा होते हैं।२।

पर जिन मनुष्यों को परमात्मा के नाम का स्वाद नहीं आया, जिन को प्रभु का नाम नहीं मिला, वे मन्दभाग्य हैं, वे यमों के वश में (पड़े हुये समझो, उनके सिर पर आत्मिक मौत सदा सवार रहती है)। जो मनुष्य गुरु की शरण में नहीं आते, जो साध-संगति में नहीं बैठते, लाहनत है उनके जीवित रहने पर। उनका जीवन धिक्कार योग्य है।३।

जिन प्रभु के सेवकों को गुरु की संगति में बैठना नसीब हुआ है, (समझो) उनके माथे पर परमात्मा की ओर से ही अच्छा लेख लिखा हुआ है। हे नानक! धन्य है सत्संग, धन्य है सत्संग जिसमें (बैठने से) प्रभु के नाम का आनन्द मिलता है। जहाँ गुरमुखों को मिलकर (हृदय में परमात्मा का) नाम आ बसता है।४।४।

रागु गूजरी महला ५ ॥

काहे रे मन चितवहि उदमु, जा आहरि हरि जीउ परिआ ॥
सैल पथर महि जंत उपाए, ता का रिजकु आगै करि धरिआ ॥१॥
मेरे माधउ जी सतसंगति मिले सु तरिआ ॥
गुर परसादि परम पदु पाइआ, सूके कासट हरिआ ॥१॥रहाउ॥
जननि पिता लोक सुत बनिता, कोइ न किस की धरिआ ॥
सिरि सिरि रिजकु संबाहे ठाकुरु, काहे मन भउ करिआ ॥२॥
ऊडे ऊडि आवै सै कोसा, तिसु पाछै बचरे छरिआ ॥
तिन कवणु खलावै कवणु चुगावै, मन महि सिमरनु करिआ ॥३॥

सभि निधान दस असट सिधान, ठाकुर कर तल धरिआ ॥
जन नानक बलि बलि सद बलि जाईऐ, तेरा अंतु न पारावरिआ ॥४॥५॥

पद अर्थ : काहे—क्यों? चितवहि—तू सोचता है। चितवहि उदमु—तू उद्यम सोचता है, तू ज़िक्र करता है, (*नोट :* उद्यम सोचने तथा उद्यम करने में अन्तर याद रखने योग्य है। जीविका कमाने के लिये उद्यम करना प्रत्येक मनुष्य का फ़र्ज़ है। गुरु साहिब ने चिंता-फिक्र करते रहने वाले ग़लत रास्ते से रोका है)। जा आहरि—जिस कार्य में। परिआ—पड़ा हुआ है। सैल—शैल, चट्टान। ता का—उनका। आगै—पहले ही।१।

माधउ जी—हे प्रभु जी! हे माया के स्वामी जी! (माधउ—मा-धव, मा—माया। धव—स्वामी)। परसादि—कृपा से। परम पदु—सर्वोच्च आत्मिक पद। कासट—काष्ठ, लकड़ी।१।रहाउ।

जननि—माँ। सुत—पुत्र। बनिता—पत्नी। धरिआ—आसरा। किस की—किसी का। सिरि—सर पर। सिरि सिरि—प्रत्येक सर पर, प्रत्येक जीव के लिये। संबाहे—(संबाहय) पहुँचाता है। मन—हे मन!।२।

ऊडे—ऊडि। ऊडे ऊडि—उड़ उड़, उड़ उड़ कर। से—सैंकड़ों (शब्द 'सउ' का बहु-वचन)। तिसु पाछै—उस के पीछे। बचरे—छोटे छोटे बच्चे। छरिआ—छोड़े हुये होते हैं। चुगावै—चोगा देता है। मन महि—मन में। सिमरनु—(उन बच्चों का) ध्यान। खलावै—खिलाता है। कवणु खलावै—कौन खिलाता है? कोई भी कुछ खिलाता नहीं।३।

जैसी गगनि फिरंती ऊडती, कपरे बागे वाली ॥
उह राखै चीतु पीछै बिचि बचरे, नित हिरदै सारि समाली ॥१॥७॥१३॥५१॥
(गउड़ी बैरागणि म: ४)

सभि निधान—सारे ख़ज़ाने। असट—आठ। दस असट—अठारह।

सिधान—सिद्धियाँ (*नोट :* अठारह सिद्धियों में से आठ सिद्धियाँ बहुत प्रसिद्ध हैं, इन आठ सिद्धियों का विवरण पीछे देखें। जपु जी साहिबु, पउड़ी २९ के पद अर्थ।)

निधान—(नौ) ख़ज़ाने, (सारे संसार के नौ ख़ज़ाने निश्चित किये गये हैं। इन ख़ज़ानों का स्वामी कुबेर देवता माना गया है) : पदम—सोना चांदी। महा पदम—हीरे जवाहरात। शंख—सुन्दर भोजन तथा कपड़े। मकर—शस्त्र विद्या की प्राप्ति, राज्य दरबार में मान। मुकंदु—राग आदि कोमल हुनर की प्राप्ति। कुंद—सोने की सौदागरी। नील—मोती मूंगे का व्यापार। कछप—कपड़े का व्यापार।

कर तल—हाथों की तलियों पर। पारावरिआ—पार-अवर, अन्तिम तथा आरम्भ की सीमा।४।

अर्थ : हे मन! (तेरे लिये) जिस कार्य में परमात्मा आप लगा हुआ है, उसके लिये तू क्यों (सदा) चिन्ता-फिक्र करता रहता है ? जो जीव प्रभु ने चट्टानों तथा पत्थरों में पैदा किये हैं, उनकी भी जीविका उसने (उनके पैदा करने से) पहले ही बना रखी है।१।

हे मेरे प्रभु जी! जो मनुष्य साध-संगति में मिलकर बैठते हैं, वे (व्यर्थ चिन्ता-फिक्रों से) बच जाते हैं। गुरु की कृपा से जिस मनुष्य को यह (अडोलता वाली) उच्च आत्मिक अवस्था मिल जाती है, (मानो) वह सूखा काष्ठ हरा हो जाता है।१।रहाउ।

(हे मन!) माँ, बाप, पुत्र, लोग, पत्नी—कोई भी किसी का सहारा नहीं है। हे मन! तू क्यों डरता है ? पालने वाला प्रभु प्रत्येक जीव को स्वयं ही रिज़क पहुँचाता है।२।

(हे मन देख! कूँज पक्षी) उड़ उड़ कर सैंकड़ों कोसों तक आ जाती है, पीछे उसके बच्चे (अकेले) छोड़े हुये होते हैं। उनको कोई कुछ खिलाने

वाला नहीं, कोई उनको चोगा नहीं चुगाता। वह कूँज अपने बच्चों का ध्यान अपने मन में करती रहती है, (तथा, इसको ही प्रभु उनके पालन का साधन बनाता है) ।३।

हे पालनकर्त्ता प्रभु! जगत के सारे ख़ज़ाने तथा अठारह सिद्धियाँ (मानो) तेरे हाथों की हथेलियों पर रखे हुये हैं। हे दास नानक! ऐसे प्रभु पर सदा कुरबान हो (तथा कह—हे प्रभु!) तेरी बुज़ुर्गी के प्रारम्भ तथा अन्त की कोई सीमा नहीं।४।५।

नोट : सो दरु के शीर्षक के नीचे उपर्युक्त संग्रह के पाँच शब्द आ चुके हैं। अब आगे नया शीर्षक 'सो पुरखु' शुरु होता है, जिसके चार शब्द हैं।

रागु आसा महला ४ सो पुरखु

१ओ सतिगुरप्रसादि ॥

सो पुरखु निरंजनु हरि पुरखु निरंजनु, हरि अगमा अगम अपारा ॥
सभि धिआवहि सभि धिआवहि तुधु जी, हरि सचे सिरजणहारा ॥
सभि जीअ तुमारे जी, तूं जीआ का दातारा ॥
हरि धिआवहु संतहु जी, सभि दूख विसारणहारा ॥
हरि आपे ठाकुरु हरि आपे सेवकु जी, किआ नानक जंत विचारा ॥१॥

पद अर्थ : सो—वह। पुरखु—(पुरि शेते इति पुरुषः) जो हरेक शरीर में व्यापक है। निरंजनु—निर+अंजनु। (अंजन—कालिमा, माया का प्रभाव) जिस पर माया का प्रभाव नहीं पड़ सकता। अगम—अपहुँच (गम-पहुँच)। अपारा—अ-पार, अनन्त। सभि—सारे जीव (शब्द 'जीउ' का बहु-वचन)। दातारा—रोज़ी देने वाला। ठाकुरु—स्वामी।

अर्थ : वह परमात्मा सारे जीवों में व्यापक है, (फिर भी) माया के प्रभाव से ऊपर है, अपहुँच है तथा अनन्त है।

हे सदा कायम रहने वाले तथा सब जीवों को पैदा करने वाले हरि! सारे जीव तुझे सदा स्मरण करते हैं, तेरा ध्यान करते हैं। हे प्रभु! सारे जीव तेरे ही पैदा किये हुये हैं। तू ही सब जीवों का दाता है।

हे संत जनों! उस परमात्मा का ध्यान किया करो, वह सारे दुःखों का नाश करने वाला है। वह (सारे जीवों में व्यापक होने के कारण) आप ही स्वामी है, तथा आप ही सेवक है। हे नानक! (उस के बिना) जीव बिचारे क्या हैं ? (उस हरि से अलग जीवों का कोई अस्तित्व नहीं) ।१।

तूं घट घट अंतरि सरब निरंतरि जी, हरि एको पुरखु समाणा ।।
इकि दाते इकि भेखारी जी, सभि तेरे चोज विडाणा ।।
तूं आपे दाता आपे भुगता जी, हउ तुधु बिनु अवरु न जाणा ।।
तूं पारब्रहमु बेअंतु बेअंतु जी, तेरे किआ गुण आखि वखाणा ।।
जो सेवहि जो सेवहि तुधु जी, जनु नानकु तिन कुरबाणा ।।२।।

पद अर्थ : घट—शरीर। अंतरि—अन्दर, में। घट घट अंतरि—प्रत्येक शरीर में। सरब—सारे। निरंतरि—अन्दर एक-रस। सरब निरंतरि—सब में एक-रस। अंतरु—फ़ासला। निरंतरि—अन्तर के बिना, एक-रस। एको—एक (आप) ही। इकि—(शब्द 'इक' से बहु-वचन) कई जीव। दाते—दानी। भेखारी—भिक्षुक, भिखारी। सभि—सारे। विडाण—आश्चर्य। चोज—कौतुक, तमाशे। भुगता—भोगने वाला, व्यवहार करने वाला। हउ—मैं। आखि—कहकर। वखाणा—मैं ब्यान करूँ। सेवहि—सिमरन करते हैं। जनु नानकु—पिछले बंद के 'जन नानक' तथा इस 'जनु नानकु' के अन्तर को ध्यान से देखो।२।

अर्थ : हे हरि! तू प्रत्येक शरीर में व्यापक है, तू सारे जीवों में एक-रस मौजूद है, तू एक आप ही सब में समाया हुआ है। (फिर भी) कई जीव दानी हैं, कई जीव भिखारी हैं—ये सारे तेरे ही आश्चर्ययुक्त तमाशे हैं। (क्योंकि वास्तव में) तू आप ही देय-पदार्थ देने वाला है, तथा आप (ही उन पदार्थों का) उपयोग करने वाला है। (सारी सृष्टि में) मैं तेरे बिना किसी अन्य को नहीं पहचानता। (तेरे बिना कोई अन्य दिखायी नहीं देता)।

मैं तेरे कौन कौन से गुण गा कर बताऊँ ? तू अनन्त पारब्रहम है। हे प्रभु! जो मनुष्य तुझे याद करते हैं तेरा सिमरन करते हैं, (तेरा) दास नानक उन पर कुर्बान जाता है।२।

हरि धिआवहि हरि धिआवहि तुधु जी, से जन जुग महि सुखवासी ॥
से मुकतु से मुकतु भए जिन हरि धिआइआ जी, तिन तूटी जम की फासी ॥
जिन निरभउ जिन हरि निरभउ धिआइआ जी, तिन का भउ सभु गवासी ॥
जिन सेविआ जिन सेविआ मेरा हरि जी, ते हरि हरि रूपि समासी ॥
से धंनु से धंनु जिन हरि धिआइआ जी, जनु नानकु तिन बलि जासी ॥३॥

पद अर्थ : हरि जी—हे प्रभु जी! धिआवहि—सिमरन करते हैं। से जन—वे लोग। जुग महि—ज़िन्दगी में। सुखवासी—सुख से बसने वाले। मुक्तु—(माया के बन्धनों से) आज़ाद। फासी—बन्धन, फांसी। भउ सभु—सारा डर। गवासी—दूर कर देता है। रूपि—रूप में। समासी—मिल जाते हैं। धंनु—सौभाग्यशाली। बलि जासी—कुर्बान जाता है।३।

अर्थ : हे प्रभु जी! जो मनुष्य तेरा सिमरन करते हैं, तेरा ध्यान करते हैं वे लोग अपनी ज़िन्दगी में सुखी बसते हैं।

जिन मनुष्यों ने हरि-नाम का सिमरन किया है, वे सदा के लिये माया के बन्धनों से आज़ाद हो गये हैं। उनकी यमों वाली फांसी टूट गयी है (आत्मिक मौत उनके पास नहीं फटकती) जिन लोगों ने सदा निर्भय प्रभु के नाम का सिमरन किया है, प्रभु उनका सारा डर दूर कर देता है।

जिन मनुष्यों ने प्यारे प्रभु का सदा सिमरन किया है, वे प्रभु के रूप में ही लीन हो गये हैं। भाग्यशाली हैं वे मनुष्य, धन्य धन्य हैं वे मनुष्य, जिन्होंने प्रभु के नाम का सिमरन किया है। दास नानक उन पर कुर्बान जाता है।३।

तेरी भगति तेरी भगति भंडार जी, भरे बिअंत बेअंता ॥
तेरे भगत तेरे भगत सलाहनि तुधु जी, हरि अनिक अनेक अनंता ॥
तेरी अनिक तेरी अनिक करहि हरि पूजा जी, तपु तापहि जपहि बेअंता ॥
तेरे अनेक तेरे अनेक पड़हि बहु सिम्रिति सासत जी, करि किरिआ खटु करम करंता ॥
से भगत से भगत भले जन नानक जी, जो भावहि मेरे हरि भगवंता ॥४॥

पद अर्थ : भगति भंडार—भक्ति के ख़ज़ाने। भगत—भक्ति करने वाले (*नोट :* शब्द 'भगति' तथा 'भगत' का अन्तर ध्यान देने योग्य है)। अनिक—अनेक। तपु—धूनियाँ आदि का शारीरिक कष्ट। सिम्रिति—स्मृति, (वह धार्मिक पुस्तक जो हिन्दु विद्वान ऋषियों ने वेदों को आधार बना कर अपने समाज के नेतृत्व के लिये लिखीं। इनकी गिनती २७ के करीब है)। सासत—हिन्दु धर्म के दर्शन की पुस्तकें जो गिनती में छः हैं; सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा, वेदान्त। किरिआ—धार्मिक संस्कार। खटु—छः। खटु करम—मनु-स्मृति के अनुसार ये छः कर्म हैं—विद्या पढ़नी तथा पढ़ानी। यज्ञ करना तथा यज्ञ कराना, दान देना तथा दान लेना। करंता—करते हैं। भावहि—अच्छे लगते हैं।४।

अर्थ : हे प्रभु! तेरी भक्ति के अनन्त ख़ज़ाने भरे पड़े हैं। हे हरि! अनेक तथा अनन्त तेरे भक्त तेरा गुण-कीर्तन कर रहे हैं। हे प्रभु! अनेक जीव तेरी पूजा करते हैं। अनन्त जीव (तुझे मिलने के लिये) तप साधते हैं। तेरे अनेक (सेवक) कई समृतियाँ तथा शास्त्र पढ़ते हैं तथा (उनके बताये हुये) छः धार्मिक कर्म तथा अन्य कर्म करते हैं।

हे दास नानक! वे ही भक्त भले हैं (उनकी ही मेहनत कबूल हुयी समझो) जो प्यारे हरि-भगवन्त को प्यारे लगते हैं।४।

तूं आदि पुरखु अपरंपरु करता जी, तुधु जेवडु अवरु न कोई ।।
तूं जुगु जुगु एको सदा सदा तूं एको जी, तूं निहचलु करता सोई ।।
तुधु आपे भावै सोई वरतै जी, तूं आपे करहि सु होई ।।
तुधु आपे स्रिसटि सभ उपाई जी, तुधु आपे सिरजि सभ गोई ।।
जनु नानकु गुण गावै करते के जी, जो सभसै का जाणोई ।।५।।१।।

पद अर्थ : आदि—आरम्भ। अपरंपरु—अ-परं-पर, जिसकी अन्तिम सीमा का पता न चल सके, अनन्त। तुधु जेवडु—तेरे जितना, तेरे बराबर का। अवरु—अन्य। जुगु जुगु—प्रत्येक युग में। एको—एक आप ही। निहचलु—न हिलने वाला, अटल। वरतै—होता है। सु—वह। सभ—सारी। उपाई—पैदा की। सिरजि—पैदा करके। आपे—आप ही। गोई—नष्ट की। जाणोई—जानने वाला। सभसै का—प्रत्येक (के दिल) का। सोई—सम्भाल करने वाला।५।

अर्थ : हे प्रभु! तू (सारे जगत का) मूल है, सब में व्यापक है, अनन्त है, सब को पैदा करने वाला है, तथा तेरे बराबर का अन्य कोई नहीं है। तू प्रत्येक युग में एक आप ही है। तू सदा ही आप ही आप

है। तू सदा कायम रहने वाला है। सब को पैदा करने वाला है, सब की ख़बर लेने वाला है।

हे प्रभु! जगत में वही होता है जो तुझ को स्वयं अच्छा लगता है, वही होता है जो तू स्वयं ही करता है। हे प्रभु! सारी सृष्टि तूने स्वयं ही पैदा की है। तू स्वयं ही इसको पैदा करके स्वयं ही इसको नष्ट करता है।

दास नानक उस परमात्मा के गुण गाता है जो प्रत्येक जीव के दिल की जानने वाला है।५।१।

नोट : इस शब्द के पाँच बंद (Stanzas) हैं। प्रत्येक बंद में पाँच पंक्तियाँ हैं। अन्तिम बंद की समाप्ति पर अंक '५' के साथ एक और अंक '१' दिया गया है। इसका भाव यह है कि शीर्षक 'सो पुरखु' एक नया संग्रह है, जिसका यह पहला शब्द है।

आसा महला ४॥

तूं करता सचिआरु मैडा सांई ॥
जो तउ भावै सोई थीसी, जो तू देहि सोई हउ पाई ॥१॥रहाउ॥
सभ तेरी तूं सभनी धिआइआ ॥
जिस नो क्रिपा करहि, तिनि नाम रतनु पाइआ ॥
गुरमुखि लाधा मनमुखि गवाइआ ॥
तुधु आपि विछोड़िआ आपि मिलाइआ ॥१॥
तूं दरीआउ, सभ तुझ ही माहि ॥
तुझ बिनु दूजा कोई नाहि ॥
जीअ जंत सभि तेरा खेलु ॥
विजोगि मिलि विछुड़िआ संजोगी मेलु ॥२॥

जिस नो तू जाणाइहि सोई जनु जाणै ।।
हरि गुण सद ही आखि वखाणै ।।
जिनि हरि सेविआ तिनि सुखु पाइआ ।।
सहजे ही हरि नामि समाइआ ।।३।।
तू आपे करता तेरा कीआ सभु होइ ।।
तुधु बिनु दूजा अवरु न कोइ ।।
तू करि करि वेखहि जाणहि सोइ ।।
जन नानक गुरमुखि परगटु होइ ।।४।।२।।

नोट : इस शब्द के चार बंद हैं। अंक न. ४ से अगला अंक २ बताता है कि शीर्षक 'सो पुरखु' की लड़ी में यह दूसरा शब्द है।

पद अर्थ : सचिआरु—(सच-आलय) स्थिरता का घर, सदा कायम रहने वाला। मैडा—मेरा। सांई—स्वामी, मालिक। तउ—तुझे। भावै—अच्छा लगता है। थीसी—होगा। हउ—मैं। पाई—मैं प्राप्त करता हूँ।१।

सभ—सारी (सृष्टि)। तूं—तुझे [गउड़ी छंत म: ५, पन्ना २४८ 'मोहन तूं मानहि एकु जी, अवर सभ राली'—यहाँ भी शब्द तूं का अर्थ तुझे है (भाव, हे मोहन प्रभु! तुझे एक को ही लोग नाश रहित मानते हैं। और सारी सृष्टि नष्ट हो जाने वाली है)। इसी तरह सिरीरागु म. ५ पन्ना ५१, शब्द न. ९५—'जिनि तूं साजि सवारिआ'—तूं—तुझे। पन्ना ५२—'जिनि तूं सेविआ भाउ करि'—तूं—तुझे। पन्ना ६१—'गुरमति तूं सालाहणा होरु कीमति कहणु न जाइ'—तूं—तुझे। पन्ना १००—'जिन तूं जाता, जो तुधु मनि भाने'—तूं—तुझे। पन्ना १०२—'तिसु कुरबाणी जिनि तूं सुणिआ'—तूं—तुझे। पन्ना १३०—'तुधु बिनु अवरु न कोई जाचा, गुर परसादी तूं पावणिआ'। तूं—तुझे। पन्ना १४२—'भी तूं है सालाहणा, आखण लहै न चाउ'। तूं—तुझे।

अन्य बहुत से ऐसे प्रमाण हैं]। तिनि—उस मनुष्य ने। गुरमुखि—वह मनुष्य जिसका मुख गुरु की ओर है। मनमुखि—वह मनुष्य जिसका मुख अपने मन की ओर है।१।

माहि—में। सभि—सारे। विजोगि—वियोग के कारण (भाव, जिसके माथे पर वियोग का लेख है)। मिलि—मिलकर, मानव शरीर प्राप्त करके। संजोगी—संयोग से। मेलु—मिलाप।२।

जाणाइहि—(तू) समझ देता है। सोई—वही। सद—सदा। आखि—कह कर। सहजे—सहज, आत्मिक अडोलता में। नामि—नाम में।३।

आपे—आप ही। कीआ—किया हुआ। सभु—प्रत्येक कार्य। अवरु—अन्य। वेखहि—सम्भाल करता है। सोइ—सार। गुरमुखि—गुरु की शरण में जाने वाला मनुष्य।४।

अर्थ : (हे प्रभु!) तू सब को पैदा करने वाला है, तू सदा कायम रहने वाला है, तू ही मेरा स्वामी है। (जगत में) वही कुछ होता है जो तुझे पसंद आता है। जो कुछ तू दे, मैं वही कुछ प्राप्त कर सकता हूँ।१।रहाउ।

(हे प्रभु!) सारी सृष्टि तेरी (बनायी हुयी) है, सारे जीव तुझे ही स्मरण करते हैं। जिस पर तू दया करता है, उसी ने तेरा रत्न के समान (कीमती) नाम प्राप्त किया है। जो मनुष्य गुरु के सम्मुख हुआ, उस ने ही (यह रत्न) खोज लिया। जो अपने मन के पीछे चला, उसने गँवा लिया। (पर किसी जीव के क्या वश ? हे प्रभु!) जीव को तू आप ही (अपने से) अलग करता है, आप ही अपने साथ मिलाता है।१।

(हे प्रभु!) तू (जीवन की मानों एक) नदी है, सारे जीव तेरे में ही (मानों लहरें) हैं। तेरे बिना (तेरे जैसा) अन्य कोई नहीं है। ये सारे जीव जन्तु, तेरा (रचा हुया) खेल है। जिन के माथे पर वियोग का लेख है, वह मानव-जन्म प्राप्त कर के भी तुझ से बिछुड़े हुये हैं। (पर तेरी

रज़ा के अनुसार) संयोग के लेख से (फिर तेरे साथ) मिलाप हो जाता है।२।

(हे प्रभु!) जिस मनुष्य को तू आप ज्ञान देता है, वह मनुष्य (जीवन का सही रास्ता) समझता है। वह मनुष्य हे हरि! सदा तेरे गुण गाता है, तथा (दूसरों को) उच्चारण कर कर के सुनाता है।

(हे भाई!) जिस मनुष्य ने परमात्मा के नाम का सिमरन किया है, उसने सुख प्राप्त किया है। वह मनुष्य सदा आत्मिक अडोलता में टिका रह कर प्रभु के नाम में लीन हो जाता है।३।

(हे प्रभु!) तू आप ही सब कुछ पैदा करने वाला है, सब कुछ तेरा किया हुआ ही होता है। तेरे बिना (तेरे जैसा) अन्य कोई नहीं है। जीव पैदा करके उनकी सम्भाल भी तू आप ही करता है, तथा प्रत्येक के दिल की खबर जानता है।

हे दास नानक! जो मनुष्य गुरु की शरण में जाता है, उसके अन्दर परमात्मा प्रकट हो जाता है।४।२।

आसा महला १ ॥

तितु सरवरड़ै भईले निवासा, पाणी पावकु तिनहि कीआ ॥
पंक जु मोह पगु नही चालै, हम देखा तह डूबीअले ॥१॥
मन, एकु न चेतसि मूड़ मना ॥
हरि बिसरत तेरे गुण गलिआ ॥१॥रहाउ॥
ना हउ जती सती नही पड़िआ मूरख मुगधा जनमु भइआ ॥
प्रणवति नानक तिन की सरणा जिन तू नाही वीसरिआ ॥२॥३॥

पद अर्थ : तितु—उस में (शब्द 'तिसु' से 'तितु' अधिकरण कारक,

एक-वचन है)। सरवरु—तालाब। सरवरड़ा—भयानक तालाब। सरवरड़ै—भयानक तालाब में। तितु सरवरड़ै—उस भयानक तालाब में। भईले—हुआ है। पावकु—आग, तृष्णा की आग। तिनहि—उस (प्रभु) ने (आप) ही। पंक—कीचड़। पंक जु मोह—जो मोह का कीचड़ है। पगु—पैर। हम देखा—हमारे देखते ही, हमारे सामने ही। तह—उस (सरोवर) में। डूबीअले—डूब गये, डूब रहे हैं।१।

मन—हे मन! मूड़ मना—हे मूर्ख मन! गलिआ—गलते जा रहे हैं, घटते जा रहे हैं।१।रहाउ।

हउ—मैं। जती—काम वासना को रोकने का यत्न करने वाला। सती—ऊँचे आचरण वाला। मुगध—मूर्ख, बे-समझ। जनमु—जीवन। प्रणवति—बिनती करता है।२।

अर्थ : (हे भाई! हम जीवों का) उस भयानक (संसार सरोवर) में निवास है। (जिस में) उस प्रभु ने स्वयं ही पानी (की जगह तृष्णा की) आग पैदा की हुयी है (तथा उस भयानक सरोवर में) जो मोह का कीचड़ है, (उस में जीवों का) पैर चल नहीं सकता (जीव मोह के कीचड़ में फंसे पड़े हैं)। हमारे सामने ही (अनेक जीव मोह के कीचड़ में फंसकर) उस (तृष्णा-आग के अथाह समुद्र) में डूबते जा रहे हैं।१।

हे मन! हे मूर्ख मन! तू एक परमात्मा को याद नहीं करता। तू ज्यों ज्यों परमात्मा को भूलता जा रहा है, तेरे (अन्दर से) गुण घटते जा रहे हैं।१।रहाउ।

(हे प्रभु!) न मैं जती हूँ, न मैं सती हूँ, न ही मैं पढ़ा हुआ हूँ, मेरा जीवन तो मूर्खों, बेसमझों वाला बना हुआ है, (भाव, जत, सत, विद्या इस तृष्णा की आग तथा मोह के कीचड़ में गिरने से बचा नहीं सकते। यदि मनुष्य प्रभु को भुला दे तब जत, सत तथा विद्या के होते हुये भी मनुष्य की जिन्दगी महामूर्खों वाली होती है। इसलिये नानक बिनती करता

है—(हे प्रभु! मुझे) उन (गुरमुखों) की शरण में (रख), जिनको तू नहीं भूला (जिनको तेरी याद नहीं भूली)।२।३।

आसा महला ५॥

भई परापति मानुख देहुरीआ॥
गोबिंद मिलण की इह तेरी बरीआ॥
अवरि काज तेरै कितै न काम॥
मिलु साध संगति भजु केवल नामु॥१॥
सरंजामि लागु भवजल तरन कै॥
जनमु ब्रिथा जात रंगि माइआ कै॥१॥रहाउ॥
जपु तपु संजमु धरमु न कमाइआ॥
सेवा साध न जानिआ हरि राइआ॥
कहु नानक हम नीच करंमा॥
सरणि परे की राखहु सरमा॥२॥४॥

पद अर्थ : भई परापति—मिली है। देहुरीआ—सुन्दर देह, सुन्दर शरीर। मानुख देहुरीआ—सुन्दर मानव-शरीर। बरीआ—मौका, समय। अवरि—अन्य सारे। (अवरु—एक-वचन। अवरि—बहु-वचन)। भजु—याद कर, सिमरन कर।१।

सरंजामि—इन्तज़ाम में। लागु—लग। भवजल—संसार-समुद्र। तरन कै सरंजामि—पार उतरने के इन्तज़ाम में। ब्रिथा—व्यर्थ। जात—जा रहा है। रंगि—प्यार में।१।रहाउ।

जपु—सिमरन। तपु—सेवा आदि उद्यम। संजमु—मन को विकारों से रोकने की अच्छी तरह कोशिश। साध—गुरु। सेवा हरि राइआ—स्वामी प्रभु का सिमरन। कहु—कह। नानक—हे नानक! हम—हम जीव। नीच करंमा—मन्द कर्मी। सरमा—शर्म, लाज।२।

अर्थ : (हे भाई!) तुझे सुन्दर मानव-शरीर मिला है। परमात्मा को मिलने का तेरे लिये यही अवसर है। (यदि प्रभु को मिलने के लिये कोई उद्यम न किया, तब) अन्य सारे कार्य तेरे अपने किसी भी काम के नहीं हैं। (तुझे कोई लाभ नहीं पहुँचायेंगे)। (इसलिये) साध-संगति में (भी) मिल बैठा कर, (साध-संगति में बैठकर भी) केवल परमात्मा के नाम का सिमरन किया कर, (साध-संगति में बैठने का भी तभी लाभ है, यदि वहाँ तू परमात्मा के गुण-कीर्तन में जुड़े)।१।

(हे भाई!) संसार-समुद्र से पार उतरने के (भी) कार्य में लग। (केवल) माया के प्यार में मानव-जन्म व्यर्थ जा रहा है।१।रहाउ।

(हे भाई!) तू प्रभु का सिमरन नहीं करता, (प्रभु को मिलने के लिये सेवा आदि का कोई) उद्यम नहीं करता, मन को विकारों की तरफ़ से रोकने का भी तू यत्न नहीं करता—तू (ऐसा कोई) धर्म नहीं कमाता। न तूने गुरु की सेवा की, न तूने स्वामी प्रभु के नाम का सिमरन किया। हे नानक! (प्रभु के दर पर प्रार्थना कर तथा) कह—(हे प्रभु!) हम जीव मन्द-कर्मी हैं, (तेरी शरण में आये हैं) शरण पड़े की लाज रखो।२।४।

नोट : साधारणतः प्रत्येक संग्रह के शब्द मः १ के शब्दों के साथ प्रारम्भ होते हैं। आगे शेष गुरु व्यक्तियों के क्रमवार आते हैं। पर संग्रह 'सो पुरखु' का पहला शब्द है ही मः ४ का, इसलिये मः ४ का दूसरा शब्द भी साथ ही देकर आगे बाकी की तरतीब क्रमवार रखी है।

यदि ऐ दोनों संग्रह अलग अलग न होते, तब इनकी मिली जुली

तरतीब ऐसे होती :

म: १—सो दरु केहा, सुणि वडा, आखा जीवा, तितु सरवरड़ै (४ शब्द)
म: ४—हरि के जन, सो पुरखु, तू करता (३ शब्द)
म: ५—काहे रे मन, भई परापति (२ शब्द)

जोड़—९ शब्द

पा: १० कबियो बाच बेनती ॥

चौपई ॥

हमरी करो हाथ दै रच्छा ॥ पूरन होइ चित्त की इच्छा ॥
तव चरनन मन रहै हमारा ॥ अपना जान करो प्रतिपारा ॥१॥

पद अर्थ : रच्छा—रक्षा। हाथ दै—हाथ देकर। तव चरनन—तुम्हारे चरणों में। प्रतिपारा—पालन।

अर्थ : हे अकाल पुरख जी! अपना हाथ देकर मेरी रक्षा करो जी। मेरे मन की यह इच्छा (आप की कृपा द्वारा) पूरी हो कि मेरा मन (सदा) आप के चरणों में (जुड़ा) रहे। मुझे अपना (दास) समझ कर मेरा (हर तरह) प्रतिपालन करो।१।

हमरे दुसट सभै तुम घावहु ॥ आपु हाथ दै मोहि बचावहु ॥
सुखी बसै मोरो परिवारा ॥ सेवक सिक्ख सभै करतारा ॥२॥

पद अर्थ : दुसट—बुरा सोचने वाले, दोषी। घावहु—मार दो। हाथ दै—हाथ देकर। करतारा—हे करतार! हे अकाल पुरख!

अर्थ : हे वाहिगुरु जी! (अपनी शक्ति द्वारा) मेरा बुरा सोचने वाले सारे दुश्मन समाप्त कर दो, तथा अपना हाथ देकर मुझे (इन दुष्टों दोषियों

से) बचा लो। मेरा परिवार सुखी बसे। हे परमात्मा! यह मेरा सिक्ख परिवार सारे तेरे ही सेवक हैं।२।

मो रच्छा निज कर दै करियै ॥ सभ बैरन कौ आज संघरियै ॥
पूरन होइ हमारी आसा ॥ तोर भजन की रहै पिआसा ॥३॥

पद अर्थ : निज कर—अपना हाथ। बैरन—वैरी, शत्रु। करियै—कीजिए। संघरियै—संहार करो, मार दो। तोर—तेरे।

अर्थ : (हे वाहिगुरु जी!) अपना हाथ देकर मेरी रक्षा करो जी। मेरे सारे शत्रुओं (मनुष्यता के दोषियों) को तत्काल नष्ट कर दो। (आप की कृपा द्वारा) मेरी यह आशा, कि मुझे हर-दम आप के सिमरन की प्यास लगी रहे, पूरी हो।

तुमहि छाडि कोई अवर न धयाऊं ॥ जो बर चहों सु तुम ते पाऊं ॥
सेवक सिक्ख हमारे तारीअहि ॥ चुनि चुनि सत्र हमारे मारीअहि ॥४॥

पद अर्थ : छाडि—छोड़कर। धयाऊं—ध्यान करुँ। बर—वर, आर्शीवाद। सत्र—शत्रु, दुश्मन।

अर्थ : हे अकाल पुरख जी! (कृपा करो) मैं तुम्हें छोड़कर किसी अन्य का ध्यान न करुँ। जो भी आर्शीवाद चाहूँ, वह (केवल) आप से ही प्राप्त करुँ। मेरे सिक्ख (जो आप जी के) सेवक हैं, इनको (कृप्या संसार सागर से) पार करो जी। मेरे सारे दुश्मन (मनुष्यता के दोषी) चुन चुन कर समाप्त कर दो जी।४।

आप हाथ दै मुझै उबरियै ॥ मरन काल का त्रास निवरियै ॥
हूजो सदा हमारे पच्छा ॥ स्री असिधुज जू करियहु रच्छा ॥५॥

पद अर्थ : उबरियै—उबार लो, बचा लो। मरन काल का त्रास—मरने के समय का डर तथा कष्ट। असिधुज—जिस के झंडे पर कृपान का चिन्ह है, अकाल पुरख। असिधुज जू—महाकाल जी। हूजो—हो जाओ जी। पच्छा—मददगार, पक्ष में।

अर्थ : हे महाकाल जी! (आप अपनी कृपा द्वारा) अपना हाथ देकर मुझे (भवसागर से) बचा लो जी। मेरे (मन) अन्दर से मरण-समय का कष्ट तथा भय दूर कर दो जी। हे परमात्मा! सदा मेरे पक्ष में (मददगार) रहो जी, (अर्थात मेरी हर समय मदद करो) तथा हे महाकाल जी! (हर कठिनाई के समय) मेरी रक्षा करो।५।

राखि लेहु मुहि राखनहारे ।। साहिब संत सहाइ पियारे ।।
दीन बंधु दुसटन के हंता ।। तुमहो पुरी चतुरदस कंता ।।६।।

पद अर्थ : साहिब—स्वामी। संत सहाइ—संतों के सहायक, संतों की सहायता करने वाले। दीन बंधु—दीनों के मित्र, गरीबों के मददगार। दुसटन के हंता—दुष्टों को मारने वाले। चतुरदस पुरी—चौदह पुरियाँ। कंता—मालिक, स्वामी।

अर्थ : हे संतों की सहायता करने वाले, सब के रखवाले, प्यारे स्वामी जी! मेरी (हर तरह) रक्षा करो जी। आप दीन दु:खियों के मित्र हो, तथा (मानवता के) दोषियों का नाश करने वाले हो। आप ही चौदह पुरियों के स्वामी हो।६।

काल पाइ ब्रहमा बपु धरा ।। काल पाइ सिवजू अवतरा ।।
काल पाइ कर बिसनु प्रकासा ।। सकल काल का कीआ तमासा ।।७।।

पद अर्थ : काल—समय का रचयिता, अकाल पुरख, महाकाल।

काल पाइ—काल की आज्ञा से। ब्रहमा—पुरातन हिन्दु ग्रन्थों के अनुसार सृष्टि की रचना करने वाला। बिसनु—सृष्टि का पालन करने वाला। सिवजू—सृष्टि का संहार करने वाला (पुरातन विश्वास अनुसार ब्रहमा-देवता को सृष्टि के समूह जीव जन्तुओं आदि की रचना करने वाला, विष्णु को सारी सृष्टि का पालन करने वाला तथा शिव को समय पर सृष्टि का विनाश करने वाला माना गया है। इन तीनों ही देवताओं के कार्य व्यापार से सारी सृष्टि के जीवों के आवागमन का चक्कर चल रहा है)।

अर्थ : महाकाल, अर्थात अकाल पुरख जी के हुक्म के आधीन ही ब्रहमा ने शरीर धारण किया, परमात्मा के हुक्म से ही शिवजी ने जन्म लिया तथा अकाल पुरख के हुक्म से ही विष्णु का प्रकाश हुआ। यह सारा जगत तमाशा महाकाल (अकाल पुरख) का ही बनाया हुआ है।७।

जवन काल जोगी सिव कीओ ।। बेदराज ब्रहमा जू थीओ ।।
जवन काल सभ लोक सवारा ।। नमसकार है ताहि हमारा ।।८।।

पद अर्थ : जवन काल—जिस काल (अकाल पुरख) ने। बेद राज—वेदों का राजा (रचयिता)। सवारा—सजाया।

अर्थ : जिस अकाल पुरख ने शिवजी जैसे योगिराज की रचना की। वेदाचार्य ब्रहमा (जिस के हुक्म में) पैदा हुआ। जिस अकाल पुरख ने सारे संसार की रचना की, तथा उसे सँवारा हुआ है, उस (अकाल पुरख) को मेरी नमस्कार है।८।

जवन काल सभ जगत बनायो ।। देव दैत जच्छन उपजायो ।।
आदि अंति एकै अवतारा ।। सोई गुरू समझियहु हमारा ।।९।।

पद अर्थ : देव—देवता। दैत—राक्षस। जच्छन—यक्ष (देवताओं की एक जाति)। सोई—वही।

अर्थ : जिस काल (अकाल पुरख) ने सारा जगत रचा हुआ है, (सृष्टि में) देवता, राक्षस तथा यक्ष आदि पैदा किये हुये हैं। जो (वाहिगुरु) सृष्टि रचना के आरम्भ से लेकर अन्त तक एक ही पूजनीय हस्ती है, वह (अकाल पुरख) ही हमारा गुरु है। (हमें रौशनी देने वाला है, हमारा नेतृत्व करने वाला है)।९।

नमसकार तिस ही को हमारी ॥ सकल प्रजा जिन आप सवारी ॥
सिवकन को सिवगुन सुख दीओ ॥ सत्रुन को पल मौ बध कीओ ॥१०॥

पद अर्थ : सकल—सारी, समूह। प्रजा—जनता। सवारी—सजायी, नियम-बद्ध की। सिवकन—सेवक। सिवगुन—दैवी गुण, शुभ गुण। सत्रुन—शत्रुओं को। बध कीओ—मार दिया।

अर्थ : जिस (अकाल पुरख) ने सारे जन समुदाय का सृजन किया है, सँवारा है, जिस (वाहिगुरु) ने अपने सेवकों को हमेशा दैवी गुण, तथा सुख प्रदान किये हैं, जो (अपने अमित बल द्वारा) अपने सेवकों के शत्रुओं को पल भर में नष्ट करता आया है, उसको ही मेरी (सदा) नमस्कार है।१०।

घट घट के अंतर की जानत ॥ भले बुरे की पीर पछानत ॥
चीटी ते कुंचर असथूला ॥ सभ पर क्रिपा द्रिसटि कर फूला ॥११॥

पद अर्थ : घट घट के—प्रत्येक शरीर, भाव जीव के। पीर—पीड़ा। चीटी—चींऊटी। कुंचर—हाथी।

अर्थ : वह (अन्तर्यामी वाहिगुरु) प्रत्येक जीव के दिल की हालत जानता है। क्या अच्छे तथा क्या बुरे ? सब के दिलों की पीड़ा को अनुभव करता है, (छोटी-सी) चींऊटी से लेकर बड़े आकार वाले हाथी तक सब के ऊपर अपनी कृपा-दृष्टि कर के प्रसन्न होता है।

संतन दुख पाए ते दुखी ॥ सुख पाए साधुन के सुखी ॥
एक एक की पीर पछानैं ॥ घट घट के पट पट की जानैं ॥१२॥

पद अर्थ : साधुन—संत। घट घट के—प्रत्येक शरीर के। पट—पर्दा।

अर्थ : वाहिगुरु (चाहे निर्लेप है पर इस के बावजूद) अपने संतों भक्तों के दुःखी किये जाने पर दुःख अनुभव करता है, तथा सतपुरुषों को सुख मिलने से वह सुख प्रतीत करता है। (बंधन मुकतु संतहु मेरी राखै ममता*) अकेले अकेले व्यक्ति की पीड़ा को अनुभव करता है, तथा प्रत्येक मनुष्य के दिल की गुप्त बातों को जानता है।१२।

जब उदकरख करा करतारा ॥ प्रजा धरत तब देह अपारा ॥
जब आकरख करत हो कबहूं ॥ तुम मै मिलत देह धर सभहूं ॥१३॥

पद अर्थ : उदकरख—पसारा, विस्तार करने वाली शक्ति का प्रयोग। धरत—धारती है। देह—शरीर। आकरख—आक्रमण (समेटने) वाली शक्ति का प्रयोग। देह धर—देहधारी, जीव।

अर्थ : हे परमात्मा! जब आप जी अपनी विस्तार करने वाली शक्ति का प्रयोग करते हो, तब अनगिणत जीव शरीर धारण कर लेते हैं। पर जब आप जी अपनी समेटने वाली शक्ति का प्रयोग करते हो, तो सारे देहधारी (जीव जन्तु) आप में ही समा जाते हैं।१३।

जेते बदन स्रिसटि सभ धारै ॥ आपु आपनी बूझ उचारै ॥
तुम सभही ते रहत निरालम ॥ जानत बेद भेद अर आलम ॥१४॥

पद अर्थ : बदन—शरीर। बूझ—सूझ। निरालम—निर्लेप। भेद—रहस्यवादी पुरुष। आलम—ज्ञानवान पुरुष।

---

* सिरीरागु म. ५, अंक ३ (४॥२७॥९७) पन्ना ५२।

अर्थ : सृष्टि जितने शरीर (जीव) उत्पन्न करती है उनमें से प्रत्येक अपनी अपनी समझ के अनुसार ही (हे प्रभु!) आप जी की प्रशंसा का कथन करता है। आप जी सारे जीवों से निर्लेप रहते हो, यह बात, वेद (धर्म ग्रन्थ) जानते हैं, रहस्यवादी तथा ज्ञानवान पुरुष जानते हैं।१४।

निरंकार त्रिबिकार निरलंभ ॥ आदि अनील अनादि असंभ ॥
ता का मूढ़ उचारत भेदा ॥ जा कौ भेव न पावत बेदा ॥१५॥

पद अर्थ : निरंकार—आकार से रहित। त्रिबिकार—निर्विकार, विकारों से रहित। निरलंभ—निर-अलंब, आसरे से रहित। आदि—मूल। अनील—रूप रंग से रहित। अनादि—अन+आदि, मूल से रहित। असंभ—जन्म से रहित। मूढ़—मूर्ख। भेव—भेद, पार।

अर्थ : (अकाल पुरख वाहिगुरु) किसी स्थूल आकार से रहित है, कोई विकार उसको छू नहीं सकता, उसको किसी सहारे (आसरे) की आवश्यकता नहीं। वह सारी प्रकृति का आदि है, वह रूप से रहित है, तथा जन्म से रहित है। मूर्ख मनुष्य उस (निरंकार) के भेद जान लेने की शेखी बघारता है, जिस का भेद वेद (तथा वेदाचार्य) भी नहीं जान सकते।१५।

ता कौ करि पाहन अनुमानत ॥ महा मूढ़ कछु भेद न जानत ॥
महादेव कौ कहत सदा सिव ॥ निरंकार का चीनत नहि भिव ॥१६॥

पद अर्थ : पाहन—पत्थर (मूर्ति)। अनुमानत—अनुमान करता है, अंदाजा लगाता है, समझता है। महादेव—शिवजी। सदा सिव—परमात्मा। चीनत नहि—पहचान नहीं करता। भिव—भेद।

अर्थ : मूर्ख लोग (निराकार परमात्मा के अस्तित्व का) भेद नहीं जानते। पदार्थवादी, पत्थर की मूर्ति बना कर उसको परमात्मा मानते हैं,

तथा महादेव अथवा शिवजी देवता को ही सदा कायम रहने वाला परमात्मा कहते हैं, परन्तु वास्तविक परमात्मा (की हस्ती) का भेद नहीं जानते।१६।

आपु आपनी बुधि है जेती ॥ बरनत भिंन भिंन तुहि तेती ॥
तुमरा लखा न जाइ पसारा ॥ किह बिधि सजा प्रथम संसारा ॥१७॥

पद अर्थ : बुधि—बुद्धि, समझ। बरनत—वर्णन करता है।

अर्थ : हे प्रभु! अपनी अपनी बुद्धि, जितनी (आप जी द्वारा दी हुयी) है, उस अनुसार प्रत्येक जीव अलग अलग तरीकों से आप जी (के अलग अलग गुणों) का वर्णन करता है। आप जी का (अद्‌भुत) जगत-पसारा अलख है, पता नहीं लगता कि आप जी ने किस तरीके से सबसे पहले संसार का सृजन किया।१७।

एकै रूप अनूप सरूपा ॥ रंक भयो राव कही भूपा ॥
अंडज जेरज सेतज कीनी ॥ उतभुज खानि बहुर रचि दीनी ॥१८॥

पद अर्थ : अनूप—अनुपम, बे-मिसाल। रंक—गरीब। राव—अमीर। भूपा—भूपति, राजा। अंडज—अंडे से पैदा होने वाले जीव जैसे पक्षी, मुर्गा आदि। जेरज—जेर से पैदा होनें वाले जीव, जैसे मनुष्य तथा दूध देने वाले पशु आदि। सेतज—पसीने से पैदा होने वाले जैसे जूँ आदि। उतभुज—धरती पर उगने वाले (बूटे) वृक्ष, वनस्पति आदि। खानि—खानें, उत्पत्ति के स्रोत।

अर्थ : सुन्दर रूप स्वरूप वाला, बे-मिसाल एक ही (प्रभु आप ही) कहीं कंगाल बना बैठा है, कहीं अमीर तथा कहीं राजा। उसने अंडज, जेरज, सेतज, उत्भुज चारों खानों की रचना की है, तथा फिर सारी उत्पत्ति इन खानों द्वारा ही की है।१८।

कहूं फूल राजा ह्वै बैठा ।। कहूं सिमटि भ्यो संकर इकैठा ।।
सगरी स्रिसटि दिखाइ अचंभव ।। आदि जुगादि सरूप सुयंभव ।।१९।।

पद अर्थ : फूल राजा—कमल फूल से पैदा हुआ ब्रह्मा। सिमटि—सिकुड़ कर। अचंभव—अचम्भा, तमाशा। सुयंभव—स्वयंभू, जिसका प्रकाश अपने आप हुआ है।

अर्थ : (अकाल पुरख) कहीं ब्रहमा बना बैठा है, कहीं सिकुड़ कर शिवजी के रूप में इक्टठा हुआ बैठा है। सारी जगत-रचना का अद्‌भुत तमाशा दिखा रहा है। वह स्वयं प्रकाश, (जिस का प्रकाश अपने आप से हुआ है) सुन्दर स्वरूप वाला वाहिगुरु सृष्टि के आदि में भी प्रकाशमान था, तथा युगों के आदि में भी।१९।

अब रच्छा मेरी तुम करो ।। सिख उबारि असिख संघरो ।।
दुसट जिते उठवत उतपाता ।। सकल मलेछ करो रणघाता ।।२०।।

पद अर्थ : रच्छा—रक्षा। उबारि—बचाकर। संघरो—संहार करो, मार दो। उठवत उतपाता—उठ पड़ते हैं। मलेछ—राक्षस बुद्धि वाले। घाता—नाश।

अर्थ : हे प्रभु! अब आप जी मेरी रक्षा करो। दैवी-शिक्षा अनुसार चलने वाले सिक्ख-सेवकों को बचा लो, तथा इस शिक्षा के विरुद्ध व्यवहार करने वाले व्यक्तियों का नाश करो। जितने भी खोटी मति वाले मानवता के दोषी समय समय पर उठ खड़े होते हैं, उन सभी राक्षस बुद्धि वाले पापियों का संसार रण-क्षेत्र में विनाश करो।२०।

जे असिधुज तव सरनी परे ।। तिन के दुशट दुखित ह्वै मरे ।।
पुरख जवन पग परे तिहारे ।। तिन के तुम संकट सभ टारे ।।२१।।

पद अर्थ : जे—जो जीव। असिधुज—हे कृपाणधारी प्रभु! तव—तुम्हारी। दुशट—दुष्ट, दोषी। संकट—कष्ट।

अर्थ : हे खडगधारी प्रभु! जो जो जीव तुम्हारी शरण में आ गये, उनके दोषी आप दुखी होकर अपनी मौत मर गये। हे प्रभु! जो व्यक्ति आप जी के चरणों में गिर पड़े, आप जी ने उनके सारे कष्टों का निवारण कर दिया।२१।

जो कलि को इक बार धिऐ है ।। ता के काल निकटि नहि ऐहै ।।
रच्छा होइ ताहि सभ काला ।। दुशट अरिसट टरें ततकाला ।।२२।।

पद अर्थ : काल—मौत, यमदूत। निकटि—पास। अरिसट—कष्ट, संकट। टरें—टल जाते हैं। ततकाल—तुरन्त, उसी क्षण।

अर्थ : जो जीव अकाल पुरख को एक बार भी (एकाग्रचित्त होकर) ध्यान में लाता है, उसके नज़दीक काल फटक नहीं सकता। उसकी हर समय रक्षा होती है, तथा उसके दुश्मन, दोषी तुरन्त उसका पीछा छोड़ देते हैं।२२।

क्रिपा द्रिसटि तन जाहि निहरिहो ।। ता के ताप तनक मो हरिहो ।।
रिद्धि सिद्धि घर मो सभ होई ।। दुशट छाह छ्वै सकै न कोई ।।२३।।

पद अर्थ : तन जाहि—जिन के शरीरों को। निहरिहो—देखते हो। तनक मो—क्षण भर में। हरिहो—दूर कर देते हो। छाह—परछाई को। छ्वै सकै न—छू नहीं सकता।

अर्थ : हे प्रभु! जिन जीवों के शरीर को आप कृपा की दृष्टि से देखते हो, उनके सारे दु:ख कलेश क्षण भर में दूर करं देते हो। (उनके) शरीर-घर में सारी ऋद्धियाँ सिद्धियाँ स्वयं ही पैदा हो जाती हैं, तथा कोई दोषी उनकी परछाई के नज़दीक भी नहीं फटक सकता।२३।

एक बार जिन तुमै संभारा ।। काल फास ते ताहि उबारा ।।
जिन नर नाम तिहारो कहा ।। दारिद दुसट दोख ते रहा ।।२४।।

पद अर्थ : संभारा—सम्भाला, चिन्तन किया।

अर्थ : महाकाल जी! जिन जीवों ने एक भी बार आप जी का (एकाग्र मन होकर) चिन्तन किया, (आप जी ने) उनको काल की फांसी से बचा लिया। जिन मनुष्यों ने आपके नाम का सिमरन किया, वे दरिद्रता से तथा दोषी दुश्मनों से बचे रहे।२४।

खड़ग केत मै सरणि तिहारी ।। आप हाथ दै लेहु उबारी ।।
सरब ठौर मो होहु सहाई ।। दुसट दोख ते लेहु बचाई ।।२५।।

पद अर्थ : खड़ग केत—कृपाण के चिन्ह वाला झण्डा रखने वाला। ठौर—स्थान।

अर्थ : हे खड़ग चिन्ह वाले झण्डे के स्वामी वाहिगुरु! मैं आप जी की शरण में (आ पड़ा) हूँ। मुझे अपना हाथ देकर बचा लो। प्रत्येक स्थान पर मेरी सहायता करो तथा दुष्टों दोषियों से मुझे बचा लो।२५।

स्वैया—पांइ गहे जब ते तुमरे तब ते कोऊ आंख तरे नहीं आन्यो ।।

पद अर्थ : पांइ—पैर, चरण। गहे—पकड़ लिये। आंख तरे—आँख के नीचे।

अर्थ : (हे वाहिगुरु जी!) जब से मैंने आप के चरण कमल पकड़े हैं, तब से मैं किसी अन्य को आँख के नीचे नहीं लाया (अर्थात आप जी के चरणों से लग कर मैं किसी का मोहताज नहीं रहा)।

राम रहीम पुरान कुरान अनेक कहैं मत एक न मान्यो ॥

पद अर्थ : राम रहीम—राम चन्द्र जी (हिन्दुओं के अवतार) तथा हज़रत मुहम्मद साहिब (मुस्लमानों के पैगम्बर)। पुरान—हिन्दुओं के धर्म ग्रन्थ (जो गिनती में १८ माने जाते हैं)। कुरान—मुस्लमानों का धर्म ग्रन्थ।

अर्थ : श्री राम चन्द्र (आदि, हिन्दुओं के अवतार) तथा हज़रत मुहम्मद (आदि, मुस्लमानों के पैगम्बर), पुरान (हिन्दु मत के धर्म ग्रन्थ) तथा कुरान (इस्लाम मत का धर्म ग्रन्थ) अपने अपने अनेक मत्तों का प्रचार करते हैं। पर (हे महाकाल जी!) मैंने किसी मत को स्वीकार नहीं किया।

सिंम्रिति सासत्र बेद सभै बहु भेद कहैं हम एक न जान्यो ॥

पद अर्थ : सिंम्रिति—स्मृतियाँ, हिन्दु मत की धर्म पुस्तकें जो गिनती में २७ हैं। सासत्र—शास्त्र, हिन्दु धर्म के ग्रन्थ जो गिनती में छः हैं। बेद—हिन्दु धर्म ग्रन्थ जो गिनती में चार हैं। भेद—भेद।

अर्थ : (हिन्दु धर्म के धार्मिक ग्रन्थ) स्मृतियाँ, शास्त्र तथा वेद ये सारे प्रभु-मिलाप के भाँति भाँति के तरीकों का वर्णन करते हैं, (पर हे महाकाल जी! आप जी का आश्रय लेने के कारण) मैंने कोई भी तरीका नहीं जाना (अपनाया)।

स्री असिपान क्रिपा तुमरी करि मै न कहयो सभ तोहि बखान्यो ॥

पद अर्थ : स्री असिपान—शस्त्रधारी वाहिगुरु। बखान्यो—बखान किया है, कथन किया है, कहा है।

अर्थ : हे शस्त्रपाणि, महांकाल जी! (आप जी का यश गायन) आप जी की कृपालुता के कारण ही सम्भव हुआ है। (आप जी का यश) मैंने स्वयं नहीं कहा, (सत्य यह है कि) यह आप ने स्वयं ही मुझसे कहलवाया है।

दोहरा—सगल दुआर कउ छाडि कै गहिओ तुहारो दुआर ॥
बांहि गहे की लाज अस गोबिंद दास तुहार ॥

पद अर्थ : गहिओ—पकड़ा है। अस—है।

अर्थ : (हे महांकाल जी!) सभी द्वारों को छोड़कर आप जी का द्वार पकड़ा है। बांह-पकड़े (मुझ नाचीज़) की लाज आप जी को ही है, (क्योंकि) गोबिन्द (सिंह) आप का ही दास है।

*रामकली महला ३ अनंदु

१ओं सतिगुरप्रसादि ॥

अनंदु भइआ मेरी माए सतिगुरू मै पाइआ ॥
सतिगुरु त पाइआ सहज सेती मनि वजीआ वाधाईआ ॥
राग रतन परवार परीआ सबद गावण आईआ ॥
सबदो त गावहु हरी केरा मनि जिनी वसाइआ ॥
कहै नानकु अनंदु होआ सतिगुरू मै पाइआ ॥१॥
ए मन मेरिआ तू सदा रहु हरि नाले ॥
हरि नालि रहु तू मंन मेरे दूख सभि विसारणा ॥
अंगीकारु ओहु करे तेरा कारज सभि सवारणा ॥
सभना गला समरथु सुआमी सो किउ मनहु विसारे ॥
कहै नानकु मंन मेरे सदा रहु हरि नाले ॥२॥

---

* अर्थ पीछे देखें—रामकली म. ३ अनंदु—पृष्ठ न. २३८ से २४३ और २८१ से २८२.

साचे साहिबा किआ नाही घरि तेरै ।।
घरि त तेरै सभु किछु है जिसु देहि सु पावए ।।
सदा सिफति सलाह तेरी नामु मनि वसावए ।।
नामु जिन कै मनि वसिआ वाजे सबद घनेरे ।।
कहै नानकु सचे साहिब किआ नाही घरि तेरै ।।३।।
साचा नामु मेरा आधारो ।।
साचु नामु आधारु मेरा जिनि भुखा सभि गवाईआ ।।
करि सांति सुख मनि आइ वसिआ जिनि इछा सभि पुजाइआ ।।
सदा कुरबाणु कीता गुरू विटहु जिस दीआ एहि वडिआईआ ।।
कहै नानकु सुणहु संतहु सबदि धरहु पिआरो ।।
साचा नामु मेरा आधारो ।।४।।
वाजे पंच सबद तितु घरि सभागै ।।
घरि सभागै सबद वाजे कला जितु घरि धारीआ ।।
पंच दूत तुधु वसि कीते कालु कंटकु मारिआ ।।
धुरि करमि पाइआ तुधु जिन कउ सि नामि हरि कै लागे ।।
कहै नानकु तह सुखु होआ तितु घरि अनहद वाजे ।।५।।
अनदु सुणहु वडभागीहो सगल मनोरथ पूरे ।।
पारब्रहमु प्रभु पाइआ उतरे सगल विसूरे ।।
दूख रोग संताप उतरे सुणी सची बाणी ।।
संत साजन भए सरसे पूरे गुर ते जाणी ।।

सुणते पुनीत कहते पवितु सतिगुरु रहिआ भरपूरे ॥
बिनवंति नानकु गुर चरण लागे वाजे अनहद तूरे ॥४०॥१॥

मुंदावणी महला ५ ॥

थाल विचि तिंनि वसतू पईओ सतु संतोखु वीचारो ॥
अंम्रित नामु ठाकुर का पइओ जिस का सभसु अधारो ॥
जे को खावै जे को भुंचै तिस का होइ उधारो ॥
एह वसतु तजी नह जाई नित नित रखु उरि धारो ।
तम संसारु चरन लगि तरीऐ सभु नानक ब्रहम पसारो ॥१॥

पद अर्थ : थाल विचि—(उस हृदय) थाल में। तिंनि वसतू—तीन पदार्थ (सतु, संतोखु तथा वीचार)। अंम्रित—आत्मिक जीवनदायक। जिस का—[सम्बन्ध कारक 'का' के कारण शब्द 'जिसु' की (ु) वाली मात्रा उड़ गई है] जिस (नाम) का। सभसु—प्रत्येक जीव को। अधारो—आसरा। को—कोई (मनुष्य)। भुंचै—खाता है, भोगता है। तिस का [सम्बन्ध कारक 'का' के कारण शब्द 'तिसु' की (ु) वाली मात्रा उड़ गई है] उस (मनुष्य) का। उधारो—पार-उतारा, विकारों से बचाव। एह वसतु—आत्मिक प्रसन्नता देने वाली यह वस्तु, यह मुंदावणी। तजी नह जाई—त्यागी नहीं जा सकती। रखु—सम्भाल कर रखो। उरि—हृदय में। धारो—टिका लो। तम—तमस्, अन्धकार। तम संसार—(विकारों के कारण बना हुआ) गहरा अन्धकारमय जगत। लगि—लग कर। सभु—प्रत्येक स्थान पर। ब्रहम पसारो—परमात्मा का प्रसार, परमात्मा का प्रकाश।१।

अर्थ : हे भाई! (उस मनुष्य के हृदय) थाल में उच्च आचरण, सन्तोष तथा आत्मिक जीवन की सूझ—यह तीन वस्तुएं टिकी रहती हैं, (जिस

मनुष्य के हृदय थाल में) परमात्मा का आत्मिक जीवन देने वाला नाम आ बसता है। (यह अमृत-नाम ऐसा है कि) इस का आसरा प्रत्येक जीव के लिये ज़रूरी है। (इस आत्मिक भोजन को) यदि कोई मनुष्य सदा खाता रहता है तो वह मनुष्य विकारों से बच जाता है।

हे भाई! (यदि आत्मिक उद्धार की आवश्यकता है तो) आत्मिक प्रसन्नता देने वाली यह नाम-वस्तु त्यागी नहीं जा सकती, इसको सदा ही अपने हृदय में सम्भाल कर रख। हे नानक! (इस नाम-वस्तु की बरकत से) प्रभु के चरणों का आश्रय लेकर गहन अन्धकारमय संसार समुद्र को पार किया जा सकता है, तथा प्रत्येक स्थान पर परमात्मा का प्रकाश ही दिखायी देने लगता है।१।

सलोक महला ५ ॥

तेरा कीता जातो नाही मैनो जोगु कीतोई ॥
मै निरगुणिआरे को गुणु नाही आपे तरसु पइओई ॥
तरसु पइआ मिहरामति होई सतिगुरु सजणु मिलिआ ॥
नानक नामु मिलै तां जीवां तनु मनु थीवै हरिआ ॥१॥

पद अर्थ : कीता—किया हुआ (उपकार)। जातो नाही—(तेरे द्वारा किये उपकार का) मैंने महत्त्व नहीं समझा। मैनो—मुझे। कीतोई—तूने (मुझे) बनाया है। जोगु—योग्य (उपकार की दाति संभालने के लिये) उचित (पात्र)। मै निरगुणिआरे—मुझ गुणहीन में। को गुणु—कोई गुण। आपे—आप ही। मिहरामति—कृपा, दया। मिलै—मिलता है। तां—तब। जीवां—मैं जी पड़ता हूँ, मुझे आत्मिक जीवन मिल जाता है। थीवै—हो जाता है। हरिआ—(आत्मिक जीवन से) हरा भरा।१।

अर्थ : हे नानक! (कह—हे प्रभु!) मैं तेरे किये उपकारों का महत्त्व नहीं समझ सकता, (उपकार की दाति संभालने के लिये) तूने (स्वयं ही) मुझे योग्य पात्र बनाया है। मुझ गुणहीन में कोई गुण नहीं है। तुझे स्वयं ही मुझ पर तरस आ गया। हे प्रभु! तेरे मन में मेरे लिये रहम पैदा हुआ, मुझ पर तेरी कृपा हुयी तो मुझे मित्र गुरु मिल गया। (तेरा यह उपकार भुलाया नहीं जा सकता) (अब प्यारे गुरु से) जब मुझे (तेरा) नाम मिलता है, तब मेरे अन्दर आत्मिक जीवन पैदा हो जाता है, मेरा तन, मेरा मन (उस आत्मिक जीवन की बदौलत) प्रफुल्लत हो जाता है।१।

पउड़ी ॥

तिथै तू समरथु जिथै कोइ नाहि ॥
ओथै तेरी रख अगनी उदर माहि ॥
सुणि कै जम के दूत नाइ तेरै छडि जाहि ॥
भउजलु बिखमु असगाहु गुर सबदी पारि पाहि ॥
जिन कउ लगी पिआस अंम्रितु सेइ खाहि ॥
कलि महि एहो पुंनु गुण गोविंद गाहि ॥
सभसै नो किरपालु समालै साहि साहि ॥
बिरथा कोइ न जाइ जि आवै तुधु आहि ॥९॥

पद अर्थ : समरथु—सहायता करने योग्य। रख—रक्षा, आसरा। उदर अगनी—(माँ के) पेट की आग। बिखमु—कठिन। असगाहु—बहुत गहरा, अथाह। पारि पाहि—पार उतर जाते हैं। सेइ—वही लोग। कलि—संसार। पुंनु—पुण्य काम। गाहि—गाते हैं। सभसै नो—प्रत्येक जीव को। साहि साहि—प्रत्येक सांस में। बिरथा—ख़ाली। तुधु आहि—तेरी शरण। अंम्रितु—आत्मिक जीवनदायक नाम-जल। खाहि—खाते हैं। जि—जो।

अर्थ : (हे प्रभु!) जहाँ अन्य कोई (जीव सहायता करने योग्य) नहीं, वहाँ हे प्रभु! तू ही सहायता करने में समर्थ है, माँ के पेट की आग में जीव को तेरा ही सहारा होता है।

(हे प्रभु! तेरा नाम) सुनकर यमदूत (पास नहीं आते) तेरे नाम की (बदौलत) बरकत से (जीव को) छोड़कर चले जाते हैं। इस दुर्गम तथा अथाह संसार-समुद्र को जीव गुरु के शब्द (की सहायता) से पार कर लेते हैं।

पर वही लोग आत्मिक जीवनदायक नाम-जल छकते (उपभोग करते) हैं। जिन के अन्दर इसकी भूख-प्यास पैदा हुयी है, जो संसार में नाम-सिमरन को ही सबसे अच्छा नेक कार्य जानकर प्रभु के गुण गाते हैं।

कृपालु प्रभु प्रत्येक जीव की श्वास-श्वास संभाल करता है। हे प्रभु! जो जीव तेरी शरण में आता है, वह (तेरे दर से) ख़ाली नहीं जाता।९।

सलोकु मः ५ ।।

अंतरि गुरु आराधणा जिहवा जपि गुर नाउ ।।
नेत्री सतिगुरु पेखणा स्रवणी सुनणा गुर नाउ ।।
सतिगुर सेती रतिआ दरगह पाईऐ ठाउ ।।
कहु नानक किरपा करे जिस नो एह वथु देइ ।।
जग महि उतम काडीअहि विरले केई केइ ।।१।।

पद अर्थ : अंतरि—मन में। आराधणा—याद करना। गुर नाउ—गुरु का नाम। स्रवणी—कानों से। सेती—साथ। रतिआ—रंग कर, प्यार करने से। वथु—वस्तु। काढीअहि—कहलवाते हैं।

अर्थ : यदि अपने गुरु (के प्यार) में रंगे जायें, तब प्रभु के पास स्थान मिलता है। मन में गुरु को याद करना, जीभ के साथ गुरु का नाम जपना, आंखों से गुरु को देखना, कानों से गुरु का नाम सुनना; यह भेंट,

(कह) हे नानक! उस मनुष्य को प्रभु देता है, जिस पर कृपा करता है। ऐसे लोग जगत में श्रेष्ठ कहलाते हैं (पर ऐसे होते) कोई विरले ही हैं।१।

मः ५ ॥

रखे रखणहारि आपि उबारिअनु ॥
गुर की पैरी पाइ काज सवारिअनु ॥
होआ आपि दइआलु मनहु न विसारिअनु ॥
साध जना कै संगि भवजलु तारिअनु ॥
साकत निंदक दुसट खिन माहि बिदारिअनु ॥
तिसु साहिब की टेक नानक मनै माहि ॥
जिसु सिमरत सुखु होइ सगले दूख जाहि ॥२॥

पद अर्थ : रखणहारि—रक्षा करने वाले (प्रभु) ने। उबारिअनु—बचा लिये उस (प्रभु) ने। सवारिअनु—सँवार दिये उसने। मनहु—मन से। विसारिअनु—भुला दिये उसने। भवजलु—संसार समुद्र। तारिअनु—तारे उसने। साकत—टूटे हुये, बिछुड़े हुये। बिदारिअनु—नष्ट कर दिये उसने।

अर्थ : रक्षा करने वाले परमात्मा ने जिन लोगों की मदद की, उनको उसने आप (विकारों से) बचा लिया है, उनको गुरु की शरण में डालकर, उनके सारे कार्य उसने सँवार दिये हैं। जिन पर प्रभु आप दयालु हुआ है उनको उसने (अपने) मन से भुलाया नहीं। उनको गुरमुखों की संगति में रखकर संसार समुद्र पार करा दिया है।

जो उसके चरणों से टूटे हुये हैं, जो निंदा करते रहते हैं, जो गंदे आचरण वाले हैं, उनको एक पल में उसने नष्ट कर दिया है।

नानक के मन में भी उस स्वामी का आसरा है, जिस का सिमरन करने से सुख मिलता है, तथा सारे दुःख दूर हो जाते हैं।

सोहिला

रागु गउड़ी दीपकी, महला १

१ओं सतिगुरप्रसादि ।।

जै घरि कीरति आखीऐ करते का होइ बीचारो ।।
तितु घरि गावहु सोहिला, सिवरिहु सिरजणहारो ।।१।।
तुम गावहु मेरे निरभउ का सोहिला ।।
हउ वारी जितु सोहिलै सदा सुखु होइ ।।१।।रहाउ।।
नित नित जीअड़े समालीअनि देखैगा देवणहारु ।।
तेरे, दानै कीमति न पवै, तिसु दाते कवणु सुमारु ।।२।।
संबति साहा लिखिआ मिलि करि पावहु तेलु ।।
देहु सजण असीसड़ीआ जिउ होवै साहिब सिउ मेलु ।।३।।
घरि घरि एहो पाहुचा सदड़े नित पवंनि ।।
सदणहारा सिमरिऐ नानक से दिह आवंनि ।।४।।१।।

पद अर्थ : जै घरि—जिस घर में, जिस सत्संग-घर में। कीरति—सिफ़ति-सालाह, कीर्ति। आखीऐ—कही जाती है। तितु घरि—उस सत्संग-घर में। सोहिला—सुहाग का गीत। [*नोट :* लड़की के विवाह के समय

जो गीत रात को औरतें मिल कर गाती हैं, उनको 'सोहिलड़े' कहा जाता है। इन गीतों में कुछ तो वियोग का भाव होता है, जो लड़की के विवाहित हो जाने पर उसे माँ बाप तथा सहेलियाँ से झेलना होता है, तथा कुछ आशीर्वाद आदि होते हैं कि पति के घर जाकर सुखी बसे।] यश, गुण-कीर्तन, प्रभु-पति के मिलन की चाह के शब्द।१।

हउ—मैं। वारी—कुर्बान। जितु सोहिलै—जिस सोहिले की बरकत से।१। ।रहाउ।

नित नित—सदा ही। समालीअनि—संभाले जाते हैं (कर्म वाच्य, वर्तमान काल, अन्य पुरुष, बहु-वचन)। देखैगा—संभाल करेगा, संभाल करता है। तेरे—तेरे से। दानै कीमति—दान का मूल्य, कृपा का मूल्य। सुमारु—अंदाज़ा, अंत।२।

संबति—साल, वर्ष। साहा—विवाह का दिन। लिखिया—तय हुआ। मिलि करि—मिलकर। पावहु तेलु—[*नोट :* विवाह से कुछ दिन पहले विवाह वाली लड़की को 'मांईए' डाला जाता है। चाचियाँ, ताईयाँ, सहेलियाँ मिलकर उसके सिर में तेल डालती हैं, तथा आशीर्वाद के गीत गाती हैं कि पति के घर जाकर सुखी बसे।] असीसड़ीआ—सुन्दर आशीर्वाद।३।

घरि—घर में। घरि घरि—प्रत्येक घर में। पाहुचा—निमन्त्रण, साहा-पत्र। [*नोट :* विवाह का साहा तथा लग्न निश्चित होने पर लड़के वालों का नाई बारात की गिनती आदि तथा अन्य आवश्यक संदेश लेकर लड़की वालों के घर जाता है। उसको (पहोचे) निमन्त्रण वाला नाई कहते हैं।] पवंनि—पड़ते हैं। सदड़े—बुलावे। से दिह—वे दिन। आवंनि—आते हैं।४।

नोट : विवाह के पहले 'मांईए' पड़ने की रस्म होती है। चाचियाँ, ताईयाँ, भाभियाँ, सहेलियाँ मिलकर विवाह वाली कन्या के सिर में तेल डालती हैं। उसको स्नान करवाती हैं, तथा साथ साथ सुहाग के गीत गाती

हैं। पति के घर जाकर सुखी बसने के लिये आशीर्वाद देती हैं। उन्हीं दिनों रात को गाने बैठी औरतें भी सोहिलड़े या सुहाग के गीत गाती हैं। इन गीतों में आशीर्वाद तथा सुहाग के गीत भी होते हैं, तथा वैराग्य के गीत भी, क्योंकि एक तरफ़ तो लड़की ने विवाह के बाद अपने पति के घर जाना है, दूसरी तरफ़ उस लड़की का माँ, बाप, भाई, बहनों, सहेलियों, चाचियों, ताईयों, भाभियों आदि से वियोग भी होना होता है। इन गीतों में यह दोनों मिले जुले भाव होते हैं।

जैसे विवाह के लिये समय, मुहूर्त तय किया जाता है, तथा उस निश्चित समय पर ही लावाँ (फेरे) आदि करने का पूरा यत्न किया जाता है, इसी तरह प्रत्येक प्राण रुपी लड़की का वह समय भी पहले ही तय किया जा चुका है जब मौत का साहा-पत्र आता है, तथा इसने सगे-सम्बन्धियों से बिछुड़कर इस जगत मायके (माँ बाप के) घर को छोड़कर परलोक में जाना है।

इस शब्द में प्राण रुपी लड़की को समझाया है कि सत्संग में सुहाग के गीत गाया कर तथा सुना कर। सत्संग मानों 'मांइए' पड़ने की जगह है। सत्संगी सहेलियाँ यहाँ एक-दूसरी सहेली को आशीर्वाद देती हैं, प्रार्थना करती हैं कि परलोक जाने वाली सहेली का प्रभु-पति से मिलाप हो।

अर्थ : जिस (सत्संग) घर में (परमात्मा का) गुण-कीर्तन किया जाता है, तथा परमात्मा के गुणों का विचार होता है। उस सत्संग-घर में (जाकर तू भी) प्रभु के गुण-कीर्तन के गीत (सुहाग-मिलाप की चाह के शब्द) गाया कर, तथा अपने पैदा करने वाले प्रभु को याद किया कर।१।

तू (सत्संगियों से मिलकर) प्यारे निर्भय (स्वामी) की प्रशंसा के गीत गा (तथा कह) मैं कुर्बान हूँ, उस प्रशंसा के गीत पर, जिस की बरकत से सदा सुख मिलता है।१।रहाउ।

जिस स्वामी की छत्र-छाया में सदा ही जीवों की सम्भाल हो रही

है, जो दाति (देने योग्य पदार्थ) देने वाला स्वामी (प्रत्येक जीव की) सम्भाल करता है। जिस दाता प्रभु की दी गयी वस्तुओं का मूल्य (हे जान!) तेरे द्वारा आंका नहीं जा सकता, उस दाता का भी क्या अंदाज़ा (तू लगा सकती है) (वह दाता प्रभु अनन्त है।)२।

(सत्संग में जाकर हे प्राणि! विनती किया कर) वह साल, वह दिन (पहले ही) निश्चित हो चुका है (जब पति के देश में जाने के लिये मेरे पास साहा-पत्र आना है, हे सत्संगी सहेलियो) मिलकर मुझे 'मांईए' डालो तथा हे सज्जन (सहेलियो) मुझे सुन्दर आशीर्वाद भी दो, (भाव, मेरे लिये प्रार्थना भी करो) कि प्रभु-पति से मेरा मिलाप हो जाये।३।

(परलोक में जाने के लिये मौत का) यह साहा-पत्र प्रत्येक घर में आ रहा है। ये बुलावे नित्य आ रहे हैं (हे सत्संगियो) उस बुलावा भेजने वाले प्रभु-पति को याद रखना चाहिये, (क्योंकि) हे नानक! (हमारे भी) वे दिन (नज़दीक) आ रहे हैं।४।१।

रागु आसा महला १ ॥

छिअ घर छिअ गुर छिअ उपदेस ॥
गुरु गुरु एको वेस अनेक ॥१॥
बाबा जै घरि करते कीरति होइ ॥
सो घरु राखु वडाई तोइ ॥१॥रहाउ॥
विसुए चसिआ घड़ीआ पहरा थिती वारी माहु होआ ॥
सूरजु एको रुति अनेक ॥
नानक करते के केते वेस ॥२॥२॥

पद अर्थ : छिअ—छः। घर—शास्त्र (सांख्य, न्याय, वैशेषिक, योग,

मीमांसा, वेदान्त)। गुर—(इन शास्त्रों के) कर्त्ता (कपिल, गौतम, कणाद, पतंजली, जैमिनी, व्यास)। उपदेस—उपदेश, शिक्षा, सिद्धान्त। गुरु गुरु—इष्ट प्रभु। एको—एक ही। वेस—रूप।१।

बाबा—हे भाई! जै घरि—जिस (सत्संग) घर में। करते कीरति—परमात्मा का गुण-कीर्तन। होइ—होती है। राखु—सम्भाल। तोइ—तेरी। वडाई—भलाई।१।रहाउ।

आँख के १५ झपक—१ विसा। १५ विसुए—१ चसा। ३० चसे—१ पल। ६० पल—१ घड़ी। साढे सात घड़ियाँ—१ पहर। ८ पहर—१ दिन-रात। १५ तिथियाँ, ७ वार, १२ महीने, ६ ऋतुएं।२।

अर्थ : (हे भाई!) छः शास्त्र है, छः ही (इन शास्त्रों के) चलाने वाले हैं, छः ही इनके सिद्धांत हैं। पर इन सब का मूल गुरु (परमात्मा) एक है। (यह सारे सिद्धांत) उस एक प्रभु के ही अनेक वेश हैं (प्रभु की हस्ती के प्रकाश के रूप हैं)।१।

हे भाई! जिस (सत्संग) घर में परमात्मा का गुण-कीर्तन होता है, उस घर को सम्भाल कर रख, (उस सत्संग) का आसरा लिये रह। इसी में तेरी भलाई है।१।रहाउ।

जैसे विसुए, चसे, घड़ियाँ, पहर, तिथियाँ, वार, महीना (आदि) तथा अन्य अनेक ऋतुएं हैं पर सूर्य एक ही है (जिसके ये सारे अलग अलग रूप हैं) वैसे ही हे नानक! परमात्मा के (ये सारे सिद्धांत आदि) अनेक स्वरूप हैं।२।२।

रागु धनासरी महला १ ॥

गगन मै थालु, रवि चंदु दीपक बने,
तारिका मंडल जनक मोती ॥
धूपु मलआनलो, पवणु चवरो करे,
सगल बनराइ फूलंत जोती ॥१॥

कैसी आरती होइ ।। भवखंडना तेरी आरती ।।
अनहता सबद वाजंत भेरी ।।१।।रहाउ।।
सहस तव नैन, नन नैन हहि तोहि कउ,
सहस मूरति, नना एक तुोही ।।
सहस पद बिमल, नन एक पद,
गंध बिनु, सहस तव गंध, इव चलत मोही ।।२।।
सभ महि जोति जोति है सोइ ।।
तिस दै चानणि, सभ महि चानणु होइ ।।
गुर साखी जोति परगटु होइ ।।
जो तिसु भावै सु आरती होइ ।।३।।
हरि चरण कवल मकरंद लोभित मनो,
अनदिनो मोहि आही पिआसा ।।
क्रिपा जलु देहि नानक सारिंग कउ,
होइ जा ते तेरै नाइ वासा ।।४।।३।।

पद अर्थ : गगन—आकाश। गगन मै—गगनमय, आकाश रूप, सारा आकाश। रवि—सूर्य। दीपक—दीपक। जनक—जानो, मानो, जैसे। मलआनलो—(मलय-अनलो) मलय पर्वत की तरफ़ से आने वाली हवा, (अनल—हवा) मलय पर्वत पर चन्दन के वृक्ष होने से उधर से आने वाली हवा सुगन्धित होती है। मलय पर्वत भारत के दक्षिण में है। सगल—सारी। बनराइ—बनस्पति। फूलंत—फूल दे रही है। जोती—ज्योति स्वरूप प्रभु।१।

भव खंडन—हे जन्म मरण काटने वाले! अनहता—(अन-हत) जो बिना बजाये बजे, एक-रस। सबद—शब्द, आवाज़, जीवन रौ। भेरी— नगाड़ा।१।रहाउ।

सहस—हज़ारों। तव—तेरे। नैन—नयन, आँखें। नन—कोई नहीं। हहि—('है' से बहु-वचन)। तोहि कउ—तेरे, तुझे, तेरे लिये। मूरति—शक्ल। नना—कोई नहीं। तुोही—तेरी [अक्षर 'त' के साथ दो मात्रायें हैं, ो और ु। (असल शब्द तुही है यहाँ 'तोही' पढ़ना हैं]। पद—पैर। बिमल—साफ़। गंध—नाक। इव—इस तरह। चलत—कौतुक, आश्चर्ययुक्त खेल।२।

जोति—प्रकाश। सोइ—वह प्रभु। तिस दै चानणि—उस प्रभु के प्रकाश से। साखी—शिक्षा से।३।

मकरंद—फूलों के बीच की धूल (pollen dust), फूलों का रस। मनो—मन। अनदिनुो—[अक्षर 'न' के साथ दो मात्रायें हैं, ो तथा ु। असल शब्द 'अनदिनु' है, यहाँ 'अनदिनो' पढ़ना है] प्रतिदिन। मोहि—मुझे। आही—है, रहती है। सारिंग—पपीहा। कऊ—को। जाते—जिस से, जिस के साथ। तेरै नाइ—तेरे नाम में।४।

अर्थ : सारा आकाश (मानों) थाल है। सूर्य तथा चन्द्रमा (उस थाल में) दीपक बने हुये हैं। तारों के समूह, मानों (थाल में) मोती रखे हुये हैं। मलय-पर्वत की तरफ़ से आने वाली हवा, मानों धूप (जल रहा) है। हवा चवर कर रही है। सारी वनस्पति ज्योति रूप (प्रभु की आरती) के लिये फूल दे रही है।

हे जीवों के जन्म-मरण का नाश करने वाले! (प्रकृति में) तेरी कैसी सुन्दर आरती हो रही है। (सब जीवों में चल रही) एक ही जीवन रौ, मानों, तेरी आरती के लिये नगाड़े बज रहे हैं।१।रहाउ।

(सब जीवों में व्यापक होने से) हज़ारों तेरी आँखें हैं, (पर निराकार होने के कारण, हे प्रभु) तेरी कोई आँख नहीं। हज़ारों तेरी शक्लें हैं, पर

तेरी कोई भी शक्ल नहीं है। हज़ारों तेरे सुन्दर पैर हैं (पर निराकार होने से) तेरा एक भी पैर नहीं है। हज़ारों तेरे नाक हैं पर तू नाक के बिना ही है। तेरे ऐसे कौतुकों ने मुझे हैरान किया हुआ है।२।

सारे जीवों में एक उसी परमात्मा की ज्योति व्याप्त हो रही है। उस ज्योति के प्रकाश से सारे जीवों में प्रकाश है (सूझ बूझ है), पर इस ज्योति का ज्ञान गुरु की शिक्षा से होता है (गुरु द्वारा यही समझ आती है कि प्रत्येक मनुष्य के अन्दर परमात्मा की ज्योति है)। (इस सर्वव्यापी ज्योति की) आरती यह है कि जो कुछ उसकी रज़ा में हो रहा है, वह जीवों को अच्छा लगे (प्रभु की रज़ा में चलना प्रभु की आरती करनी है)।३।

हे हरि! तेरे चरण-रूप कमल-फूलों के रस के लिये मेरा मन ललचाता है, प्रतिदिन मुझे इस रस की प्यास लगी रहती है। मुझे नानक-पपीहे को अपनी कृपा का जल दो, जिस (की बरकत) से मैं तेरे नाम में टिका रहूँ।४।३।

नोट : आरती (आरति, आरात्रका) देवताओं की मूर्ति या किसी पूज्य के आगे दीपक घुमा कर पूजा करनी। हिन्दु मत के अनुसार चार बार चरणों के आगे, दो बार नाभी पर, एक बार मुँह पर तथा सात बार सारे शरीर पर दीपक घुमाने चाहियें। दीपक एक से लेकर एक सौ तक होते हैं। गुरु नानक देव जी ने इस आरती का खण्डन कर के परमात्मा की कुदरती आरती का समर्थन किया है।

रागु गउड़ी पूरबी महला ४ ॥

कामि करोधि नगरु बहु भरिआ,
मिलि साधू खंडल खंडा हे ॥
पूरबि लिखत लिखे गुरु पाइआ,
मनि हरि लिव मंडल मंडा हे ॥१॥

करि साधू अंजुली, पुनु वडा हे ।।
करि डंडउत, पुनु वडा हे ।।१।।रहाउ।।
साकत हरि रस सादु न जाणिआ,
तिन अंतरि हउमै कंडा हे ।।
जिउ जिउ चलहि चुभै दुखु पावहि,
जमकालु सहहि सिरि डंडा हे ।।२।।
हरि जन हरि हरि नामि समाणे,
दुखु जनम मरण भव खंडा हे ।।
अबिनासी पुरखु पाइआ परमेसरु,
बहु सोभ खंड ब्रहमंडा हे ।।३।।
हम गरीब मसकीन प्रभ तेरे,
हरि राखु राखु वड वडा हे ।।
जन नानक नामु अधारु टेक है,
हरि नामे ही सुखु मंडा हे ।।४।।४।।

पद अर्थ : कामि—काम वासना से। करोधि—क्रोध से। नगरु—शरीर-नगर। मिलि—मिलकर। साधू—गुरु। खंडल खंडा—तोड़ा है। पूरबि—पूर्व में, पहले बीते समय में। पूरबि लिखे लिखत—पिछले (किये कर्मों के) लिखे हुये संस्कारों के अनुसार। मनि—मन में। मंडल मंडा—जड़ा है।१।

अंजुली—दोनों हाथ जोड़े हुये। पुनु—पुण्य कर्म। डंडउत—लेटकर नमस्कार।१।रहाउ।

साकत—परमात्मा से टूटे हुये मनुष्य। सादु—स्वाद। तिन अंतरि—उनके अन्दर, उनके मन में। चलहि—चलते हैं। चुभै—(कांटा) चुभता है। जमकालु—(आत्मिक) मौत। सिरि—सिर पर।२।

नामि—नाम में। समाणे—लीन, मस्त। भव—संसार। खंडा हे—नाश कर लिया है। सोभ—शोभा। खंड ब्रहमंडा—सारे संसार में।३।

मसकीन—आजिज़। प्रभ—हे प्रभु! राखु—रक्षा कर। अधारु—आसरा। नामे—नाम में ही। मंडा—मिला।४।

अर्थ : (मनुष्य का यह) शरीर रूपी शहर काम तथा क्रोध से भरा रहता है। गुरु को मिल कर ही (काम क्रोध आदि के जोड़ को) तोड़ा जा सकता है। जिस मनुष्य को पूर्व-कृत कर्मों के संयोग से गुरु मिल जाता है, उसके मन में परमात्मा के साथ लिव लग जाती है (तथा उसके अन्दर से कामादि का बन्धन टूट जाता है)।१।

(हे भाई!) गुरु के आगे हाथ जोड़, यह बहुत भला काम है। गुरु के आगे गिर जा, यह बड़ा नेक काम है।१।रहाउ।

जो मनुष्य परमात्मा से टूटे हुये हैं, वे उसके नाम-रस के स्वाद को समझ नहीं सकते। उनके मन में अहंकार का (मानों) कांटा चुभा हुआ है। जैसे जैसे वे चलते हैं (जैसे जैसे वे अहंकार के स्वभाव से व्यवहार करते हैं, अहंकार का वह कांटा उनको) चुभता है, वे दु:ख पाते हैं, तथा अपने सिर पर आत्मिक मौत-रूप डंडा सहते हैं (आत्मिक मौत उनके सिर पर सवार रहती है)।२।

(दूसरी ओर) परमात्मा के प्यारे मनुष्य परमात्मा के नाम में जुड़े रहते हैं। उनका संसार का जन्म-मरण का दु:ख कट जाता है। उनको कभी नष्ट न होने वाला सर्व-व्यापक परमात्मा मिल जाता है। उनकी शोभा सारे खण्डों ब्रह्मण्डों में हो जाती है।३।

(हे प्रभु!) हम जीव तेरे दर पर गरीब भिखारी हैं। तू सब से बड़ा सहायक है। हमें (इन कामादि से) बचा लो। हे प्रभु! तेरे दास नानक को तेरा नाम ही आसरा है, तेरा नाम ही सहारा है। तेरे नाम में जुड़ने से ही सुख मिलता है।४।४।

नोट : यदि पैर में कांटा चुभ जाये तो चलना कठिन हो जाता है। उस कांटे को निकालने के स्थान पर यदि पैरों में मखमल का जूता पहन लिया जाये, तब भी चलते समय वह कांटा चुभता ही रहेगा। सुख तब ही पहुँचेगा, जब वह कांटा पैर में से निकाल लिया जायेगा। जब तक मनुष्य के अन्दर अहंकार है, यह दुःखी ही करता रहेगा। बाहरी धार्मिक भेख आदि भी सुख नहीं दे सकेंगे।

रागु गउड़ी पूरबी महला ५ ॥

करउ बेनंती, सुणहु मेरे मीता, संत टहल की बेला ॥
ईहा खाटि चलहु हरि लाहा, आगै बसनु सुहेला ॥१॥
अउध घटै दिनसु रैणा रे ॥
मन, गुर मिलि काज सवारे ॥१॥रहाउ॥
इहु संसारु बिकारु, संसे महि, तरिओ ब्रहम गिआनी ॥
जिसहि जगाइ पीआवै इहु रसु, अकथ कथा तिनि जानी ॥२॥
जा कउ आए सोई बिहाझहु, हरि गुर ते मनहि बसेरा ॥
निज घरि महलु पावहु सुख सहजे, बहुरि न होइगो फेरा ॥३॥
अंतरजामी पुरख बिधाते, सरधा मन की पूरे ॥
नानक दासु इहै सुखु मागै, मो कउ करि संतन की धूरे ॥४॥५॥

पद अर्थ : करउ—मैं करता हूँ (वर्तमान काल, उत्तम पुरख, एक-वचन)। सुणहु—तुम सुनो (हुकमी भविष्यत, मध्यम पुरख, बहु-वचन)। बेला—समय, मौका। ईहा—यहाँ, इस जन्म में। खाटि—कमा कर। लाहा—लाभ। आगै—परलोक में। बसनु—बसना। सुहेला—आसान।१।

अउध—आयु। रैणा—रात। मन—हे मन! मिलि—मिलकर। सवारे—सँवारि, सँवार लो।१।रहाउ।

बिकारु—विकार रूप, विकारों से भरा हुआ। संसे महि—संशय में। जिसहि—जिस मनुष्य को। जगाइ—जगा कर। पीआवै—पिलाता है। तिनि—उसने।२।

जा कउ—जिस (मनोरथ) के लिये। बिहाझहु—खरीदो, व्यापार करो। ते—से, द्वारा। मनहि—मन में ही। निज धरि—अपने घर में, अपने हृदय में। महलु—(परमात्मा का) ठिकाना। सहजे—सहज में, आत्मिक अडोलता में। बहुरि—फिर।३।

अंतरजामी—हे दिलों की जानने वाले। पुरख—हे सब में व्यापक! बिधाते—हे सृजनहार। पूरे—पूरी कर। मागै—मांगता है। मो कउ—मुझको। धूरे—चरण धूल।

अर्थ : हे मेरे मित्रो! सुनो! मैं प्रार्थना करता हूँ—(अब) गुरमुखों की सेवा करने का समय है, (यदि सेवा करोगे तो) इस जन्म में प्रभु के नाम की कमाई करके जाओगे तथा परलोक में रहना आसान हो जायेगा।१।

हे मन! दिन रात (बीत बीत कर) आयु घटती जा रही है। हे (मेरे) मन! गुरु को मिलकर (मानव जीवन का) कार्य पूरा कर।१।रहाउ।

यह संसार विकारों से भरपूर है। (जगत के जीव) (संशयों) तनावों में डूब रहे हैं, (इन में से) वही मनुष्य निकलता है जिसने परमात्मा से जान-पहचान कर ली है। (विकारों में सोये हुये) जिस मनुष्य को प्रभु

आप जगाकर यह नाम-अमृत पिलाता है, उस मनुष्य ने अकत्थ प्रभु की बातें (अनन्त गुणों वाले प्रभु का गुण-कीर्तन) करने का तरीका सीख लिया है।२।

(हे भाई!) जिस कार्य के लिये (यहाँ) आये हो, उसका व्यापार करो। वह हरि-नाम गुरु द्वारा (ही) मन में बस सकता है। (यदि गुरु की शरण में आओगे तो) आत्मिक आनन्द तथा अडोलता में टिककर अपने अन्दर ही परमात्मा का ठिकाना खोज लोगे। फिर दुबारा जन्म-मरण का चक्र नहीं रहेगा।३।

हे प्रत्येक के दिल की जानने वाले सर्व-व्यापक सृजनहार! मेरे मन की इच्छा पूरी करो। दास नानक तुमसे यही सुख मांगता है कि मुझे संतों के चरणों की धूल बना दो।४।५।

नोट : अन्तिम अंक ५ का भाव यह है कि इस संग्रह (सोहिले) का यह पाँचवां शब्द है। पाठक सज्जन ध्यान रखें कि इस संग्रह का नाम 'सोहिला' है, 'कीर्तन सोहिला' नहीं।